दैनिक भास्कर समूह की प्रस्तुति

अहा! ज़िंदगी

• अक्टूबर, 2021 • मूल्य ₹ 50

• नया युग • नया विश्वास • नई ज़िंदगी

आशा-जनक

प्रसन्नता का चुम्बक

देशभूषा

नऊवारी और पैठणी का महाराष्ट्र

यायावरी

पहाड़ों के पड़ोस में

अहा! अतिथि

तलत अज़ीज़

ज़िंदगी की बज़्म

ज्ञानकोश

चतुराई के सूत्र

आमुख कथा

देने का सुख

- क्या, किसे और कैसे दिया जाए
- ख़ुशियां देने के पल
- देने के सुख के तीन वाक़िये
- चार दानवीर

ज़िंदगी की किताब

राधेश्याम कथावाचक

भारत के कथावाचक

VISIT…

LANZAROTE
Caliente.COM

DB Corp Ltd
Magazine Division
Aha! Zindagi
The Only New Age Positive Life Monthly
RNI No. RAJHIN/2004/13288

सम्पादक
रचना समंदर

सहायक सम्पादक
सुशोभित
फ़ीचर सम्पादक
विवेक गुप्ता
उप सम्पादक
रोहित चेडवाल
चित्रांकन
गौतम चक्रबर्ती
कला निर्देशन
मनीष समंदर

आवरण चित्र - **सैंड्रा ग्रुनेवाल्ड**

अहा! ज़िंदगी
अहा! ज़िंदगी
सकारात्मक जीवन की सर्वप्रिय पत्रिका
अहा! ज़िंदगी अनिमंत्रित सामग्री को लौटाने के लिए ज़िम्मेदार नहीं है।
© सर्वाधिकार सुरक्षित।
e-mail : ahazindagi@dbcorp.in

सम्पर्क

भोपाल : भास्कर परिसर, द्वारका सदन, 6-प्रेस कॉम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, भोपाल
फोन : 0755-3988884, फैक्स : 0755-5270333, 5201000
जयपुर : भास्कर परिसर,10-जे.एल.एन. मार्ग, मालवीय नगर, जयपुर
फोन : 0141-3988884, फैक्स : 0141-2708958
अहमदाबाद : दिव्य भास्कर कार्यालय, 280, सरखेज गांधी नगर हाईवे, अहमदाबाद
फोन : 079-39814074

बिजनेस कार्यालय

नई दिल्ली : डीबी कॉर्प लिमिटेड, FC-10 & 11, फिल्म सिटी, सेक्टर 16-A, नोएडा
फोन : 0120-3022600
मुंबई : नमन कॉर्पोरेट लिंक, 5वीं मंज़िल, C-31/32, G-ब्लॉक, BKC, मुंबई
फोन : 022-39888840, 09820749257
जी-3-ए, कामनवाला चैम्बर्स, न्यू उद्योग मंदिर-2, मुगल लेन, माहिम (प.), मुंबई
फोन : 022-39501500.
कोलकाता : 403, पदमनीर अपार्टमेंट, 43, शरत बोस रोड, कोलकाता,
फोन : 033-24743925
चेन्नई : तृप्ति बिल्डिंग, 102/3, मार्शल रोड, एगमोर, चेन्नई
फोन : 044-28554670
चंडीगढ़ : 11-12, सैक्टर 25-D, चंडीगढ़,
फोन : 0172-2709948
नागपुर : विशंभर भवन, 17-ए, ग्रेट नाग रोड, नागपुर
फोन : 0712-2706858, 2706859
बेंगलूर : 28 स्पेंसर कासल, स्पेंसर रोड, फ्रेज़र टाउन, बेंगलूर
फोन : 080-25512654

अहा! ज़िंदगी

वर्ष : 17 • अंक : 8 • अक्टूबर 2021

चित्र - **कुंज पारेख**

अगर आप किसी ब्लैकबोर्ड पर कुछ लिखना चाहते हैं तो...

पहले आपको उसे साफ़ करना होगा। तभी आप उस पर कुछ लिख सकेंगे। अगर उस पर पहले से ही बहुत कुछ लिखा होगा, और उसी पर आप लिखते हैं तो दूसरे लोग जान ही नहीं सकेंगे कि आपने क्या लिखा। कुछ देर बाद तो आपके लिए भी उसे पढ़ना मुश्किल हो जाएगा। तो आपको पहले जगह को साफ़ करना होगा और फिर सजग भाव से अपनी विचार प्रक्रिया की शुरुआत करनी होगी। अगर लोगों ने अपने मन की जगह साफ़ कर ली है, तो उसमें पैदा हुआ विचार सही मायनों में ताक़तवर होगा, क्योंकि यह एक सजग प्रक्रिया से जन्मा है।

एक बार विचार इस तरह सामने आ जाए और उतनी स्पष्टता के साथ आ जाए, तो...

इसे ऊर्जा से भरपूर बनाने का काम किया जा सकता है। अगर आप पूरी सजगता के साथ किसी सोच को मन में पैदा करते हैं और यह पूरी तरह से एक बिंदु पर स्थिर है, तो यह संसार में आसानी से साकार रूप ले सकेगी। यह स्वयं को सहज भाव से प्रकट करेगी। अगर आप अपनी जीवन-ऊर्जा को थोड़ा-सा और वश में कर सकें, तो आप इसे और भी आगे ले जा सकते हैं।

– सद्‌गुरु

Published from Dainik Bhaskar Complex 10, JLN Marg, Jaipur-302 015 and Printed at M.P. Printers, B-220, Phase-II, Gautam Budh Nagar,
Noida, UP-201 305 by Kamal Kant Sharma for and on behalf of DB Corp. Ltd.
Editor : Rachana Samander

(कहां क्या)

अहा! ज़िंदगी

वर्ष : 17 • अंक : 8 • अक्टूबर 2021

• अहा! रचनाएं

04 ख़ुद से ही मिलेगी प्रेरणा
जीवन-धुन : पूर्ति वैभव खरे

22 ये भी होते हैं क्वारेंटाइन
रोचक : संजीव शुक्ल

24 हेलीकॉप्टर में बरात
वक्रोक्ति : मलय जैन

26 नऊवारी और पैठणी का महाराष्ट्र
देशभूषा : ज्योत्स्ना पंत श्रीवास्तव

31 अनानास पर अनबन
देशांतर : देवेश पथसारिया

34 प्रतिरोध का अध्यात्म
सत्याग्रह : नंदकिशोर आचार्य

36 पहाड़ों के पड़ोस में
यायावरी : प्रतिभा अधिकारी

42 कॉफ़ी-कथा
देशकाल : तेजस्वी मेहता

44 यज्ञ और पशुबलि
वैदिक : पद्मनाभ

46 अड़े ना रहें बड़े
मरासिम : मनोज सारस्वत

62 प्रसन्नता का चुम्बक
आशा-जनक : डॉ. स्नेह देसाई

63 आप कैसे मोबाइल चलाते हैं?
पर्सनैलिटी टेस्ट : यायावर

64 चतुराई के सूत्र
ज्ञानकोश : हितोपदेश

•• अहा! विशेष

आमुख कथा... देने का सुख

10. आनंद पंचांग
क्या, किसे और कैसे दिया जाए
पं. विजयशंकर मेहता

12. चित्रपट
ख़ुशियां देने के पल
शशांक दुबे

15. दृष्टांत
देने के सुख के तीन वाक़िये
हर्षाश्री

16. जीवन-दाता
हमारे चार दानवीर
डॉ. विवेक चौरसिया

06 अहा! अतिथि तलत अज़ीज़

48 ज़िंदगी की किताब राधेश्याम कथावाचक

ज़िंदगी की बज़्म

• दिनेश पाठक

भारत के कथावाचक

• अजय कुमार शर्मा

••• अहा! स्तम्भ

नमस्कार / रचना समंदर । 05
कहानी / राजगोपाल सिंह वर्मा । 18
शब्दराग / विजय नाहटा । 21
कहानी / पवन चौहान । 28
जीवन का हास्य / चण्डीदत्त शुक्ल । 25
नज़र का फेर / यायावर । 32
कहानी/ अर्चना आनंद भारती । 40

41 । **ध्यान-विधि** / जे. कृष्णमूर्ति
54 । **आनंदम्**
55 । **खेतों के वैज्ञानिक** / डॉ. महेंद्र मधुप
56 । **दिमाग़ की बत्ती**
58 । **आखर अनंत**
60 । **परिणाम-** चित्र पहेली 151
61 । **चित्र पहेली 152**

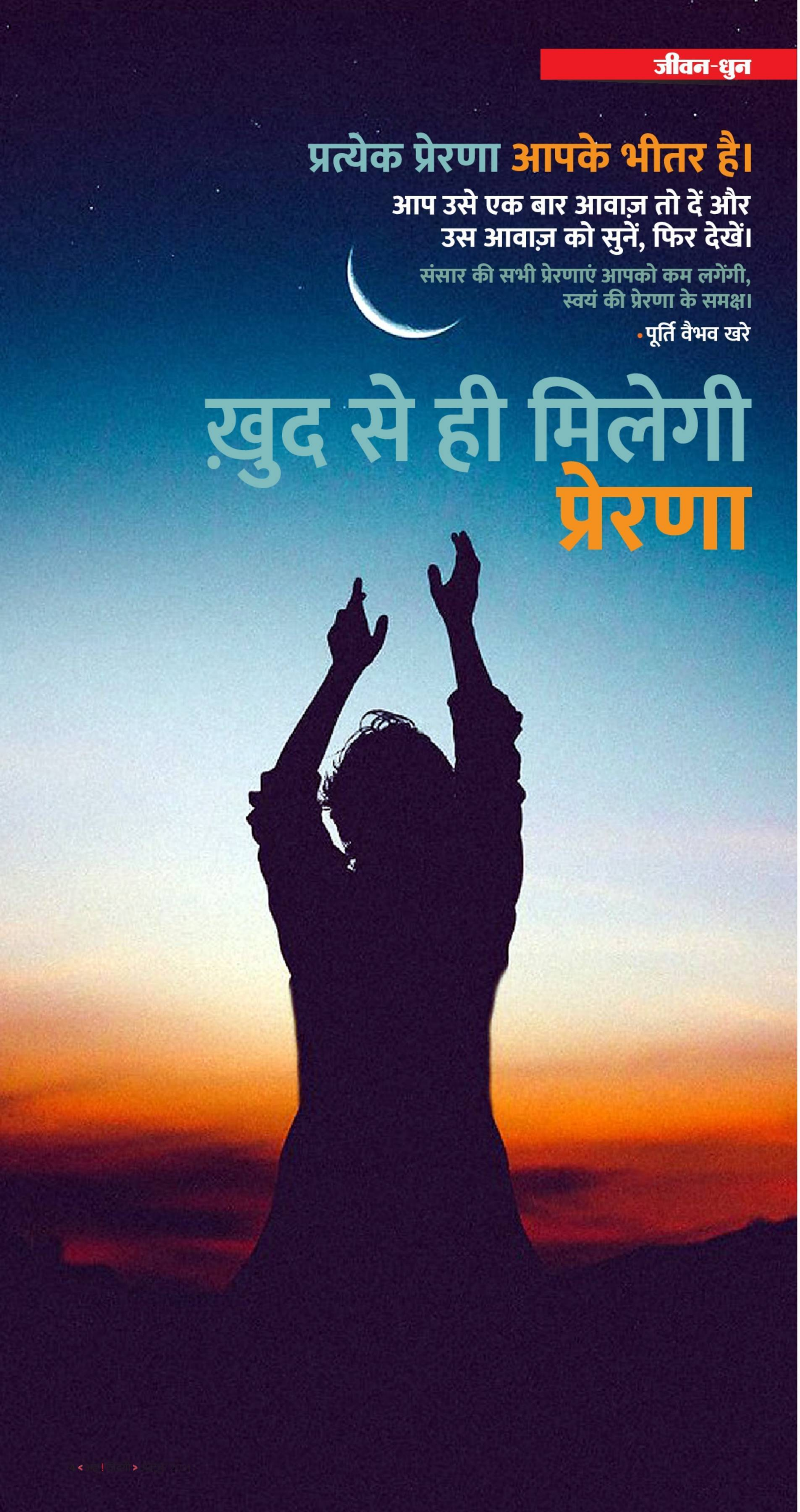

प्रत्येक प्रेरणा आपके भीतर है।

आप उसे एक बार आवाज़ तो दें और उस आवाज़ को सुनें, फिर देखें।

संसार की सभी प्रेरणाएं आपको कम लगेंगी, स्वयं की प्रेरणा के समक्ष।

• पूर्ति वैभव खरे

ख़ुद से ही मिलेगी प्रेरणा

ऐसा **कौन-सा व्यक्ति है, जो जीवन में निराश होना चाहता होगा? शायद कोई नहीं।**

निराशा, उदासी, मायूसी या हार किसी को रास नहीं आतीं, फिर भी ये जीवन में मिलती अवश्य हैं, इनके बिना जीवन कहां चलता है? ऐसा कोई न होगा, जो कभी पराजय की गली से न गुज़रा हो।

हार-जीत हर किसी के जीवन में घटित होने वाली घटनाएं हैं। ये अलग बात है कि इन्हें स्वीकारने और धारण करने की क्षमता, मनःस्थिति सबकी भिन्न है। कोई पराजय को नया अवसर समझता है तो कोई जीवन का अंत, कोई तुरंत इसे स्वीकार कर आगे बढ़ता है तो कोई वहीं ठहरकर इसका शोक मानता रहता है।

जब हम उदास होते हैं, तब हमें किसी के सहारे की आवश्यकता पड़ती है, पर ये सदैव संभव नहीं। क्योंकि कभी तो कोई ऐसा मिल जाता है जो हमारी मनःस्थिति को समझ हमारी उदासी बांट लेता है और कभी कोई नहीं भी मिलता। तब हम गीत-कविताओं का सहारा लेते हैं और अक्सर वो हमें संबल भी देते हैं। हम जब भी हताश होते तो वह खोजने लगते हैं, जो हमें परिस्थितियों से लड़ने की प्रेरणा दे।

हम यहां-वहां से प्रेरणाएं लेते हैं। हम अक्सर निकल पड़ते हैं ऐसे शख़्स की तलाश में जो हममें ऊर्जा का संचार कर दे। ऐसी स्थिति में हमें जो मिलता है, जैसा मिलता है, उसकी प्रेरणा को पकड़ हम चल देते हैं। ऐसी परिस्थिति में आप किसी से भी प्रेरित हो सकते हैं। ये आप पर निर्भर है। पर आप ख़ुद से ही प्रेरित हों, ये केवल आप पर ही निर्भर है।

ऐसा माना जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति में दो प्रकार के प्रेरक विद्यमान हैं- जन्मजात और अर्जित। भूख, प्यास, नींद, यौनेच्छा, मल-मूत्र त्याग- ये पांच जन्मजात प्रेरक हैं, जो हर व्यक्ति में जन्म से होते हैं। बाक़ी अन्य प्रेरकों को हमारे मनीषी-मनोवैज्ञानिकों ने अर्जित प्रेरकों की संज्ञा दी है, जैसे-उत्साह, क्रोध आदि। इन्हें व्यक्ति समाज से अर्जित करता है, हर व्यक्ति अपनी रुचि के अनुरूप इन्हें ग्रहण करता है।

जो भी हो, मेरा मानना है कि सारे प्रेरक व्यक्ति के भीतर ही हैं। परंतु सुप्तावस्था में हैं। क्योंकि हम उन्हें जन्मजात प्रेरकों की भांति जगाते ही नहीं, हम दूसरों से प्रेरित होने के लिए इतने उतावले होते हैं कि अपनी स्वयं की प्रेरणा को नज़रअंदाज़ करते रहते हैं।

स्मरण रहे, जितनी स्थायी और प्रबल आपकी स्वयं की प्रेरणा होगी, उतनी ही अस्थायी और कमज़ोर बाह्य प्रेरणा होगी। आप सब से सलाह-मशविरा लें और निःसंकोच दूसरे से प्रेरित भी हों, परंतु अपनी स्वयं की प्रेरणा की उपेक्षा करके नहीं।

आपकी प्रेरणा आपको तब तक प्रेरित करेगी, जब तक आप अपना लक्ष्य नहीं पा लेते क्योंकि वो सैदव आपके साथ रहेगी। आप कितने भी भाषण सुन लें, प्रेरणादायक गीत, कविताएं पढ़ लें या अन्य माध्यमों से वीडियो, फ़िल्में आदि देख लें- ये सब आपको कुछ समय तक तो याद रहेगा, परंतु बहुत देर तक नहीं।

आपको स्वयं को प्रेरित करने के लिए ख़ुद की प्रेरणा से मिलना ही होगा। आपकी भीतर की प्रेरणा यदि जाग गई तो आपका भाग्य जगना भी तय है।

तो अपने कानों पर हाथ रख भीतर की आवाज़ सुनें और कहीं और प्रेरणा खोजने से बेहतर अपने अंतस की प्रेरणा को आत्मसात करें।

नमस्कार

रचना समंदर

कितने ही लोग बादलों से मोहित होते हैं।

उनमें आकार और आकार में साकार होते रूपों को देखने की कोशिश करते हैं। जब तक बता पाएं कि क्या देखा, तब तक बादल ही शक्ल बदल लेते हैं।

जीवन का एक दर्शन यह भी है। एक नज़रिया। एक दृष्टिकोण। नई नज़र को आमंत्रित करने का एक अवसर।

अन्यान्य देशों से आए नज़रिए भी थामते हैं, विचार करने को प्रेरित करते हैं...

नए रंग दिखेंगे जो नज़र होगी !

ज़िंदगी को देखने-समझने के कई दर्शन पढ़ने को मिलते हैं। नज़र नई होती है, तो मंज़र भी चौंका जाते हैं कि- 'सामने ही तो था यह सच, यह अहसास, फिर अब तक दिखा क्यों नहीं। इस तरह सोचा क्यों नहीं।'

हम भारतीय ख़ुद भी ध्यान और मौन जैसे अभ्यासों की अहमियत जानते हैं। सदियों से जानते रहे हैं। अध्यात्म के एक अति उच्च शिखर से हमारा परिचय हमारे ऋषियों, विद्वानों और चिंतकों ने कराया है। उसमें से कितनी बातों को हम साथ लेकर चले हैं, कितने सलीक़े और विचार बदलते दौर में भी प्रासंगिक बनाकर अपनाए रखे हैं और क्या कुछ छोड़कर, भुलाकर नकार दिया है, यह बहस का विषय हो सकता है।

लेकिन फ़िलहाल मुद्दा नए नज़रियों से परिचय का है।

वर्तमान की ओर देखने की एक प्रेरणा प्रसिद्ध विचारक एक्हार्ट टॉल्ल हमें दे चुके हैं। 'आज और अभी' को समझने, इसी में रहने-जीने के क्या मायने हैं, ज़िंदगी ऐसा करने से कैसे बदल जाती है, उन्होंने विस्तार से लिखा और समझाया है।

हाल ही में सरल जीवन जीने की कला यानी ज़ेन विचारों पर एक ज़ेन भिक्षु की पुस्तक पढ़ने को मिली। *

पुस्तक के हर पृष्ठ पर एक ज़ेन गतिविधि का उल्लेख है, जिसे सरलता से अपनाया जा सकता है। शुनम्यो मसुनो नामक ज़ेन भिक्षु इसके लेखक हैं। उन्होंने सौ ज़ेन गतिविधियों को पुस्तक में संजोया है।

इस पुस्तक में, नज़रिए के मामले में एक ज़ेन अवधारणा उल्लेखित है, जिसे कहते हैं मिटाटे।

मिटाटे का अर्थ है किसी वस्तु को उसके मूल रूप में देखने के बजाय किसी और वस्तु के रूप में देखना या उपयोग में लाना। इसे समझाने के लिए किसी पुरानी वस्तु के नवीन उपयोग का उदाहरण दिया जा सकता है, जैसे केतली का गुलदान के रूप में उपयोग या हम कहें कि पुराने मटके या सुराही का गमले के तौर पर इस्तेमाल।

'मिटाटे' का मूल भाव यह है कि किसी वस्तु को उसके निर्माण से जुड़े उपयोग के सीमित नज़रिए से ना बांधकर उसे नए नज़रिए से देखें, तो समझिए कि उसमें नए प्राण डाल रहे हैं। वस्तुओं के संग्रह में नहीं, उनके उपयोग की विविधता समझने में प्रचुरता है।

एक और अवधारणा है, जिसमें टोरी का उल्लेख है।

टोरी ज़ेन मठों या शिंतो तीर्थ में जाने के द्वारों को कहते हैं। इन द्वारों या टोरी को ज़ेन विचारधारा में आध्यात्मिक बाधाएं कहते हैं यानी वे दो अलग संसारों के बीच सेतु जैसे होते हैं। इनके नीचे से गुज़रते हुए व्यक्ति पवित्र जगत के और क़रीब पहुंचने का अहसास रखता है।

यह कमाल का विचार है। हम सब जब किसी देवालय या किसी ख़ास स्थान पर जाते हैं, तो उसके द्वार, उसके आसपास के स्थानों, वस्तुओं को बहुत ध्यान से देखते और महसूस करते हैं। हमारा प्रयोजन सोद्देश्य होता है। लेकिन वहीं कार्यस्थल और घर के द्वार के भीतर-बाहर आने पर वो भाव नहीं रहता। मुद्दा आदत या नियमितता का नहीं है, नज़र और नज़रिए वाली बात है।

त्योहारों का सिलसिला शुरू होने को है। हम घर की व्यवस्था में नयापन लाएंगे, यानी नज़ारे बदलेंगे। पर्वों का एक अर्थ इसमें भी निहित है कि हम जीवन पर नई नज़र डाल पाएं। रिश्तों की संभाल, घर-परिजनों से जुड़ी योजनाओं और अपने परिवेश में कुछ ऐसा सार्थक बदलाव ला सकें, जो दिखे भी, सुहाए भी। सायास संवार की अवधारणा से परिपूर्ण हैं हमारे पर्व। इस नज़रिए से देखें, तो बदलते नज़ारों का आनंद शिद्दत से महसूस होगा। नई निगाह से नए रंग दिखेंगे।

---

rachana@dbcorp.in * **ज़ेन, सरल जीवन जीने की कला, लेखक-** शुनम्यो मसुनो, **प्रकाशक-** मंजुल प्रकाशन

अहा! अतिथि

तलत अज़ीज़

ज़िंदगी की बज़्म

• दिनेश पाठक

विगत तीन दशकों से पत्र-पत्रिकाओं हेतु कला, संस्कृति, फ़िल्म, संगीत एवं सामयिक लेखन में सक्रिय। आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं टीवी चैनलों से कार्यक्रम/ वृत्तचित्र लेखन, निर्माण एवं प्रस्तुतकर्ता के रूप में लंबा जुड़ाव। अभिनव शब्द शिल्पी सम्मान सहित कई पुरस्कारों से सम्मानित।

ग़ज़ल गायकी के लिए जैसा नर्मो-नाज़ुक मिज़ाज चाहिए, उसके लिए भले ये मुफ़ीद वक़्त नहीं...

लेकिन...

तलत अज़ीज़ जैसे फ़नकारों को चाहने वालों का एक वर्ग हमेशा से रहा है और रहेगा।

तलत मखमली आवाज़ के धनी हैं।

फ़िल्म बाज़ार के गीत फिर छिड़ी बात फूलों की से आज भी पहचाने जाने वाले तलत की कला और शख़्सियत में भी फूलों सरीखी ही मुलायमियत है।

अलबत्ता वो इस बात को बख़ूबी जानते हैं कि –

ग़ज़ल कहने-सुनने वाले अब पहले की तरह रहे नहीं, फिर भी वो अपनी धुन में अपने फ़न पर बदस्तूर तराश धरते आ रहे हैं।

इस बार तलत अज़ीज़ हमारे अहा अतिथि हैं...

हमसे हुई आत्मीय बातचीत में उन्होंने अपनी ज़िंदगी के अनेक पहलुओं पर अपनी सुपरिचित दानिशबंदी से चर्चा की है।

11 नवंबर, 1956 को हैदराबाद में जन्मे तलत अज़ीज़ ने इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट एंड कॉमर्स से बीकॉम ऑनर्स की पढ़ाई की। कलाप्रेमी परिवार गीत और ग़ज़लों की महफ़िल का आयोजन अक्सर करता रहता था। जगजीत सिंह, जांनिसार अख़्तर सहित अन्य कई बड़ी हस्तियों को इन कार्यक्रमों में आमंत्रित किया जाता था, लिहाजा गीत, ग़ज़ल और शायरी के माहौल से तलत रूबरू होने लगे। संगीत की शुरुआती शिक्षा किराना घराने से मिली। यहां उस्ताद अहमद ख़ान और बाद में उस्ताद फ़ैयाज़ अहमद ख़ान ने संगीत की बारीकियों से अवगत कराया। बाद में उन्होंने पाकिस्तान के जाने-माने ग़ज़लनवाज़ मेहदी हसन से भी गायकी के गुर सीखे।

अहा! अतिथि... तलत अज़ीज़.. जारी...

talat aziz
52
talat aziz
Talat Aziz

गाने का शौक़ रखते हो तो- मन्ना जैसी ऊंचाई पाकर दिखाओ

हमारे घर में एक अदबी माहौल था। मेरी मां अफ़सानानिगार थीं, शॉर्ट स्टोरीज़ लिखा करती थीं और हर हफ्ते के आख़िर में एक अदबी महफ़िल मेरे घर पर होती थी। उसमें तमाम जाने-माने लिखने-पढ़ने वाले लोग शामिल होते थे। शायद इसी माहौल से मुझमें भी गायकी का शऊर पैदा हुआ और मैं कुछ गुनगुनाने भी लगा।

मुझे एक वाक़िया याद है...

उस ज़माने में एचएमवी ने एक रिकॉर्ड प्लेयर बाज़ार में उतारा था। मेरे वालिद साहब एक दिन वो घर ले आए और उस पर उन्होंने 78 आरपीएम का रिकॉर्ड लगाकर मुझे मन्ना डे साहब का गाना सुनवाया- 'पूछो ना कैसे मैंने रैन बिताई'... और मुझसे कहा कि अगर तुम गाने का शौक़ रखते हो तो इस ऊंचाई तक तुम्हें पहुंचना होगा। मेरी दिलचस्पी को देखते हुए उन्होंने कहा कि मैं ऐसा करता हूं, गाना सीखने के लिए तुम्हें किसी उस्ताद के पास भेजता हूं ताकि तुम क़ायदे से सीख सको। तो इस तरह उस्ताद असद अली से मैंने सीखना शुरू किया, लेकिन मेरी पढ़ाई-लिखाई और स्पोर्ट्स वग़ैरह भी साथ में जारी थे।

मैं क्रिकेट भी ख़ूब खेलता था और हाईस्कूल तक आते-आते मैं अच्छा-ख़ासा क्रिकेटर बन गया था। लेकिन गीत-संगीत में एक रूहानियत महसूस होती थी।

■

जारी... अहा! अतिथि... तलत अज़ीज़...

जगजीत जी बोले- माइक पकड़कर मैं बैठ जाता हूं, तुम गाओ...

1975 में **जगजीत सिंह साहब से मेरी पहली मुलाक़ात तब हुई, जब वे हैदराबाद आए थे।** मैं अपने वालिद के साथ उनसे मिलने गया था। बड़े ही मिलनसार स्वभाव के थे। बड़े ख़ुलूस के साथ मिले, बोले- आओ मेरे साथ गाओ।

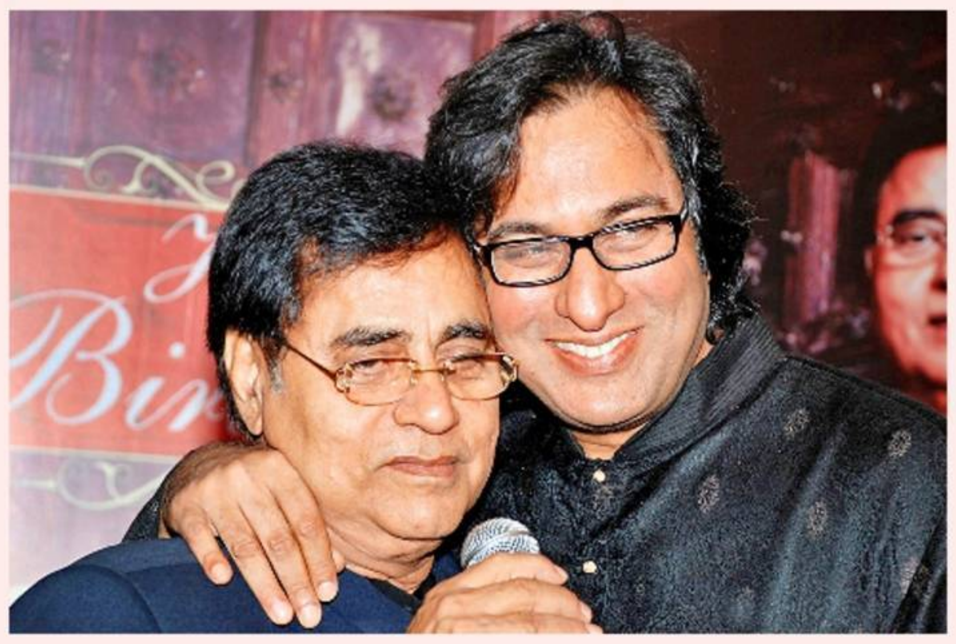

मैंने कहा नहीं अभी नहीं, आप कल आइए हमारे घर, हम आपको सुनाएंगे। वो दूसरे दिन आए, घर पर एक साधारण-सा माइक था बिना स्टैंड का। मैं गाने बैठा हारमोनियम लेकर तो प्रॉब्लम आई कि माइक कैसे पकड़ूं... आपको आश्चर्य होगा कि जगजीत जी बोले, माइक पकड़कर मैं बैठ जाता हूं, तुम गाओ। और बस मैंने गाना शुरू कर दिया।

मैं गाता गया, गाता गया, काफ़ी देर हो गई, मैंने आंख खोलकर देखा तो मेरी वालिदा मुझे इशारा कर रही थीं कि जगजीत जी कितनी देर माइक पकड़कर बैठे रहेंगे। मैंने उनसे क्षमा मांगी। वो कहने लगे, अरे कोई बात नहीं और गाओ।

जब मैंने अपने पहले एल्बम का कॉन्ट्रैक्ट साइन किया तो मैंने जगजीत जी को फ़ोन किया। मैंने कहा, आप सीनियर हैं और इस फ़ील्ड को बेहतर समझते हैं तो क्यों ना इसे आप कंपोज़ करें। वो बोले, आ जाओ ट्राय करते हैं। मेरी ग़ज़ल- कैसे सुकून पाऊं... उसे उन्होंने अपने तरीक़े से कंपोज़ किया।

▪

तलत का पहला एल्बम जगजीत सिंह के निर्देशन में 1980 में रिलीज़ हुआ था। जगजीत सिंह एल्बम के कंपोज़र थे, टाइटिल था- 'जगजीत सिंह प्रज़ेंट्स तलत अज़ीज़'। बाद में ख़य्याम साहब ने तलत से गवाया।

तलत की आवाज़ में, 'ज़िंदगी जब भी तेरी बज़्म में लाती है हमें, ये ज़मीं चांद से भी बेहतर नज़र आती है हमें'... ग़ज़ल एक ज़माने में हर ग़मजदा इंसान का सहारा हुआ करती थी। फ़िल्म बाज़ार की ग़ज़ल 'फिर छिड़ी रात बात फूलों की' और फ़िल्म डैडी का गीत 'आईना मुझसे मेरी पहली-सी सूरत मांगे'... तलत को हमेशा ग़ज़लों और गीतों के प्रमुख फ़नकार के रूप में शुमार करते रहेंगे। बाद के वर्षों में उन्होंने ये नज़दीकियां, धुन, फ़ितूर सहित कई फ़िल्मों में संगीत निर्देशन, गायन और अभिनय भी किया। उनके कुछ प्रमुख एल्बम हैं- लहरें, एहसास, सुरूर, सौग़ात, तसव्वुर, मंज़िल और धड़कन।

तलत की हमसफ़र बीना अज़ीज़ प्रसिद्ध पेंटर हैं। इनके दो बेटे अदान और सैयद हैं। ग़ज़ल और गीतों के अपने चालीस साला सफ़र के लिए तलत ईश्वर के बाद अपनी शरीक़े-हयात बीना का ही शुक्रिया अदा करते हैं और उन्हें अपनी सबसे बड़ी क्रिटिक भी बतलाते हैं। वो कोई भी नई ग़ज़ल कंपोज़ करते हैं तो सबसे पहले उन्हें ही सुनाते हैं।

आइए पढ़ते हैं – तलत साहब से हमारे सवालों और उनके जवाबों का सिलसिला...

सवाल?

एक दशक से ग़ज़ल की मक़बूलियत में काफ़ी गिरावट नज़र आ रही है। आप इस बारे में क्या सोचते हैं?

जवाब!

ग़ज़ल की मक़बूलियत कम नहीं हुई है, दरअसल ग़ज़लों के एल्बम का ज़माना लद गया है। इसलिए आपको बाज़ार में किसी नए ग़ज़ल एल्बम की पहले जैसी धूम सुनने को नहीं मिलती। म्यूज़िक कंपनियां भी कहती हैं कि कोई बाज़ार ही नहीं रहा तो हम एल्बम क्यों रिलीज़ करें? पिछले दिनों हिंदुस्तान की एक बहुत बड़ी म्यूज़िक कंपनी को मैंने अपनी ग़ज़लें रिकॉर्ड करने के लिए कहा तो उन्होंने जवाब दिया कि आजकल नया कुछ भी नहीं चल रहा है, हम तो पुरानी चीज़ों का ही रीमिक्स कर रहे हैं या सिंगर बदल के गवा रहे हैं।

सन् 2016 में मैंने 'वो शाम' टाइटल से अपनी नई ग़ज़लों का एल्बम ऑनलाइन स्ट्रीम किया था। साढ़े छह लाख से ज़्यादा लोगों ने उसे सुना और सराहा, लेकिन एक लाख ने भी उसे ख़रीदा नहीं। जबकि उसकी ऑनलाइन क़ीमत सिर्फ़ 12 रुपए पड़ रही थी। तो अब ऐसे में कोई क्यों कुछ नया करना चाहेगा? 2017 में परवीन शाकिर की ग़ज़लें रिकॉर्ड कीं। उसे भी तमाम सारी लाइक्स मिलीं लेकिन बात वही हुई कि ख़रीदा किसी ने नहीं और रॉयल्टी ईमानदारी से मिलती नहीं है।

आपको पता है, आठ हज़ार करोड़ के म्यूज़िक मार्केट में केवल हज़ार करोड़ की रॉयल्टी ही अदा की जाती है। चलिए हम तो यह सोच लेंगे कि हमारा तो ज़माना हो गया, क्योंकि हमारे पास तो पहले का ही इतना कुछ स्टॉक है कि हम कंसर्ट्स वग़ैरह में गाकर या देश-विदेश में प्रोग्राम करके अपना घर चला सकते हैं, लेकिन जो नए लोग अब आ रहे हैं वो क्या करेंगे? एक तरह से देखा जाए तो आने वाले समय में धीरे-धीरे करके यह जो कला है, यह ख़त्म ही हो जाएगी।

सोशल मीडिया पर तो आजकल यह देखने में आ रहा है कि हर कोई अपने आपको लेजेंड सिद्ध करने पर तुला हुआ है। वैसे मेरे ख़्याल से टैलेंट तो आज बहुत है, लेकिन हर कोई जल्दबाज़ी में नज़र आता है और शोहरत पाने के लिए फ़िल्मी गाने गाने लगता है या ग़ज़ल गाने की कोशिश करता है। लेकिन मौसिक़ी एक ऐसी चीज़ होती है, जिसमें धीरे-धीरे करके ही एक मुकाम बनता है। अगर आप यह चाहो कि अभी शुरू किया और साल भर के अंदर प्रसिद्ध हो जाओ तो ऐसा संभव नहीं है।

सवाल?

आजकल सूफ़ी कंपोज़िशन और गायक बहुत लोकप्रिय हो रहे हैं, क्या कारण है?

जवाब!

हां, एक नया ट्रेंड शुरू हुआ है सूफ़ी म्यूज़िक का। अब आप उनसे यह पूछिए कि सूफ़ी म्यूज़िक क्या बला है? देखिए, सूफ़ी म्यूज़िक कोई चीज़ नहीं होती है, सूफ़ियाना कलाम कहा जा सकता है। मैंने पूछा आपको पता है यह लफ़्ज़ सूफ़ी कहां से आया है तो कोई नहीं बता पाया। सूफ़ी एक मूवमेंट है। सूफ़ी वो लोग थे जो आठवीं-नौवीं सदी में टर्की में- जो उस ज़माने में अंटालिया कहलाता था- तानाशाही के ख़िलाफ़ एकजुट हुए थे और उन्होंने कहा था कि हम यह सब नहीं मानते हैं। वो दूरदराज़ के जंगलों-रेगिस्तान-पहाड़ों में चले गए कि हमें तो अपने रब से मिलना है, उसकी खोज करनी है, उससे एक रिश्ता क़ायम करना है। जैसा हमारे यहां ऋषि-मुनि किया करते थे। वो लोग जो मन में आता, वह गाते-गुनगुनाते थे ख़ुदा की इबादत के लिए। उनकी एक अलग पहचान हुआ करती थी, जैसे वे लोग बिना सिले हुए ऊन के कपड़े पहना करते थे, जिन्हें सूफ़ कहा जाता था। उसी से शब्द सूफ़ी बना। और उनकी जो गायन शैली थी, उसे सूफ़ियाना कलाम कहा गया।

तो यह तो था इतिहास सूफ़ी कल्चर के बारे में। लेकिन अब तो ऐसा होने लगा है कि किसी भी गाने में अगर मौला शब्द आ जाए तो उसे सूफ़ियाना कलाम कहा जाने लगा। ऊंचे सुर में कोई गा रहा है तो कहा जाता है वाह क्या सूफ़ी गा रहा है। उसे सूफ़ी म्यूज़िक कहा जाने लगता है। यह सही नहीं है। नुसरत फ़तेह अली ख़ां ने वैसे गाया था तो उनकी आवाज़ ही वैसी थी, अब हर कोई तो नुसरत नहीं बन सकता ना?

आजकल का एक बहुत ही लोकप्रिय सूफ़ी गायक है। मैं नाम तो नहीं लूंगा, लेकिन मैंने एक दिन उसे गाते हुए सुना तो देखा, निचले सुर से एकदम ऊंचे सुर पर पहुंच गया।

मैंने उससे पूछा कि भाई, एकदम से ऊंचे सुर में क्यों पहुंच गए, तो मुझसे कहने लगा कि क्या करूं ख़ान साहब, लोग आजकल यही मांगते हैं... कहते हैं ऊंचा गाओ। मैंने कहा कि भाई देख, ऐसी ग़लती मत कर, तेरा गला बहुत जल्दी बैठ जाएगा, वोकल कॉर्ड्स ख़त्म हो जाएंगी।

सवाल?

आजकल यह भी सुनने में आ रहा है कि ग़ज़ल में भी अब वो बात नहीं रही, जो पहले थी।

जवाब!

जी हां, बात सही है। ग़ज़ल में वो बात अब वाक़ई नहीं रही जो सत्तर और अस्सी के दशक में थी। ग़ज़ल के नाम पर अब तो गीतनुमा चीज़ें गाई जा रही हैं। शुरुआत में बेगम अख़्तर ने ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाया, फिर तलत महमूद साब ने। बाद में मेरे उस्ताद मेहदी हसन साब ने ग़ज़ल गायकी को बहुत कुछ दिया। दरअसल जो असली ग़ज़ल है, उसमें मेहनत बहुत लगती है।

आजकल वैसे तो बच्चे बड़े प्रतिभाशाली हैं, लेकिन उन्हें सही राह दिखाने वाले नहीं हैं। अक्सर लोग कहते हैं, सत्तर से नब्बे के दशक तक ग़ज़ल उठान पर थी और फिर गिरावट का दौर आया। मैं यह नहीं मानता हूं, क्योंकि ग़ज़ल के सुनने वाले आज भी बहुत हैं, तभी तो देश-विदेश में इतने लाइव कंसर्ट्स होते रहते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो हमारे जैसे कलाकार तो घर पर ही बैठे रहते। हां यह बात ज़रूर है कि पहले की तुलना में अब नए रिकॉर्ड, सीडी, कैसेट्स वग़ैरह जारी नहीं हो रहे हैं। उसका कारण यह है कि आजकल ज़माना स्ट्रीमिंग का हो गया है, सीडी वग़ैरह अब कोई ख़रीदता नहीं है।

आजकल कई लाइव स्ट्रीमिंग चैनल्स के ज़रिए ऑनलाइन म्यूज़िक मार्केट बहुत बढ़ गया है। अब तो मुझे या किसी भी दूसरे गायक-कलाकार को किसी म्यूज़िक कंपनी की ज़रूरत भी नहीं है क्योंकि कई ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म उपलब्ध हैं। इन पर मैं या कोई भी कलाकार नई-नई चीज़ें कंपोज़ करके डाल सकता है। लेकिन सवाल यही है कि उसको ख़रीदने वाले भी तो होने चाहिए। अगर लोग ख़रीदेंगे नहीं, हमको पैसे नहीं मिलेंगे तो फिर हम उसे क्यों करेंगे?

सवाल?

सुना है, मेहदी हसन साहब ने आपको ख़ुद बुलाकर अपना शागिर्द बनाया था...

जवाब!

जी हां, आपने बिलकुल ठीक सुना है। उन्होंने ख़ुद मुझसे अपना शागिर्द बनने के लिए कहा था, लेकिन मुझसे पापड़ भी ख़ूब बिलवाए। दरअसल, सन् 1977 में कनाडा में मेहदी हसन साब एक प्राइवेट कंसर्ट में आए थे। वहीं मेरी मुलाक़ात उनसे हुई- किसी के घर पर। वहां उन्होंने मुझे सुना, फिर अगले दिन बुलाया और कहा सुनो, तुम मेरे शागिर्द बन जाओ, गंडा बंधवा लो। मैं अगले साल 1978 में भारत आ रहा हूं, वहां तुम मुझसे मिलना।

मैंने उनसे कहा ठीक है ख़ां साहब। अगले साल वे भारत आए, मुंबई में इतनी भारी भीड़ थी। बड़े-बड़े लोगों के साथ उनके कार्यक्रम तय थे, लता मंगेशकर, दिलीप कुमार वग़ैरह, लेकिन इतने बिज़ी शेड्यूल के बावजूद उन्होंने अपनी बात याद रखी और मुझे फोन करके बुलाया। मैं उनसे मिलने के लिए गया और फिर उनके साथ में होते-होते ऐसा एक समय आया कि 1986 में हम दोनों ने पूरे अमेरिका का एक टूर भी किया। उन्होंने मुझे बुलाकर शागिर्द बनाया, इसका मतलब यह नहीं कि मैं कोई बहुत परफ़ेक्ट था। मेरे परफ़ेक्शन के लिए उन्होंने मुझसे मेहनत भी ख़ूब करवाई। एक संयोग यह भी रहा कि सन् 2000 में उनकी जो आख़िरी परफ़ॉर्मेंस थी उसमें हम साथ ही थे।

सवाल?

आपकी निगाह में, कोई ग़ज़ल अपनी शायरी की वजह से मक़बूल होती है या जो गुलुकार है उसके अंदाज़-ए-बयां के कारण?

जवाब!

इस बारे में मेरा यह मानना है कि शायर तो बहुत अच्छा लिखता है लेकिन पॉपुलैरिटी में सिंगर और उसकी धुन का बहुत बढ़ा हाथ होता है। किसी ने कहा है ना, 'ग़ज़ल में बंदिशें अल्फ़ाज़ ही नहीं सबकुछ, जिगर का ख़ून भी चाहिए असर के लिए।' फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की ग़ज़ल 'गुलों में रंग भरे' को मेहदी हसन साहब ने गाया, पॉपुलर किया, और इतना पॉपुलर कर दिया कि एक मुशायरे में किसी ने फ़ैज़ साहब से कहा कि वो मेहदी हसन वाली ग़ज़ल सुनाएं। यानी अदायगी का भी बड़ा रोल होता है किसी चीज़ को पॉपुलर करने में।

सवाल?

यह भी तो कहा जाता है कि पहले जैसे ग़ज़ल गाने वाले भी अब नहीं रहे, क्या यह भी ग़ज़ल की लोकप्रियता कम होने का एक कारण है?

जवाब!

हां, यह बात काफ़ी हद तक सही है। क्योंकि ग़ज़ल का जो असली रंग था वह अब नहीं रहा है। आज के ज़माने में कोई असली ग़ज़ल इसलिए नहीं गाता है क्योंकि युवा कलाकार जल्दी कामयाबी चाहता है। हालांकि वह सुपर टैलेंटेड है लेकिन फिर भी पहले किए हुए काम का ही रिपीटीशन करने में लगा है। उससे होता यह है कि उनका ख़ुद का ओरिजिनल कुछ नहीं रह पाता है, जबकि अलग पहचान ओरिजिनल से ही बनती है। हालांकि, संगीत में बदलती दिलचस्पी की वजह से आजकल ग़ज़ल फ़िल्मों में कम दिख रही है लेकिन वह ख़त्म कभी नहीं होगी। ग़ज़ल का क्रेज़ बरक़रार है, भले रफ्तार धीमी पड़ गई हो। रेडियो प्रोग्राम कारवां-ए-ग़ज़ल की जब हमने शुरुआत की थी तो हमारा टारगेट-ऑडियंस 45 साल के ऊपर के लोग थे लेकिन बाद में पता चला कि हमारे प्रोग्राम को 25 साल तक के युवाओं ने ज़्यादा पसंद किया।

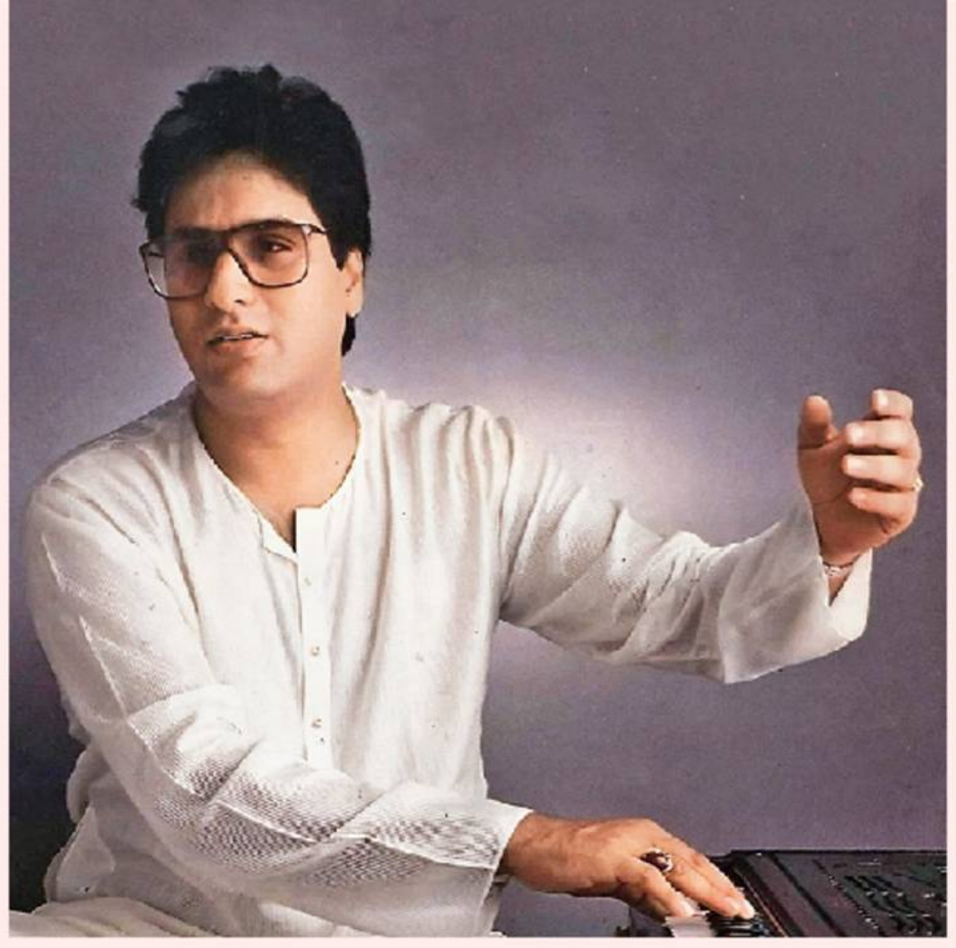

ज़िंदगी जब भी तेरी बज़्म में... मेरा ट्रेडमार्क बन गई है

1978 में **जब मैं मुंबई में स्ट्रगल कर रहा था तो एक महफ़िल में मेरी मुलाक़ात ख़ैय्याम साब से हुई।** उन्होंने मुझे सुना, हौसला अफ़ज़ाई की और कहा, बेटा बहुत अच्छी आवाज़ है, जब भी गुंजाइश बनेगी तुम्हें फ़िल्म में गाने का मौक़ा दूंगा।

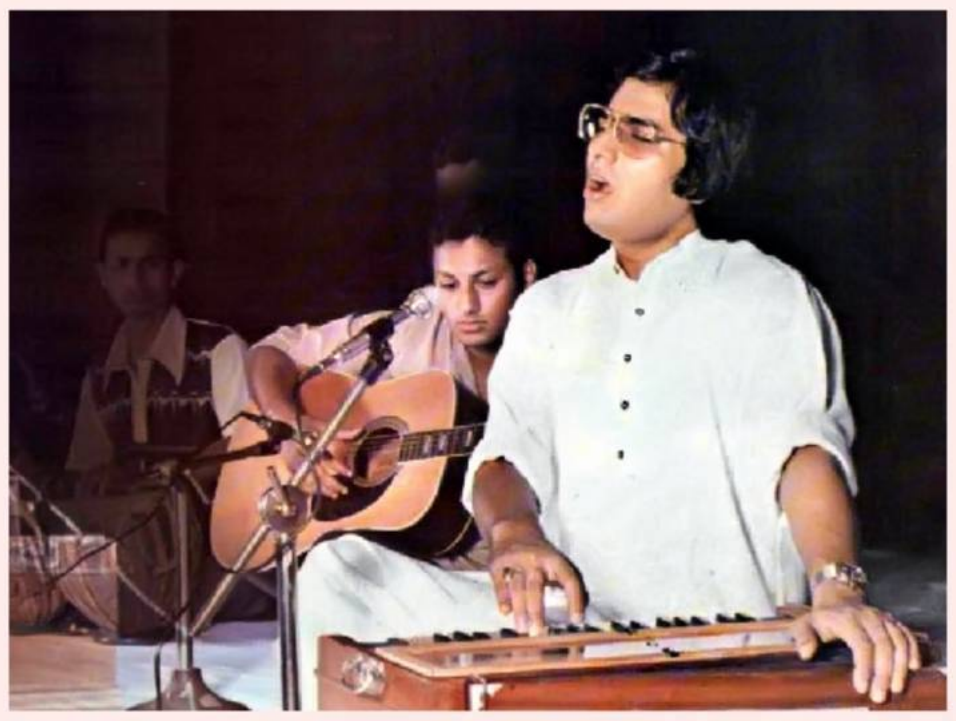

तीन साल बाद 1981 में उनका फ़ोन आया। उन्होंने कहा, एक मौक़ा है तुम आकर मुझसे मिलो। मैं गया और उन्होंने लगातार पंद्रह-बीस दिनों तक मुझसे रिहर्सल करवाई। तब वो ग़ज़ल बनी- 'ज़िंदगी जब भी तेरी बज़्म में लाती है हमें'... जो अब मेरा ट्रेडमार्क बन गई है।

उसके बाद बाज़ार आई- 'फिर छिड़ी बात फूलों की'... वो भी मेरे लिए एक लैंडमार्क था कि एक ही रिकॉर्डिंग बूथ में, मैं और लता जी साथ-साथ गा रहे हैं। फिर महेश भट्ट साब ने डैडी में सभी गाने मुझसे गवाए। उसका गाना 'आईना मुझसे पहले-सी सूरत मांगे' ख़ूब पॉपुलर हुआ।

गुलाम अली भाई से भी मेरी मुलाक़ात 1978 से ही है। मुझे अपना छोटा प्रा कहते हैं। बाद में 2005 में मैने उनके साथ अमेरिका और कनाडा में लगातार 25 कंसर्ट किए। दरअसल, दो कलाकार जब जुगलबंदी करते हैं तो लोग आमतौर पर इसे कॉम्पीटिशन समझते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। हर कलाकार का अपना एक अलग अंदाज़ होता है।

■

क्या, किसे और कैसे दिया जाए

देने का अपना सुख, बांटने का अपना मज़ा, और लुटाने में तो आनंद ही आनंद है।

लेकिन ये सारी बातें अधूरी हैं।

हम यदि देने के सुख को ठीक से न समझें तो हो सकता है सुख भी अधूरा ही मिले।

पूरा सच तब होगा जब हम यह जान लें कि किसी को दिया क्या जाए। उसके बाद किसको और कैसे दिया जाए।

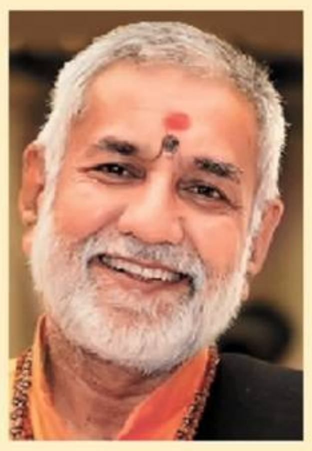

• पं. विजयशंकर मेहता

1957 को जन्मे पंडितजी ने 20 वर्षों तक भारतीय स्टेट बैंक में सेवाएं दीं। भास्कर समूह से भी 20 वर्षों तक जुड़े रहे। 15 वर्षों से पंडितजी विभिन्न विषयों पर व्याख्यान दे रहे थे, किंतु वर्ष 2004 में इन विषयों को जीवन प्रबंधन से जोड़ा। श्रीरामकथा, श्रीमद्भागवत, महाभारत, श्रीहनुमानचालीसा, गीता विषयों पर पंडितजी के व्याख्यानों को देखा, सुना, पढ़ा जा रहा है।

देने की व्यवस्था को चार भागों में बांटा जा सकता है। तन, मन, धन और जन।

इसका मतलब है आप कुछ लोगों का समूह बनाकर भी उनके लिए काम कर सकते हैं। लोगों को जाग्रत करना, उनको सही दिशा देना यह जन के माध्यम से सेवा है। तो तन, मन, धन और जन, ये चार माध्यम हैं सेवा के। यदि इसे ठीक से समझें तो ही देने का सुख मिल सकेगा।

इसमें एक बड़ी बात यह है कि देने में सुख है, लेकिन अकारण देने में आनंद है। सुख का उल्टा दुःख हो जाएगा, लेकिन आनंद का उल्टा कुछ नहीं होता। जब आप किसी को कुछ दे रहे हों तो उसमें निज-हित और रहित का संतुलन बना लीजिएगा। इसीलिए भारतीय संस्कृति में एक शब्द चलता है- कल्याण। अपने और दूसरे के कल्याण की भावना से सेवा कीजिए। कल्याण यानी वेलफ़ेयर बहुत बड़ा, व्यापक शब्द है। इसके आधार पर यदि हम लोगों की किसी भी प्रकार से सेवा करें, तो सचमुच उसका बहीखाता दुनिया में नहीं लिखा जाएगा, दुनिया बनाने वाले के यहां लिखा जाएगा।

ईश्वर यह सब अच्छी तरह से देख रहा होता है, और जब आप किसी को कुछ देते हैं तो वह भी उससे कई गुना अधिक फिर से आपको लौटाने के लिए तैयार हो जाता है। यहीं से पता चलेगा सच्चा सुख क्या है। आपने दुनिया को दिया, दुनिया ने आपको कुछ लौटाया, उसमें उतना सुख नहीं मिलेगा। मिलेगा भी तो उसमें कहीं न कहीं दुःख का भी छींटा होगा। लेकिन, आपने दुनिया को दिया और दुनिया बनाने वाले ने आपको लौटाया तो इसमें आनंद मिलेगा। शायद इसी को कहा गया है देने का सुख।

तो चलिए, चार ख़ानों में बांटकर देखते हैं क्या दिया जा सकता है, किसे दिया जा सकता है, हमें क्या करना है और लौटकर क्या आएगा।

आमुख कथा... आनंद पंचांग... जारी...

❶ तन से सेवा

सेवा का पहला क्षेत्र है तन का। इसमें हम अपने तन से दूसरों की सेवा कर रहे होते हैं। दुनिया में कई लोग अस्वस्थ हैं, असहाय हैं, विकलांग हैं, लाचार हैं। किसी के भी तन की रोटी-कपड़ा-मकान और सेहत, ये चार मुख्य आवश्यकताएं हैं।

1 **दीजिए.** हम अपने तन से ज़रूरतमंद लोगों की सेवा कर सकते हैं। शुरुआत घर से कीजिए। घर में जो बड़े-बूढ़े हों, जिनकी देह थक चुकी हों, उनकी सेवा करें। फिर बाहर निकलने पर तो दुनिया बहुत बड़ी है। करते जाइए।

2 **मिलेगा..** आपके तन को तृप्ति मिलेगी। तृप्ति संतोष से ऊपर की स्थिति है। जब आप किसी असहाय के तन को संभालेंगे, उसे सहारा देंगे तो आपके भीतर हॉर्मोनल बदलाव होंगे और अपनी ही देह से संतुष्टि मिलने लगेगी। आप एक परितृप्ति महसूस करेंगे।

3 **करिए...** तन से सेवा करने निकलें तो सबसे पहले अपने तन को संभालिए। यानी स्वस्थ रहिए। शरीर में जो दस इंद्रियां हैं, यदि इन पर नियंत्रण नहीं पाया, तो ये बीमार कर देंगी। अभी हम तन से ख़ुशी प्राप्त करने के लिए अपनी कामऊर्जा का उपयोग करते हैं। लोग समझते हैं भोग-विलास में डूबकर तन को सुख मिलेगा, यह उनकी भूल है। कामऊर्जा का सदुपयोग करना ही स्वास्थ्य है और इसे समझना होगा। मनुष्य जब 14 साल या उसके आसपास की उम्र में प्रवेश करता है तो उसकी कामऊर्जा जाग जाती है। यहां संभलकर नहीं रहे तो वह ग़लत रास्ते पर ले जाएगी। 28 साल की उम्र में कामऊर्जा शिखर पर होती है। यह वही उम्र है जब चरित्र को लेकर बहुत संयमित रहना पड़ता है। 45 की उम्र के बाद कामऊर्जा नीचे गिरना शुरू होती है और तब इस गिरती हुई कामऊर्जा को कोई न कोई सहारा चाहिए। वही सहारा है सेवाभाव। 45 की उम्र के बाद तो अपने तन से दूसरों के तन के लिए ख़ूब सेवा करिए।

❷ मन से सेवा

सेवा तन की ही नहीं, मन की भी करना पड़ती है। हमारे पास भी एक मन है। इससे दूसरों के मन की सेवा करें। आज अधिकांश लोग तन से ज़्यादा मन से बीमार हैं। जो मन से बीमार हैं, टूटे हुए हैं, उदास हैं, उन्हें भी पॉज़िटिविटी देना बहुत बड़ी सेवा है और इसमें भी देने का सुख छिपा है। अपने घर के बड़े-बूढ़ों को समय दीजिए, क्योंकि वे मन से उदास हो सकते हैं। बच्चों का मन भटक रहा है। उन्हें भी प्यार की ज़रूरत है।

1 **दीजिए.** मन से सेवा का अर्थ होगा लोगों को ख़ूब ख़ुशी दीजिए। जब किसी का बुरा वक़्त आता है तो उसका मन उसे और डराता है। दुर्भाग्य आता है तो लोग हालात को कोसते हैं, कभी-कभी ख़ुद को कोसते हैं। आपके आसपास यदि कोई ऐसी स्थिति में हो तो उनकी मदद करिए। यह जो प्रोत्साहन हम बांट सकते हैं अपने मन से दूसरे के मन को, बड़े काम का हो सकता है उनके लिए।

2 **मिलेगा..** जब हम किसी के मन की सेवा करते हैं तो हमें क्या मिलेगा? शांति। मन अशांति का केंद्र है। जैसे ही आपने दूसरे को ख़ुशी दी, लौटकर वह शांति के रूप में आपके भीतर आएगी। आप पाएंगे मन एकदम शांत हो गया, क्योंकि उसने अभी-अभी दूसरे को वह बांटा है जो किसी का मन लेना नहीं चाहता, पर आपने समझा-बुझाकर, प्रेम से उसे पॉज़िटिविटी दी है। उधर उसका मन ख़ुश हुआ, इधर आपका मन शांत होगा।

3 **करिए...** किसी के मन को ख़ुशी देने से पहले अपने मन पर काम करना होगा। ग़लत विचार इसका भोजन है। इसलिए जब सेवा करने निकलें, किसी को कुछ देने का इरादा हो तो अपने मन को ग़लत विचारों से बाहर निकालिए। वरना अच्छे काम के भी परिणाम बुरे आएंगे।

❷ धन से सेवा

सेवा का तीसरा और विशाल क्षेत्र है धन से सेवा। यह तो सच है कि जीवन की हर गतिविधि पैसे से शुरू होती है, रुपए पर ख़त्म हो जाती है। हम मनुष्यों की सांस-सांस पर रुपया-पैसा अपनी मोहर लगाता है। तो यदि आपके पास धन है, कम है या ज़्यादा है, यह अलग बात है, लेकिन जितना भी है, उसका दस प्रतिशत भाग दूसरों की सेवा में ज़रूर लगाया जाए।

1 **दीजिए.** धन से सबसे बड़ी सेवा यह होती है कि आप सामने वाले की ज़रूरत की पूर्ति करते हैं। कई लोग ऐसे हैं जिनको धन की आवश्यकता होती है और उनके पास उतना नहीं होता। फिर या तो वे निराशा में डूब जाएंगे या अपराध में उतर जाएंगे। पर, यदि आपके पास धन है और आप उसका कुछ भाग सेवा के रूप में ख़र्च कर सकते हैं तो सामने वाले की आवश्यकता को जानें और उसे पूरा करें।

2 **मिलेगा..** जब धन से किसी की सेवा करते हैं तो मिलेगा क्या? यश, प्रतिष्ठा, और हो सकता है लोकप्रियता मिल जाए। ये चीज़ें मिलेंगी ही, लेकिन फिर इनको ठीक से पचाइए। वरना ये ख़ुद के लिए ज़हर बन जाएंगी।

3 **करिए...** धन से सेवा के क्षेत्र में उतरें तो सबसे पहला काम तो यह करिए कि ईमानदारी व परिश्रम से धन कमाएं और उससे सेवा करें। फिर जो मिलेगा वह होगा देने का सुख। दौलत से कभी कोई तृप्त नहीं हो पाया। धन अपने साथ कई तरह के दोष भी लेकर आता है। विचार करिए धन मेरे लिए है, क्योंकि मैं मनुष्य हूं। लेकिन, झंझट यहां से शुरू होगी जब आप यह कह दें कि मैं धन के लिए हो जाऊं। हम जिस तरह से शरीर को संवारते हैं, ऐसे ही धन को भी संवारना पड़ता है और धन का शृंगार है दान। दान का अर्थ है सामने वाले की आवश्यकता की पूर्ति। धन की तीन गति मानी जाती है- दान, भोग और नाश। आप अपने धन को दान की गति दीजिए।

❹ जन की सेवा

सेवा का चौथा क्षेत्र है जन। यानी जनसमुदाय। यह भी सेवा का एक बड़ा अवसर है। आपके आसपास बहुत सारे लोग होंगे। उनको संगठित कर सकते हैं। या आप अकेले बहुत सारे लोगों को कुछ समझा सकते हैं, उनका मार्गदर्शन कर सकते हैं। याद रखिए, कठिन से कठिन काम अकेले सरलता से कर सकते हैं। लेकिन, सरल से सरल काम दूसरों से करवाना कठिन है।

सेवा के इस क्षेत्र में दूसरे लोग जन के रूप में आपके सामने आएंगे। ख़ासकर हमारे देश में तो एक बड़ा जनसमुदाय अशिक्षित है, किसी न किसी रूप में लाचार है। इसलिए यहां जनसेवा और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। इसके लिए आपके पास दो चीज़ें होनी चाहिए। एक तो व्यवहार बहुत विनम्र हो, दूसरा आपके शब्द, आपकी वाणी बहुत मधुर हो। जब जनसेवा के क्षेत्र में निकलें तो आपके शब्द जीभ की कसरत नहीं, हृदय की भावुकता लिए हुए हों और विनम्रता आपका आवरण नहीं, स्वभाव होना चाहिए। तब जाकर आप जन की भावनाओं को जीत पाएंगे और उसे सही दिशा दे पाएंगे।

1 **दीजिए.** यदि किसी जनमानस, जनसमुदाय को सही दिशा देते हैं तो यह एक बहुत बड़ी सेवा है और इसके बदले में आपको मिलेगा सुख। देने का सुख। चूंकि शिक्षा के मामले में हमारा देश बहुत पीछे है, इसलिए उस कमज़ोर जनसमुदाय को सही दिशा देना है कि वह साक्षर हो, समझदार हो और भीड़ बनकर न रहे। भीड़ का कोई उद्देश्य नहीं होता। उसे भटकना ही है, पर समूह का एक उद्देश्य होता है। तो भीड़ को समूह में बदलना बहुत बड़ी जनसेवा है।

2 **मिलेगा..** जब जनसेवा करेंगे तो आपको क्या मिलेगा? नेतृत्व मिलेगा। महसूस होगा कि आप लोगों के बीच परमात्मा के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहे हैं। यही बड़ा सुख होगा। किसी मनुष्य के भीतर की मनुष्यता को सहलाकर जगा देना मानवता की बहुत बड़ी सेवा है।

3 **करिए...** जब जन की सेवा कर रहे हों तो ध्यान रखें कि उसमें राजनीति बिलकुल न करें। राजनीति बुरी चीज़ नहीं है। इस राजनीति ने तो स्वतंत्रता संग्राम के दौरान देश को आज़ाद करवाने में बड़ी मदद की है। राजनीति बुरी तब होती है जब इसमें बुरे लोग प्रवेश कर जाते हैं। लेकिन, फिर भी राजनीति में षड्यंत्र, कुटिलता, प्रतिस्पर्धा... ये सब होती है।

जब जनसेवा करने निकलें तो आपके नेतृत्व और मार्गदर्शन में इन चीज़ों का कोई स्थान न हो। इनसे सावधान रहिए। आपके शब्द लोगों को आहत नहीं करें, राहत पहुंचाएं और व्यवहार दूसरों को आश्वस्त करे कि ऐसे लोग भी हैं इस दुनिया में जिनको देखने पर परमात्मा की झलक दिखने लगती है।

समापन

इन चारों क्षेत्रों में इसलिए काम करिए कि कई लोगों को इन सभी क्षेत्रों में कुछ न कुछ ज़रूरतें होती ही हैं।

ज़रूरत हमारी भी होगी, लेकिन यदि अपनी ही ज़रूरत में उलझकर रह जाएं तो हमारी आवश्यकताएं हमारी ही क़ातिल हो जाएंगी। जैसे ही दूसरों की ज़रूरत को समझेंगे, आपकी अपनी ज़रूरतें परेशान नहीं करेंगी। दुनिया का क़ायदा है जब फूल पेड़ से हटता है, टूटता है, गिरता है और यदि सही जगह चढ़ जाए तो काम का होता है। आपका धन यदि दान में, सेवा में बदल जाए, आपका तन-मन यदि दूसरों की आवश्यकताओं को समझने लगे, तब आप जान पाएंगे कुछ ऐसा सुख भी इस दुनिया में है जो केवल भोग-विलास या निज हित से नहीं मिलता।

शहद की मिठास लेने वाले मधुमक्खी के मनोविज्ञान को नहीं जानते। हमें इस मामले में मधुमक्खी की तरह हो जाना चाहिए। एक मीठा छत्ता तैयार करिए और आगे बढ़ जाइए। दूसरे इसका स्वाद लेंगे, हम फिर सेवा की यात्रा पर निकल जाएंगे, जहां लोगों को इतना सुख देंगे कि लौटकर हमारे लिए वह आनंद में बदल जाएगा।

यथार्थ में भले इंसान की प्रवृत्ति
ये दिल मांगे मोर वाली हो...

लेकिन

मानव जीवन की तमाम अच्छाइयों और
बुराइयों को समेटने वाला हिंदी सिनेमा अक्सर
'देने के सुख' को कभी सहजता के साथ, तो कभी अपनी
नाटकीय शैली में व्याख्यायित करता रहा है।

**हमारी आमुख कथा का यह हिस्सा सिनेमा के
इसी परिप्रेक्ष्य को समर्पित है।**

ख़ुशियां देने के पल

हृषिकेश **मुखर्जी की फ़िल्म 'बावर्ची' (1972) का नायक (राजेश खन्ना)** धन-दौलत, यश और कीर्ति बटोरने के बाद दुनिया के खोखलेपन से ऊब जाता है और एक गुमनाम बावर्ची का भेष धरकर दिन-भर कलह में डूबे रहने वाले एक परिवार को थोड़े ही दिनों में परस्पर नेह के धागे में पिरो देता है। ख़ुशियों के बारे में बावर्ची का अलग ही फ़लसफ़ा है। वह कहता है, 'जीवन में बड़ी ख़ुशियां तो बहुत कम मिलती हैं, लेकिन छोटी-छोटी ख़ुशियां हमारे चारों तरफ़ फैली होती हैं। फिर हम उन चंद बड़ी ख़ुशियों के लिए ये छोटी-छोटी ख़ुशियां क्यूं क़ुर्बान करें?' उसका यह कहना भी कितना भला-सा लगता है कि अपना काम तो हर कोई करता है, मगर जो मज़ा दूसरों का काम करने में है, वो किसी और में नहीं। एक दिन वह चुपचाप घर से रवाना हो जाता है, लेकिन तब तक सारा परिवार एकजुट हो अपने जीवन का दर्शन 'जो सुख देने में है, वह लेने में कहां!' में खोज लेता है।

• शशांक दुबे

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य, लेख व अनुवाद प्रकाशित। 2004 से 2007 तक 'वागर्थ' में व्यंग्य कॉलम 'छींटे' तथा 2007 से 2014 तक 'नया ज्ञानोदय' में सिनेमा पर 'मैटिनी शो' कॉलम का प्रकाशन। एक व्यंग्य संकलन 'असल से तो नक़ल अच्छी' और हिंदी सिनेमा की विकास यात्रा पर केंद्रित 'हिंदी सिनेमा का कारवां' प्रकाशित।

ख़ुशी देने के मौक़े अपार

1971 आनंद

देने के इसी सुख को हृषिकेश मुखर्जी इससे पहले भी 'आनंद' में अपनी परंपरागत सीधी-सरल और विश्वसनीय-सी लगती शैली में दर्शा चुके थे।

यह फ़िल्म मौत के नित नज़दीक जाने वाले एक ऐसे ज़िंदादिल व्यक्ति की कहानी है, जिसका दर्शन है- 'ज़िंदगी लंबी नहीं बड़ी होनी चाहिए'। वह मौत से घबराकर निराशा के गर्त में डूबने के बजाय अपने आस-पास मौजूद लोगों के बीच खुशियां बांटकर शेष बचे जीवन के हर पल को जीना चाहता है। राजेश खन्ना ने आनंद के इस आत्मीय चरित्र को अपनी सरलता से इतनी गहराई दी थी कि फ़िल्म के अन्य पात्रों की ही तरह दर्शक भी उसके दर्द से कहीं भीतर तक जुड़ जाता है।

फ़िल्म में ऐसे कई प्रसंग आते हैं, जब दर्शक एक क्षण को भूल जाता है कि सामने पर्दे पर जो चल रहा है, वह एक नाटक है। वह उससे असंपृक्त क़तई नहीं रह पाता।

आनंद (राजेश खन्ना) का अपनी मुंहबोली भाभी से यह कहना कि 'मैं तुझे क्या आशीर्वाद दूं, तुझे तो यह भी नहीं कह सकता कि मेरी उमर तुझे लग जाए' या नर्स (ललिता पवार) के स्नेह से अभिभूत हो कहना, 'इतना प्यार मत करो, वरना अगले जन्म में तुम्हारा असली बेटा बनकर आ जाऊंगा' दर्शकों को भावविह्वल कर देते हैं।

'आनंद' दर्शकों को यह संदेश देती है कि लोगों को ख़ुशियां देने का एक मौक़ा भी मिले तो उसे मत छोड़ो।

1976 छोटी सी बात

देने के इस सुख को हृषि दा की ही तरह 'मध्यमार्गी सिनेमा' के ध्वजवाहक बासु चटर्जी 'छोटी सी बात' में अलग ही अंदाज़ में दर्शाते हैं।

बात-बात पर सर खुजाने, नाक पर हाथ रखने, व्यावहारिक जीवन, प्रेम और नौकरी के बहुमुखी मोर्चों पर असफल अरुण (अमोल पालेकर) का खंडाला के जूलियस नगेंद्रनाथ विलफ़्रेड सिंह (अशोक कुमार) न केवल मनोवैज्ञानिक तरीक़े से इलाज कर उसे नौकरी में मान-सम्मान और प्रेम में सफलता दिलवाते हैं, बल्कि अपनी समस्या के समाधान के लिए अरुण ने उन्हें जो फ़ीस अदा की थी, वह भी नव विवाहित दंपती को आशीर्वाद स्वरूप लौटा देते हैं।

दरअसल कर्नल साहब युवावस्था में संकोची स्वभाव के चलते अपनी प्रेयसी प्रभा से प्रेम का इज़हार नहीं कर सके थे, तभी से उनकी यही कोशिश रहती है कि अब कोई भी नौजवान अपनी प्रभा के प्रेम से वंचित न रह पाए। इसीलिए वे हर असफल प्रेमी का मार्गदर्शन कर उसके जीवन में ख़ुशियां भर देते हैं।

ज़िम्मेदारी में है सुख

1967 उपकार

जहां हृषि दा और बासु दा की फ़िल्मों में देने का सुख मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति के रूप में उभर कर आता है, वहीं कुछ सामाजिक फ़िल्मों में यह सुख हम एक ज़िम्मेदारी के रूप में देखते हैं।

'उपकार' का भारत (मनोज कुमार) पढ़ा-लिखा ग्रामीण है, जो धोती-कुर्ता पहन कंधे पर हल रख अपनी ठेठ गंवई संस्कृति का परिचय देता है और बाज़ मौक़ों पर अंग्रेज़ीदा व्यक्ति के 'थैंक्यू' का मुस्कराते हुए 'मेंशन नॉट' जवाब देने से भी नहीं हिचकता।

भारत का एक ही उद्देश्य है, छोटा भाई पूरण (प्रेम चोपड़ा) पढ़-लिखकर क़ाबिल इंसान बन जाए। वह खेत में हाड़ तोड़ मेहनत कर भाई का करियर संवारता है। उसकी सदाशयता पर गांव का मलंग बाबा (प्राण) उसे कहता है, 'भारत, कब तक दूसरों की सोचता रहेगा, कभी अपनी भी तो सोच'। लेकिन बड़ा भाई कहां मानता है?

1957 भाभी

ऐसे ही बड़े भाई को हम एवीएम प्रोडक्शन की 'भाभी' में भी देखते हैं। यहां भाई-भाभी के नेह की छांह में पले छोटे भाई अपनी पत्नियों के बहकावे में आकर जायदाद का बंटवारा करने के लिए दबाव बनाते हैं।

बड़ा भाई रतन (बलराज साहनी) कलेजे पर पत्थर रखकर संपत्ति का बंटवारा करते हुए कहता है, 'यह बंटवारा जायदाद का होगा, दिलों का नहीं, क्योंकि दिल टूट जाया करते हैं, बांटे नहीं जाते।' फिर वह भाइयों के ज़िम्मे कारोबार और बंगला छोड़कर ख़ुशी-ख़ुशी गांव के पुश्तैनी घर में चला जाता है।

1973 ज्वार भाटा

आज ज़माना इतना निष्ठुर हो चला है कि भले देने वाला अपनी सहज प्रवृत्ति के चलते दे, लोग उसे दीवाना ही समझते हैं। फ़िल्म 'ज्वार भाटा' में करोड़पति सेठ दुर्गादास (नज़ीर हुसैन) को जब पता चलता है कि ग़रीबों के लिए दाल-रोटी का ढाबा चलाने वाला बिल्लू (धर्मेन्द्र) उनका बिछुड़ा हुआ पोता है, तो वे अपनी सारी जायदाद उसके नाम कर इस दुनिया से रुख़सत हो लेते हैं। बिल्लू की दरियादिली रिश्तेदारों को खलती है और वे उसे जायदाद से बेदख़ल करने के लिए उसे पागल साबित करवाने की कोशिश करते हैं।

कहा जाता है कि जो आदमी ठंड में अपना कोट देकर खुद कांपते हुए चला जाए या जो किसी बुढ़िया को अपना काम-धाम छोड़कर अस्पताल पहुंचाकर तीमारदारी में लग जाए, वह पागल ही होगा। अपनी सफ़ाई में बिल्लू कहता है, 'जज साहब, पेड़ ख़ुद धूप में खड़ा रहता है, लेकिन पथिक को फल और छाया देता है, क्या वह पागल है? नदी अपना सारा पानी लोगों को पिलाकर खुद समुद्र में विलीन हो जाती है, क्या वह पागल है? धरती अपना सीना चीरकर अनाज उगाती है तो क्या वह पागल है? यदि ये सब पागल हैं तो जज साहब मैं भी पागल हूं।'

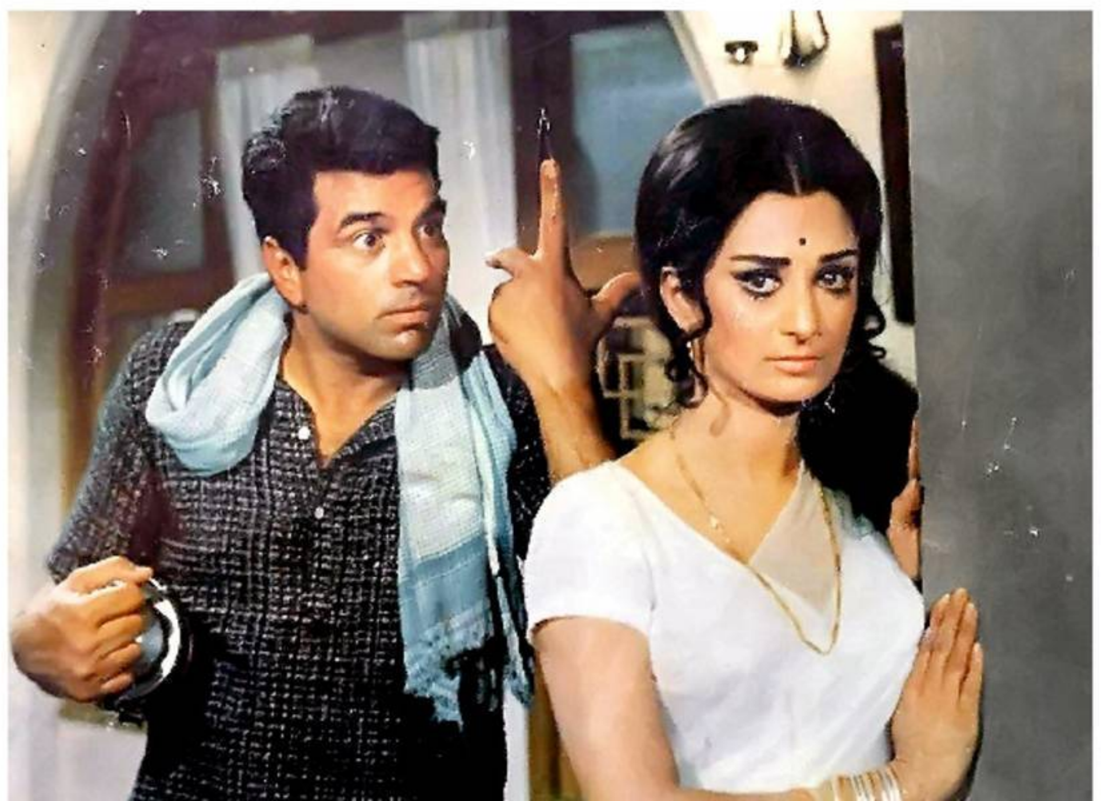

दे दिया ख़ून और जान भी

1980 क़ुर्बानी

मुंबइया सिनेमा में दिल ही नहीं दिया जाता, दोस्तों के लिए जान भी दे दी जाती है।

'क़ुर्बानी' में खलनायक शक्ति कपूर के हाथ में मशीनगन रहती है और सामने नायक फ़ीरोज ख़ान और विनोद खन्ना खड़े रहते हैं। वह पूछता है, कौन पहले मरना चाहता है? जवाब में दोनों दोस्त एक-दूसरे को पीछे धकेलते हुए बंदूक की ओर बढ़ते हैं। ये देख वो क्रूरतापूर्वक हंसते हुए 'दोस्त के लिए जान देने का क्या जज़्बा है!' कहकर विनोद खन्ना पर गोली दाग देता है।

कहा जाता है, रक्तदान सबसे बड़ा दान होता है। हमारी फ़िल्मों में इस दान का महिमामंडन बहुत किया जाता है।

1982 कथा

'कथा' का नायक राजाराम पु. जोशी (नसीरुद्दीन शाह) सीधा-सादा मराठी मानुष है, जो एक कंपनी में बतौर क्लर्क कार्यरत है और मुंबई की एक पुरानी चॉल में रहता है। एक दिन बस स्टॉप पर बस का इंतज़ार करते-करते उसके कान पास में खड़े प्रतीक्षार्थी के हाथ में रखे ट्रांजिस्टर में एमर्जेंसी अनाउंसमेंट सुनकर खड़े हो जाते हैं, जिसमें बताया जाता है कि एक आदमी को अचानक ख़ून की ज़रूरत आन पड़ी है और यदि किसी का ब्लड ग्रुप बी पॉज़िटिव हो तो तुरंत अस्पताल पहुंच जाए। इतना सुनते ही वह 'मेरा ग्रुप बी पॉज़िटिव है, मेरा ग्रुप बी पॉज़िटिव है' कहते हुए अस्पताल के लिए टैक्सी पकड़ लेता है।

1983 अवतार

ऐसा प्रसंग **'अवतार'** में भी है, जिसमें सेवक (सचिन) अचानक कंगाल हो गए अपने मालिक (राजेश खन्ना) के भरण-पोषण के लिए आए दिन रक्तदान करता है।

1983 अमर अकबर एंथनी

फ़िल्म **'अमर अकबर एंथनी'** में बचपन में मां-बाप से (और आपस में भी) बिछुड़े तीन भाइयों की मां बीस साल बाद दुर्घटना में घायल हो भर्ती है। उसे ख़ून की जरूरत है। तभी तीनों बेटे अलग-अलग ठिकानों से आकर ख़ून देने के लिए लेट जाते हैं। तीनों के शरीर से ख़ून निकालती नलियां मां की ड्रिप में एक-साथ जुड़ती हैं और पृष्ठभूमि में गाना बजता है, 'ये सच है कोई कहानी नहीं, ख़ून ख़ून होता है पानी नहीं'। मनमोहन देसाई के इस रूपक में कितनी स्वाभाविकता है और कितनी नाटकीयता, यह तो चिकित्सा का गूढ़ विशेषज्ञ ही बता सकता है, लेकिन सिनेप्रेमी के नज़रिए से परिकल्पनाकार के. के. शुक्ला निश्चित ही बधाई के हक़दार माने जाएंगे।

आमुख कथा... चित्रपट... जारी...

त्याग के कई-कई क़िस्से

1949-99 अंदाज़...हम दिल दे चुके सनम...

जहां तक मसाला फ़िल्मों की बात करें, तो इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने से पहले नब्बे फ़ीसदी सिनेमा दिल, जान और ख़ून देने के क़िस्सों से सराबोर रहा है।

महबूब की **'अंदाज़' (1949)** से लेकर **'हम दिल दे चुके सनम'** तक में ऐसे प्रेम-त्रिकोण हैं, जिसमें कोई ना कोई कुछ त्यागता है।

1964 संगम

'संगम' का सहनायक गोपाल (राजेन्द्र कुमार) अपने दोस्त सुंदर (राज कपूर) के लिए अपनी प्रेयसी राधा (वैजयंती माला) के जीवन से हट जाता है।

1966 दिल दिया दर्द लिया

'दिल दिया दर्द लिया' का नायक शंकर (दिलीप कुमार) इतना सीधा है कि अपनी प्रेयसी रूपा (वहीदा रेहमान) को अपने भूतपूर्व मालिक (प्राण) को सौंपते हुए विनती करता है, 'ठाकुर साहब मैं आपके हाथ जोड़ता हूं, कि आप रूपा को स्वीकार कर लें', इसके जवाब में ठाकुर उसका आभार मानने के बजाय 'तू सारी ज़िंदगी मंगते का मंगता ही रहेगा, आज कुछ दे भी रहा है तो भीख मांगकर!' जैसा संवाद बोलकर उसकी किरकिरी कर देता है।

1991-99 साजन... हम दिल दे चुके सनम...

नब्बे के दशक की दो चर्चित फ़िल्मों **'साजन'**, और **'हम दिल दे चुके सनम'** में नायक (क्रमशः संजय दत्त और सलमान ख़ान) सहनायक के लिए अपने प्रेम को क़ुर्बान करने के लिए तैयार हो जाते हैं, लेकिन ऐन समय पर सहनायक के हस्तक्षेप के बाद नायक-नायिका का मिलन हो जाता है।

1963 दिल एक मंदिर

यहां श्रीधर की बहुचर्चित फ़िल्म **'दिल एक मंदिर'** का ज़िक्र करना अप्रासंगिक न होगा। फ़िल्म का नायक धर्मेश (राजेन्द्र कुमार) डॉक्टर है। किसी ज़माने में वह जिस लड़की सीता (मीना कुमारी) से प्रेम करता था, वह अब अपने कैंसर पेशेंट पति (राज कुमार) के इलाज के लिए उसके सामने खड़ी है। डॉक्टर उस मरीज़ को बचाने के लिए देश-विदेश के शोध-पत्रों का दिन-रात बिना कुछ खाए-पिए अध्ययन करता है और उस मरीज़ की जान बचाने में क़ामयाब हो जाता है अलबत्ता अंत में स्वयं उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।

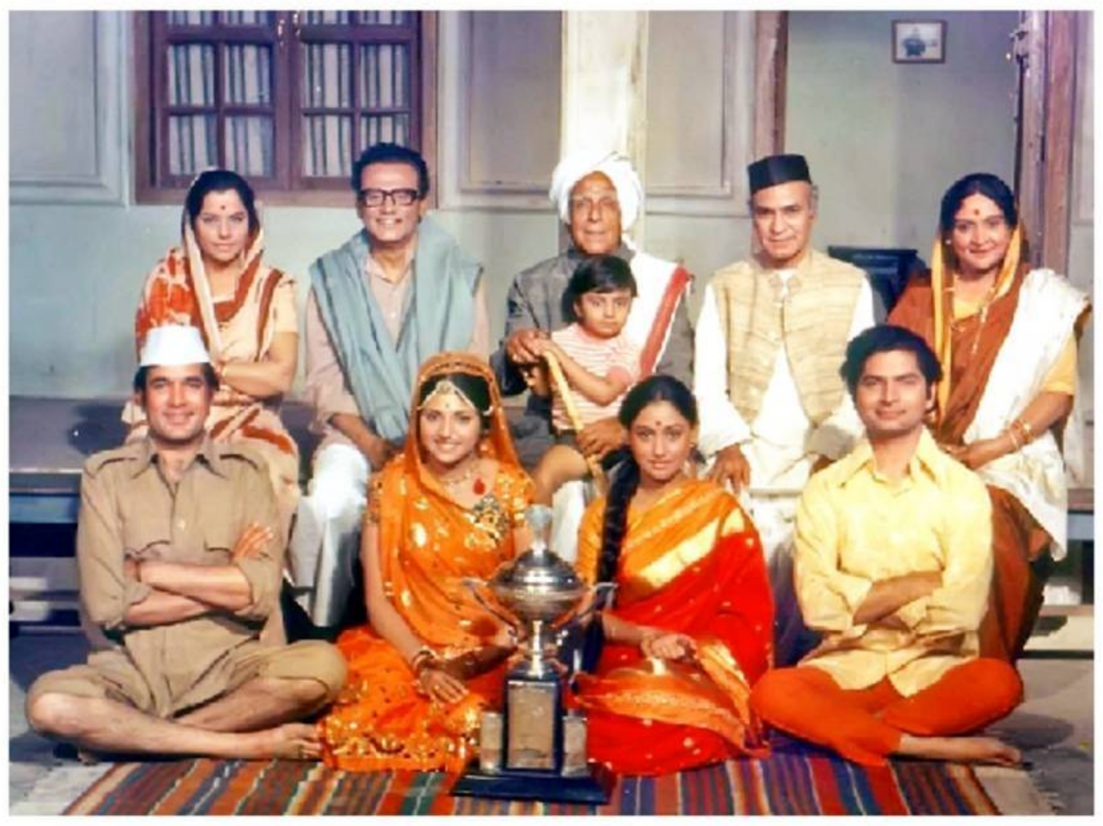

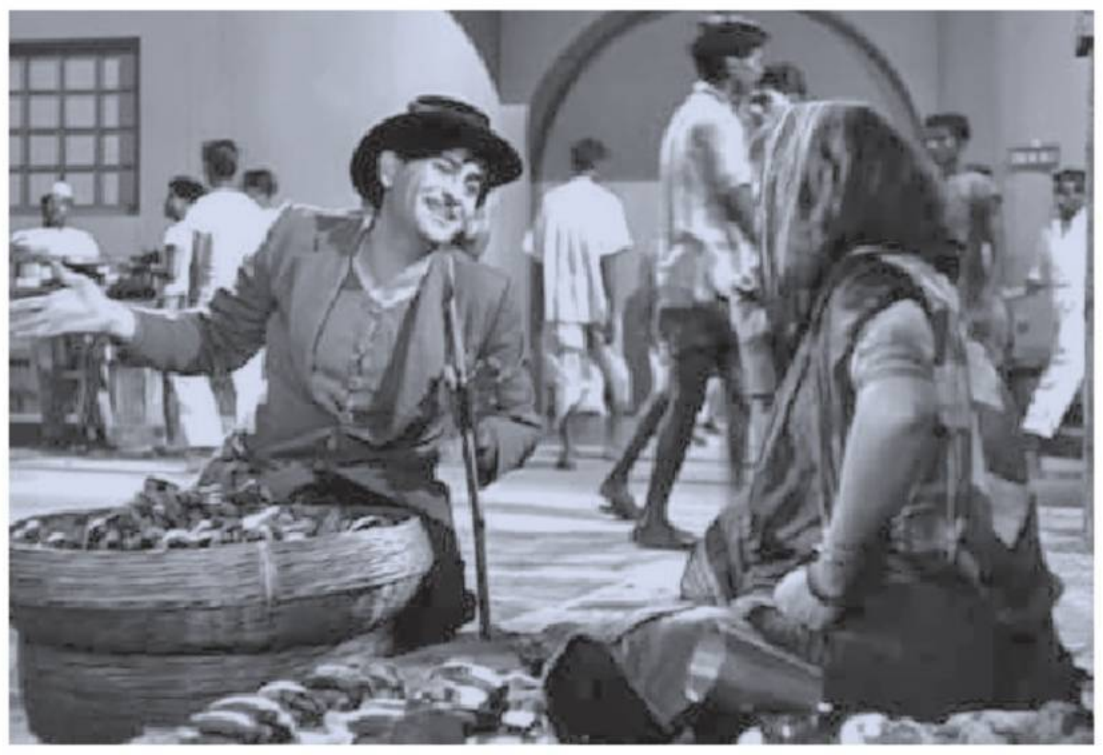

एक अद्भुत दृश्य...

1955 श्री 420

और अब चलते-चलते 'देने के इस सुख' का सबसे अद्भुत दृश्य। 'श्री 420' का नायक राज (राज कपूर) फक्कड़ी तबीयत का इंसान है।

गर्दिश के दिन में एक केले बेचने वाली बाई (ललिता पंवार) से वह पूछता है, 'केले क्या भाव लगाए?'

वह बोलती है, 'दो आने के तीन।'

राज मसखरी करते हुए उससे कहता है, 'दो आने के तीन नहीं, तीन आने के दो लगाओ'

केलेवाली मोल-भाव नहीं करती, वह उसे मना कर देती है। तभी मन ही मन हिसाब लगाते हुए उसे समझ आता है, यह तो फ़ायदे का सौदा है! वह उसे वापस बुला कर दो केले देते हुए कहती है, 'ये लो तीन आने के दो'।

राज कहता है, आज पैसे नहीं हैं, जब आएंगे ख़रीद लूंगा।

केलेवाली अपनी ममतामय मुस्कान के साथ उसके सर को सहलाती हुए दो केले हाथ में रख कहती है, 'कोई बात नहीं, जब पैसे आएं तब दे देना'।

राज अपनी टोपी उतारकर गर्दन झुकाते हुए कहता है, 'तुम केलेवाली नहीं, दिलवाली हो' और केलेवाली, राज और दर्शकों की आंखों में हर्ष का सागर छलछला जाता है।

सुख का पारितोषिक

जीवन का वास्तविक सुख, दूसरों को सुख देने में हैं, उनका सुख लूटने में नहीं।
मुंशी प्रेमचंद

जब घर में धन और नाव में पानी आने लगे, तो उसे दोनों हाथों से निकालें, ऐसा करने में ही बुद्धिमानी है।
संत कबीर

किसी से कुछ पाओ तो इसको भूलो नहीं। किसी को कुछ दो तो इसे याद मत रखो।
ब्रायन ट्रैसी

अगर हम दूसरों के लिए रौशनी करते हैं तो इससे हमारी राह अपने आप रौशन हो जाती है।
मैरी एन्ने रैडमैचेर

सुख का रहस्य त्याग में है।
एण्ड्रयू कारनेगी

जो आपके पास है, उससे भी अधिक आप तभी पा सकते हैं, जब आप देना सीखें।
जिम रॉन

जो सुख से देते हैं, उन्हें पारितोषिक के रूप में सुख ही मिलता है।
ख़लील जिब्रान

जो पाना चाहता है, उसे देना सीखना चाहिए।
स्वेट मार्डेन

हम सभी उदारता के सुख को अनुभव कर सकते हैं, क्योंकि सभी के पास देने के लिए कुछ ना कुछ होता है।
यान ग्रेस

शब्दों में उदारता से आत्मविश्वास आता है। विचारों में उदारता से गम्भीरता आती है। किंतु देने की उदारता से प्रेम मिलता है।
लाओत्से

वास्तविक जीवन उन्होंने ही जीया है, जिन्होंने दूसरों को कुछ देने को अपनी आकांक्षा बनाया।
एरियाना हफ़िंगटन

किसी को कुछ देने का सुख देकर ही जाना जा सकता है।

ये 'कुछ' कुछ भी हो सकता है- रुपए-पैसे, प्यार-परवाह, समय, अपनापन, दिलासा, कुछ भी। ये जॉय ऑफ़ गिविंग सिर्फ़ उनका नहीं जो सक्षम हैं, जिनके पास संसाधन हैं। जो इतने सक्षम नहीं, जिनके पास देने जैसा कुछ नहीं, कुछ न कुछ तो उनके पास भी होता है देने के लिए। और जब ये हमें कुछ देना चाहें, तो उसे प्रसाद की तरह ग्रहण कर लेना चाहिए।

• **हर्षाश्री** का पिछले दिनों ऐसे ही अनुभव से लगातार तीन दिन तक सामना हुआ।

देने के सुख के तीन वाक़िये

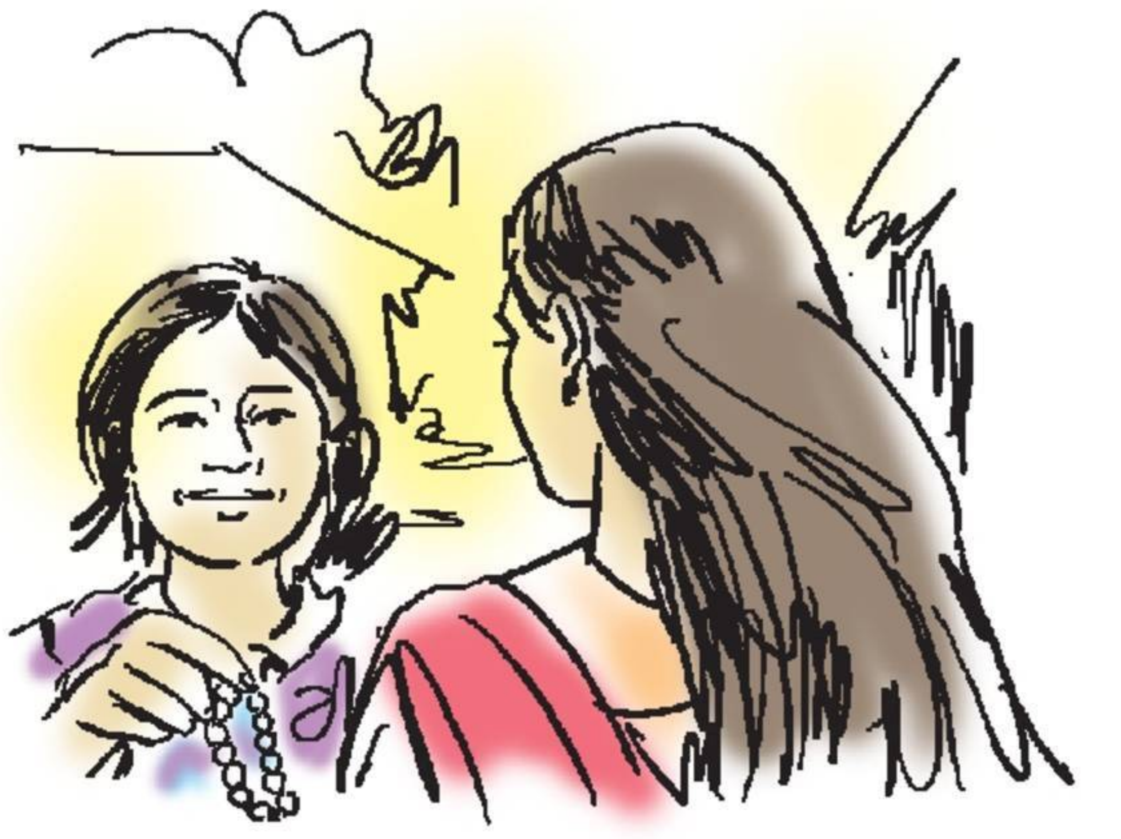

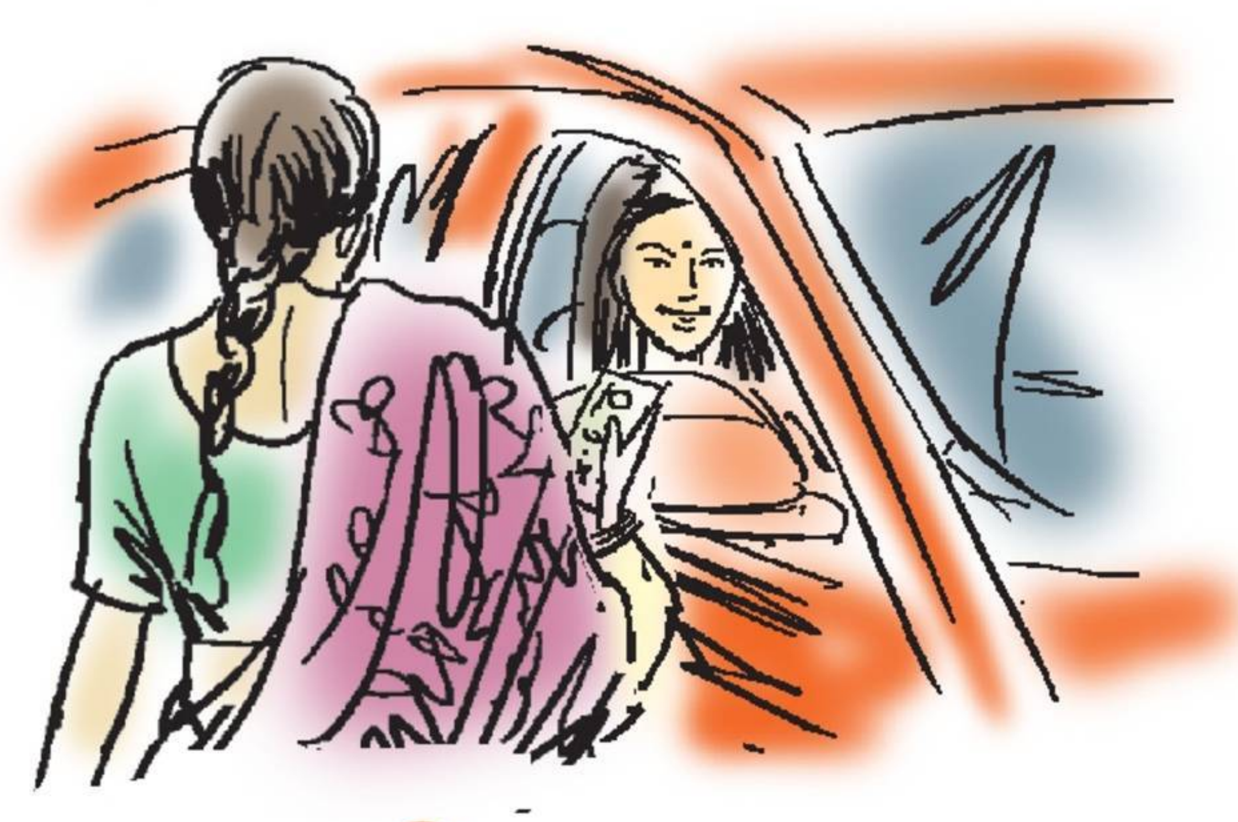

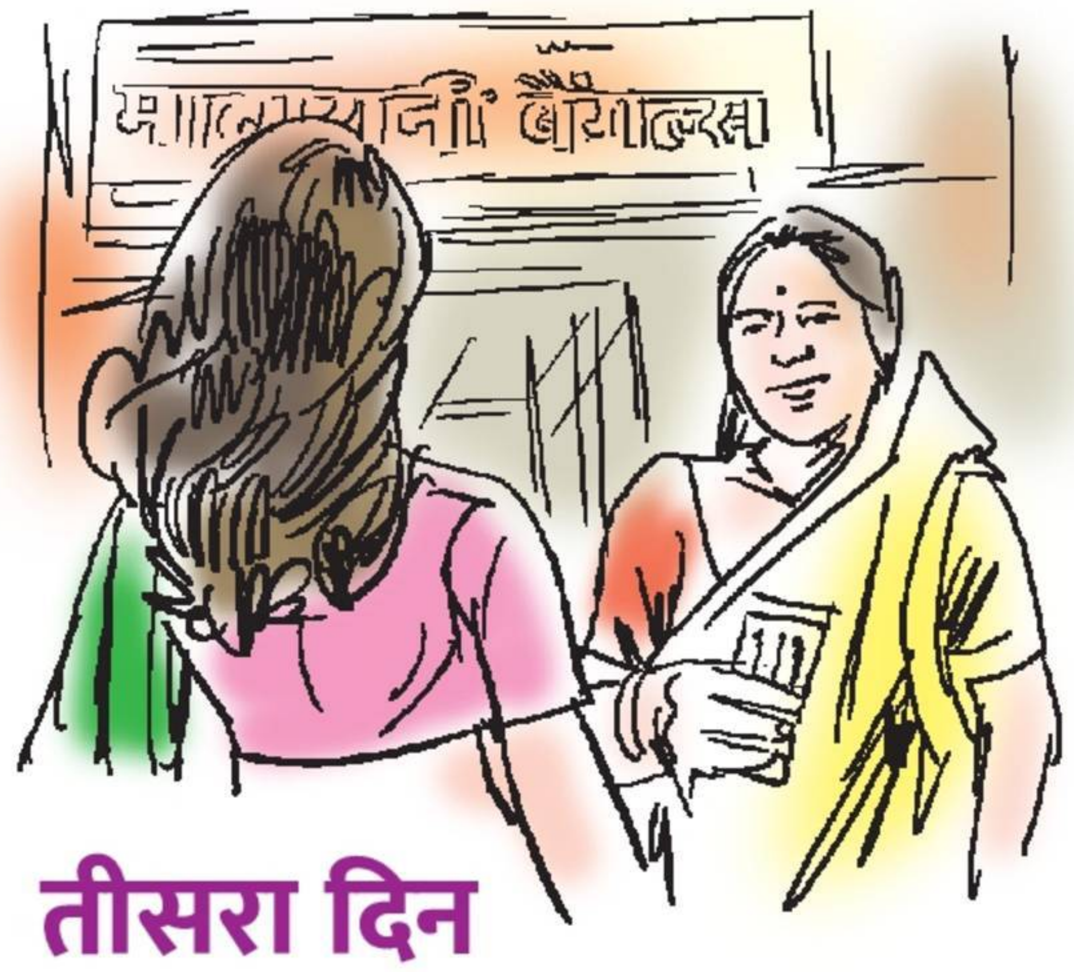

पहला दिन

'आंटी जी, मैंने आपके लिए एक 'सपराइज' वाली चीज़ बनाई है, अभी लाती हूं।' कहकर आठ बरस की गुलनाज़ मुझे हैरान छोड़कर अपने घर की ओर दौड़ गई।

गुलनाज़ सड़क के उस पार वाली झुग्गी बस्ती में रहती है। उसकी मां और नानी लोगों के घरों से कूड़ा उठाने और गाड़ियों की सफ़ाई का काम करती हैं। वो अक्सर मुझसे पढ़ने आती है और दुनिया-जहान की बातें करती रहती है। न जाने क्यों मुझे गुलनाज़ से एक लगाव-सा हो गया है, और शायद उसे मुझसे।

मैं खड़ी सोच ही रही थी कि तब तक वो फिर से उछलती-कूदती सामने आ खड़ी हुई। हाथों में एक नन्ही-सी पुरानी डिबिया थी। वो छोटी-सी डिबिया खोलते हुए उसकी आंखों में एक ख़ुशी भरी चमक थी, जैसे कोई जादू का पिटारा खुल रहा हो, और हैरत की बात ये कि मेरे चेहरे पर भी उत्सुकता उससे कम नहीं थी।

'देखिए आंटी' कहते हुए उसने डिबिया खोलकर एक माला निकाली। प्लास्टिक के सफ़ेद मोतियों की माला में ऊन के छोटे-से फुंदने का लॉकेट झूल रहा था। 'मैंने आपके लिए अपने हाथों से बनाई है', उसने गर्व से बताया और माला को लटकाकर लहराने लगी। 'आंटी, आप मुझे पढ़ाती हैं, इत्ता प्यार करती हैं तो मेरा भी मन करता है आपके लिए कुछ करने का। माला अच्छी लगी आपको?' कहते हुए उसने अपने अत्यंत सीमित संसाधनों में से बनाया गया बेशक़ीमती ज़ेवर मेरे हाथ में थमा दिया।

छोटी बच्ची के परिप्रेक्ष्य से वो माला बहुत अच्छी थी, लेकिन मेरे व्यक्तित्व और मेरी अभिरुचि से बिल्कुल विपरीत थी। शायद मैं उससे कह सकती थी कि मैं ऐसी माला नहीं पहनती, उसे दुलारकर उसका वह उपहार उसकी नन्ही-सी मुट्ठी में वापस रख सकती थी। पर मेरे स्नेह के प्रत्युत्तर में मेरे लिए, अपनी प्यारी आंटी के लिए कुछ कर सकने का जो उजास उसके चेहरे पर झलक रहा था उसने मुझे ऐसा करने से रोक दिया।

'थैंक्यू गुलनाज़, ये तो बहुत सुंदर बनाया है तुमने,' कहकर मैंने प्लास्टिक के सफ़ेद मोतियों में छलकती उसकी ख़ुशी को अपनी हथेलियों में समेटकर उसे दिल से लगा लिया।

दूसरा दिन

मेरी बड़ी ननद दिल के ऑपरेशन के सिलसिले में कुछ समय हमारे घर रही थीं, और उस दौरान मेरे घर पर काम करने आने वाली फूलवती उनसे काफ़ी घुल-मिल गई थी। वो वैसे भी काफ़ी मिलनसार है और कई बरसों से हमारे घर पर काम कर रही है।

हाल ही में उनके बेटे का विवाह हुआ है। उस दिन बेटा-बहू विवाह के बाद पहली बार घर आए हुए थे, जब फूलवती शाम को बर्तन धोने आई। हम गप्पें लगा रहे थे तभी वो दरवाज़े पर आकर उत्सुकता से मेहमानों को 'कौन है' वाले भाव से निहारने लगी।

'अरे, दीदी के बेटा-बहू हैं।' मैंने बताया तो उसने दोनों को ख़ूब सारा आशीर्वाद दिया और वापस काम करने चली गई।

उन दोनों की ट्रेन का वक़्त हो रहा था। हम लोग घर के बाहर आ गए। बातें करते-करते वे दोनों कार में बैठ गए और मेरे पति ने कार स्टार्ट की। तब तक फूलवती भागती हुई आई, 'जाए रए का दोनौ? मोए पता न चला' कहते हुए उसने अपना छोटा-सा बटुआ निकाला और एक नोट कार की खिड़की के भीतर हाथ डालकर 'खूब खुस रहो' कहते हुए बहू के हाथ में थमा दिया।

पांच सौ रुपए के उस नोट को देखकर बहू के साथ मैं भी हतप्रभ रह गई। 'आंटी, ये बहुत ज़्यादा है, आप अपना आशीर्वाद दीजिए बस।' कहकर बहू ने फूलवती के बटुए में वो नोट वापस रखने की कोशिश की। तब तक मैंने देखा, बटुए में पचास रुपए का एक नोट बचा था।

'फूलवती, ये दो न बहू को, बहुत है इतना।' कहते हुए मैंने वो पचास का नोट उसके हाथ में थमाया तो उसका चेहरा उतर गया। 'काए, मैं काए ना दे सकती इत्ते रुपए? हमाए घर मा बऊ आई है। कितै खुसी की बात है। तुम रोको ना सगुन देन से।' उसने मेरा हाथ परे सरकाते हुए बहू के हाथ को वापस अपने आशीष से भर दिया। मैंने आंखों के इशारे से बहू से रुपए ले लेने को कह दिया।

बात पचास या पांच सौ रुपए की नहीं थी, बात शगुन दे सकने की उस ख़ुशी की थी जो फूलवती के चेहरे और उसकी बातों में साफ़ झलक रही थी।

और मैं इस ख़ुशी को कैसे खो जाने देती भला।

तीसरा दिन

तीज का पर्व निकट था और मैं पर्व और पूजा से संबंधित सामग्री लेने के लिए बाज़ार गई थी। चूड़ियां ख़रीदते हुए मैंने देखा कि एक स्त्री बड़ी मुग्ध दृष्टि से रंग-बिरंगी चूड़ियों को निहार रही थी। उसके हाथ में एक रंग उड़ा झोला था। शरीर पर किसी के दिए पुराने कपड़े और सिर पर बदरंग ओढ़नी पहने वो स्त्री देखने से ही दीनता की प्रतिमूर्ति लग रही थी।

लेकिन साधारण स्त्री-सुलभ इच्छाएं तो उसमें भी रही होंगी, तभी तो वो कभी चूड़ियों को और कभी मुझे देखे जा रही थी।

'तुम लोगी चूड़ियां?' मैंने पूछा तो उसका चेहरा खिल उठा, पर तुरंत ही वो इनकार में सिर हिलाते हुए जाने लगी।

भले ही उसकी गर्दन ना कर रही हो, लेकिन आंखें अब भी चूड़ियों पर टिकी थीं। मैंने उसे बुलाया और दुकानदार से सतरंगी चूड़ियां ख़रीदकर उसकी रूखी कलाई में सजा दीं। खन-खन करती नई चूड़ियों को देखकर उसका चेहरा चमक उठा।

उसका कंधा थपथपा कर जैसे ही मैं जाने को मुड़ी, उसने अपने झोले में से कुछ निकालकर मेरे हाथों में पकड़ा दिया। मैंने देखा, वो पांच पेन का एक पैकेट था, जैसा ट्रैफ़िक सिग्नल पर स्त्रियां और बच्चे बेचते हुए दिखते हैं। 'मैडम जी, ये बहुत अच्छा पेन है। बच्चों को दीजिएगा। और तो कुछ नहीं है हमारे पास।'

यूं तो पेन की ज़रूरत नहीं थी मुझे, लेकिन उसका दिल रखने के लिए मैंने पैकेट ले लिया और पैसे उसके हाथ में रखने लगी। उसने अपना हाथ पीछे खींच लिया, 'मैडम जी, हमेशा तो लेते ही हैं। आज तो देने दीजिए। इसके पैसे नहीं लेंगे हम।'

मैंने मुस्कराकर पैसे वापस अपने पर्स में रख लिए। पैसे देकर मैं उसके सम्मान का अपमान नहीं करना चाहती थी।

– – –

मुझे विश्वास है कि ऐसे अनुभव हम सबको कभी न कभी अवश्य हुए होंगे। उनके दिए का सम्मान करके जो ख़ुशी मिलती है वो भी तो एक तरह से देने का सुख ही है। है न?

दानवीर

भारतीय सनातन संस्कृति दान की संस्कृति है।

शास्त्रों में ईश्वर भी इसलिए महान कहलाया, क्योंकि वह अनंत अखंड दाता है। वह नित्य दान देता है किंतु उसका क्षय नहीं होता। इसलिए वह पूर्ण है, दाता होकर भी अच्युत है।

दान के महत्व पर हमारी परम्परा में कई कथाएं हैं, वहीं चार प्रमुख दानवीर वर्णित हैं, ये वीर हैं- दधीचि, बलि, शिबि और कर्ण...

आमुख कथा के इस हिस्से में पढ़िए इन्हीं दानवीरों की गाथाएं।

• **डॉ. विवेक चौरसिया**
पौराणिक साहित्य के अध्येता। परिवार में जीवन मूल्य और नई पीढ़ी में भारतीय संस्कृति के प्रति आग्रही हैं। दैनिक भास्कर में 20 वर्ष सेवा के बाद अब स्वतंत्र लेखन।

भारतीय **संस्कृति में ईश्वर प्राणीमात्र के जीवन का दाता है** और जीवन की रक्षा के लिए आवश्यक अन्न, जल और वायु आदि का भी।

ईश्वर दिन में सूर्य को प्रकाशित कर जगत को जगमग रखता और जीवन ऊर्जा प्रदान करता है तो रात में चंद्रमा का आकाशदीप रोशन कर न केवल प्रकाश देता है अपितु वन्य औषधियों को अमृत से सींचकर जीवनमय बनाता है।

ईश्वर यह सब निष्काम और निःस्वार्थ भाव से करता है तभी यशस्वी है। इसलिए कि तप से सिद्धि, श्रम से धन, बल से भूमि, गुरुसेवा से ज्ञान और भगवत् कृपा से मोक्ष भले मिल जाए किंतु यश केवल दान से ही मिलता है। इस धरती पर जन्म लेने वाले हर जीव की मृत्यु होती है लेकिन एकमात्र दानी है जो मरकर भी अपने यश के कारण अमर होता है।

भारतीय पौराणिक कथाओं में ‘देने का सुख’ पाकर जो कई यशस्वी हुए, लेकिन उनमें ये चार बहुचर्चित और परम प्रतिष्ठित हैं–

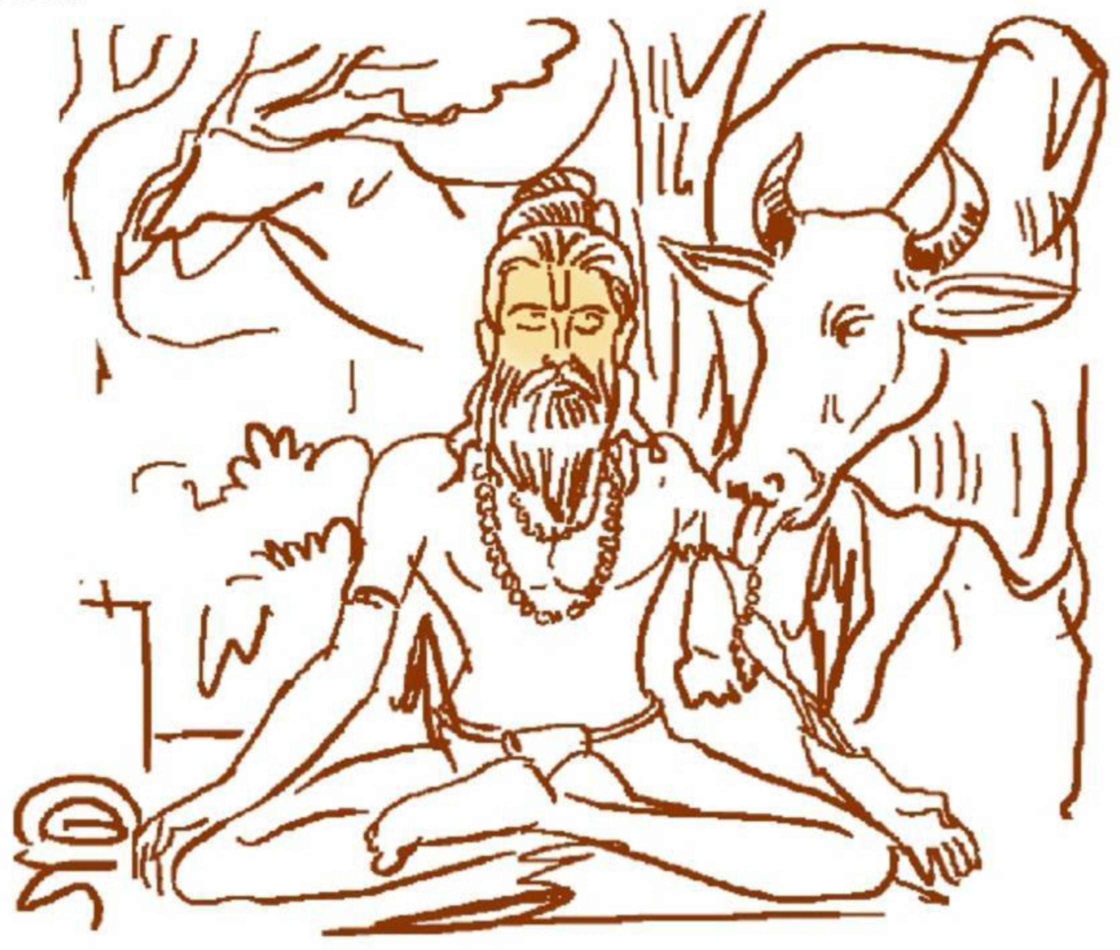

1

लोक कल्याण के लिए देह दान देने वाले महर्षि दधीचि

लोक कल्याण और दुष्ट के विनाश के लिए आत्मोत्सर्ग करने वालों में दधीचि की समता वाला दूसरा कोई भारतीय इतिहास में दुर्लभ है। उनके पिता का नाम अथर्वा और माता का चिति था। उन्होंने अश्विनीकुमारों को अश्व के सिर से उपदेश दिया था अतः वे अश्वशिर नाम से भी प्रसिद्ध थे। अथर्ववेदी दधीचि ने ही सर्वप्रथम नारायण कवच का उपदेश त्वष्टा को दिया था और त्वष्टा ने विश्वरूप को।

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के अनुसार, एक बार देवगुरु बृहस्पति जब इंद्र की सभा में पहुंचे तो ऐश्वर्य मद के कारण इंद्र ने उनकी अवहेलना कर दी। इससे रुष्ट देवगुरु इंद्र सभा से निकल आए और अंतर्धान हो गए। तब असुरों ने गुरुकृपा से रहित देवताओं पर आक्रमण कर उन्हें पराजित कर दिया। ब्रह्मा जी की सलाह पर देवताओं ने अपने नए आचार्य के रूप में त्वष्टा के महातेजस्वी पुत्र विश्वरूप का पुरोहित के रूप में वरण किया। विश्वरूप ने देवताओं को नारायण कवच का उपदेश दिया, जिसके बल पर देवताओं ने असुरों से अपना राज्य फिर छीन लिया। विश्वरूप पुरोहित देवताओं के थे लेकिन असुरकुल से सम्बद्ध माता के कारण असुरों के प्रति भी अनुग्रह भाव रखते थे। इस कारण इंद्र ने क्रोधित होकर उनकी हत्या कर दी। इसी का प्रतिशोध लेने के लिए विश्वरूप के पिता त्वष्टा ने यज्ञाग्नि से वृत्रासुर को उत्पन्न किया था। वह जले हुए पहाड़ के समान काला और विशालकाय था। वृत्रासुर ने देवताओं पर आक्रमण किया और इंद्र को पदच्युत कर सारी सम्पत्ति व तेज का हरण कर लिया। तब इंद्रादि देवता भगवान विष्णु की सलाह पर वृत्रासुर वध के लिए अस्थियां मांगने महर्षि दधीचि के पास पहुंचे।

देवताओं की याचना सुन दधीचि ने कहा–

‘योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान्।
ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि॥’

अर्थात... देवताओ! जो मनुष्य इस विनाशी शरीर से दुःखी प्राणियों पर दया करके धर्म और यश का सम्पादन नहीं करता, वह जड़ पेड़-पौधों से भी गया-बीता है। **यह भी कहा कि–**

‘अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभंगुरैः।
यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः॥’

अर्थात... धन, जन और शरीर क्षणभंगुर हैं। ये किसी काम नहीं आएंगे। यह कैसी कृपणता है, कितने दुःख की बात है कि यह मरणधर्मा मनुष्य इनके द्वारा दूसरों का उपकार नहीं कर लेता।

ऐसा कहकर दधीचि ने योगशक्ति से तत्क्षण अपनी देह त्याग दी। फिर उनकी अस्थियां संचित कर विश्वकर्मा ने एक वज्र बनाया और उसके आघात से इंद्र ने वृत्रासुर को मार डाला।

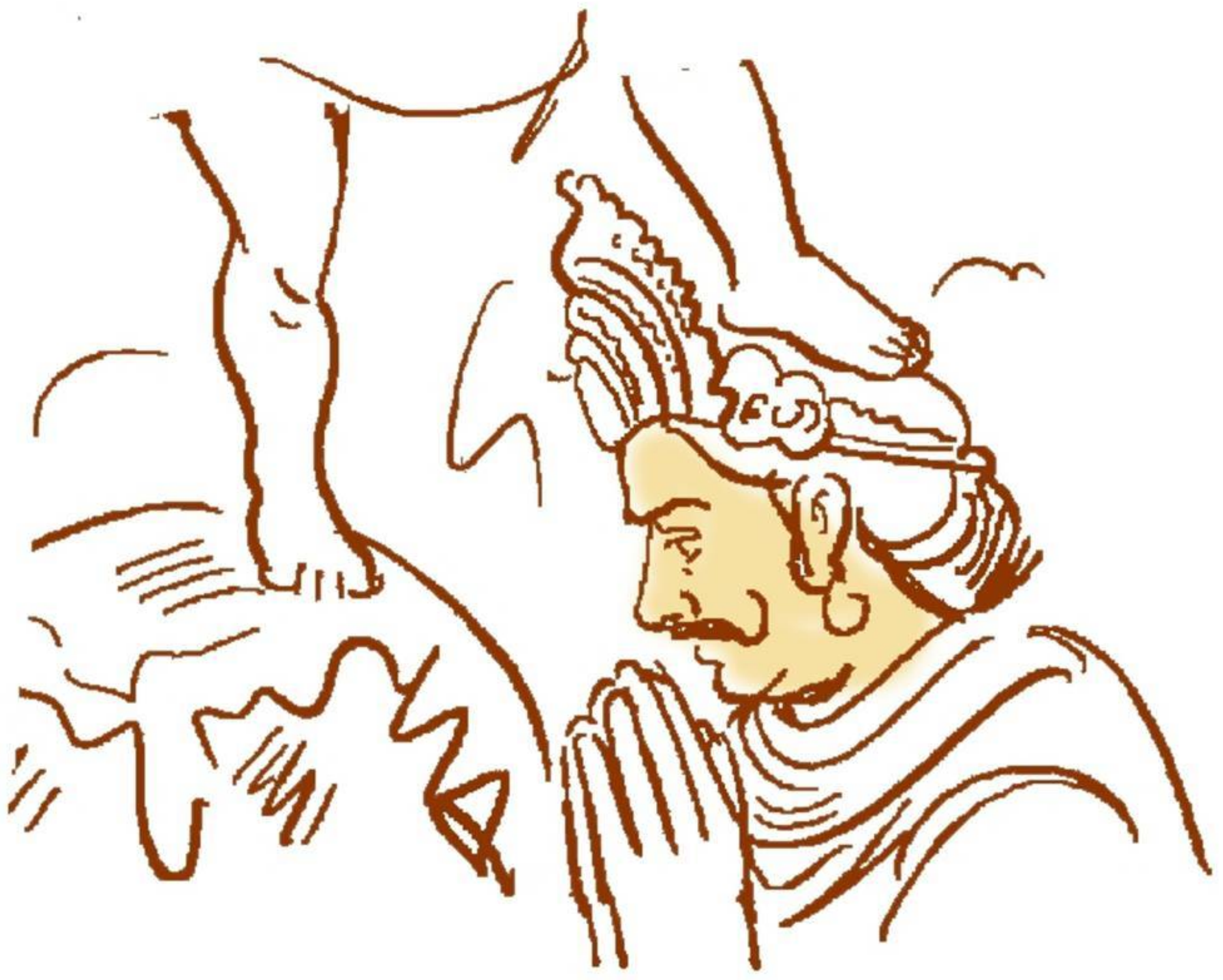

2

देने के सुख का सार जानने वाले दानी राजा बलि

राजा बलि अब तक के ज्ञात इतिहास में सबसे बड़े दाता हैं जिनके द्वार पर साक्षात विष्णु याचक बनकर पहुंचे और दान में त्रिलोकी का राज्य पाया। बलि दैत्यराज थे और भगवतभक्त प्रह्लाद के पौत्र थे। उनके पिता दैत्य होते हुए इतने दानवीर थे कि शत्रु देवताओं के मांगने पर उन्होंने अपनी आयु तक दान कर दी थी। बलि ने भी अपने पिता के संस्कारों पर चलकर दान की पराकाष्ठा की थी।

बलि की दानवीरता की कथा श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध में सर्वाधिक सुंदरता से चित्रित हुई है। इसके अनुसार, एक बार बलि ने विश्वजित् यज्ञ कर यज्ञाग्नि से एक अजेय रथ, धनुष, दो अक्षय तरकश व कवच प्राप्त किए तथा इनके बल पर इंद्र की राजधानी अमरावती पर असुर सेना के साथ आक्रमण कर दिया। उससे भयभीत हो इंद्र आदि देवता प्राण बचाकर भागे और छुप गए। परिणामस्वरूप बलि ने पहले देवलोक और फिर तीनों लोकों को अपने अधिकार में कर लिया।

तब देवताओं का हित करने तथा इंद्र को खोई हुई सम्पदा लौटाने के निमित्त भगवान ने महर्षि कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से अवतार ग्रहण किया और वामन रूप धरकर नर्मदा नदी के उत्तर तट पर स्थित भृगुकच्छ नामक स्थान पर पहुंचे, जहां बलि यज्ञ कर रहे थे। भगवान को दिव्य रूप में अपने यज्ञ में देख बलि ने उनका पूजन किया तथा आगमन का मनोरथ पूछा। तब वामन रूप विष्णु ने बलि से मात्र तीन पग धरती मांगी। लेकिन दैत्य गुरु शुक्राचार्य विष्णु को पहचान गए और उन्होंने बलि को दान देने से रोका किंतु बलि दान की प्रतिज्ञा पर अटल थे। तब शुक्राचार्य ने क्रोधित होकर बलि को राज्यलक्ष्मी खो जाने का शाप तक दे डाला किंतु बलि न डिगे।

बलि ने गुरु के शाप को स्वीकारते हुए कहा–

‘श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः।
दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु॥’

अर्थात... जब दधीचि व शिबि आदि महापुरुषों ने अपने परम प्रिय दुस्त्यज प्राणों का दान करके भी प्राणियों की भलाई की है, फिर पृथ्वी आदि वस्तुओं को देने में सोच-विचार करने की क्या आवश्यकता है? कथा कहती है कि एक पग में धरती तथा दूसरे से आकाश नाप लिया। जब तीसरा पग धरने की बारी आई तो बलि ने अपना मस्तक आगे कर दिया। इससे प्रसन्न होकर भगवान ने बलि पर कृपा की और चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया।

बलि इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि अपने साथ हो रहे छल और गुरु श्राप के बावजूद वे प्रतिज्ञा से न हिचके। इसलिए कि वे यह इस जीवन सार को जान चुके थे कि ‘देना ही सबसे बड़ा सुख है।’

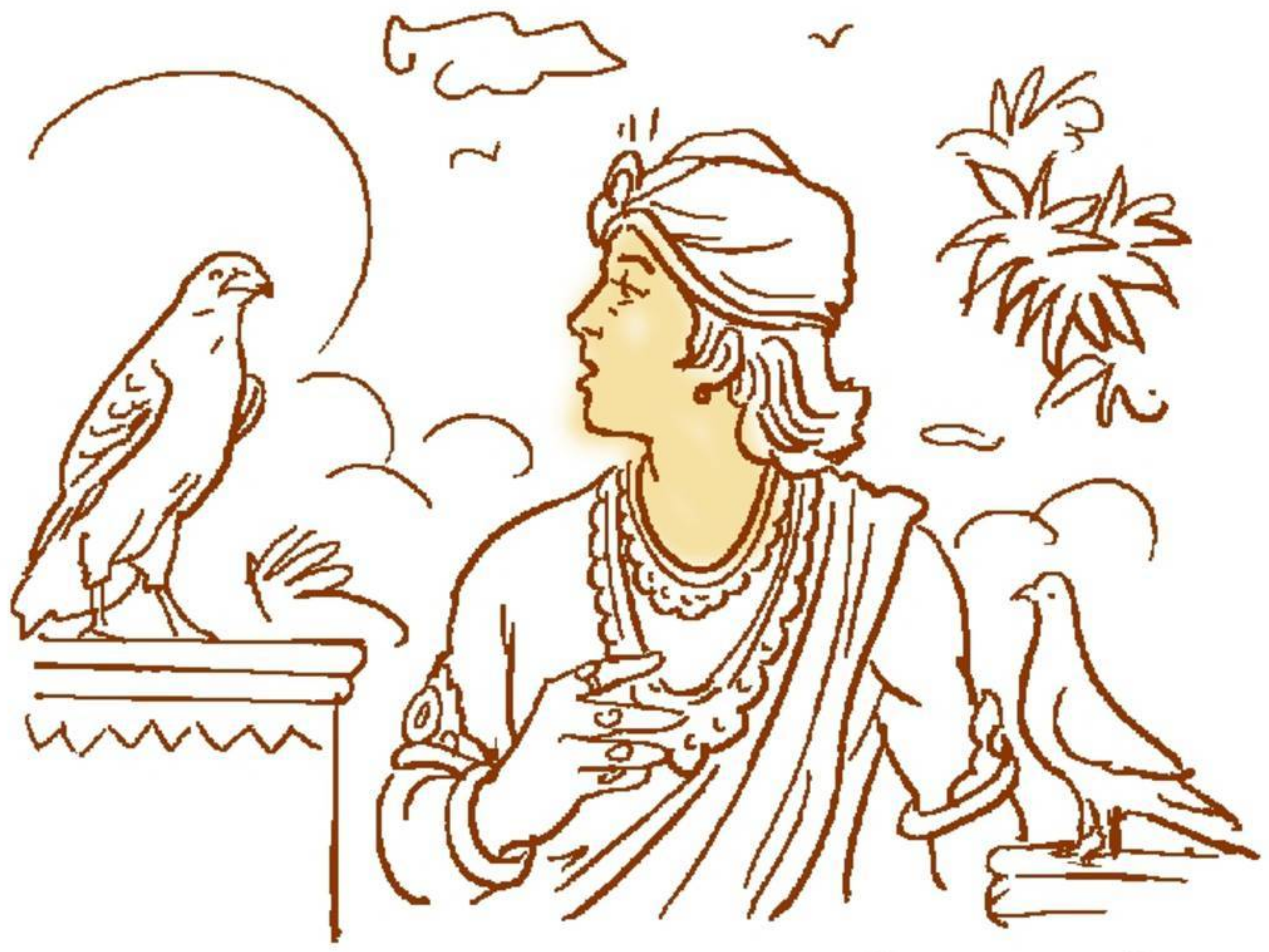

3 शरणागत की रक्षा को प्राण देने को तत्पर राजा शिबि

राजा शिबि बहुसंख्यक पुराणों में महादानी के रूप में सादर उल्लेखित हैं किंतु इनकी मूल कथा महाभारत के वनपर्व में है। वनवास काट रहे पाण्डवों को महामुनि मार्कण्डेय ने दान की महिमा बताते हुए शिबि कथा सुनाई। शिबि ययाति की पुत्री माधवी के पुत्र थे जो उशीनर को ब्याही थी। अतः अनेक स्थानों पर शिबि का उल्लेख पिता के नाम से संयुक्त होकर उशीनर शिबि भी हुआ है।

वनपर्व के 197वें अध्याय के अनुसार, एक समय देवताओं ने शिबि की श्रेष्ठता की परीक्षा करने का निश्चय किया। इंद्र ने बाज़ का और अग्निदेव ने कबूतर का रूप धरा।

जब बाज़ ने कबूतर का पीछा किया तो प्राणरक्षा के लिए कबूतर शिबि की गोद में आकर बैठ गया। कबूतर ने मनुष्यों-सी वाणी बोलते हुए शिबि से कहा कि 'मैं वास्तव में एक ऋषि हूं लेकिन अपना पूर्व शरीर इस शरीर से बदल चुका हूं। अब बाज़ मुझे खाना चाहता है। प्राणरक्षक होने से अब आप ही मेरे प्राण हैं और मैं आपकी शरण में हूं। कृपया मुझे बचाइए।'

इसके विपरीत बाज़ ने भी मनुष्यों की भांति बोलते हुए शिबि से कबूतर को छोड़ने के लिए कहा ताकि प्राकृतिक नियम से वह उसे अपना आहार बना सके।

इस पर शिबि ने बाज़ को ऋषभकन्द अथवा वेहत नामक औषधि का पुष्टिदायक आहार सुलभ कराने का प्रस्ताव दिया मगर बाज़ न माना।

बाज़ ने कहा कि या तो कबूतर को मेरे लिए छोड़ दो या फिर अपनी दाईं जांघ से कबूतर के वज़न बराबर मांस काटकर दो।

शरणागत की प्राणरक्षा के लिए शिबि ने अपने शरीर का मांस काटा और तौला तो वह कबूतर से कम निकला। राजा ने अपने अंगों को रक्तरंजित कर बार-बार काटा लेकिन तब भी कबूतर का भार ही अधिक निकला। अंत में शिबि स्वयं ही तराजू के दूसरे पलड़े पर जा बैठे।

तब बाज़ बोला कि 'हो गई कबूतर की प्राणरक्षा' और वह अंतर्धान हो गया। तब राजा के पूछने पर कबूतर ने अपना और बाज़ का परिचय दिया। बताया कि वह अग्नि है तथा बाज़ के रूप में देवराज इंद्र दोनों मिलकर परीक्षा लेने आए थे।

महाभारत के अनुसार शिबि कहते थे–

'नैवाहर्मतद् यशसे ददानि न चार्थहितोर्न च भोगतृष्णया।
पापैनासेवित एव मार्ग इत्येवमेतत् सकलं करोमि॥'

अर्थात... **मैं यश के लिए दान नहीं देता।** धन या भोग की कामना से भी नहीं देता। बल्कि इसलिए देता हूं क्योंकि इस पर पापी नहीं चल सकते। दान धर्म है, यही समझकर ऐसा करता हूँ।

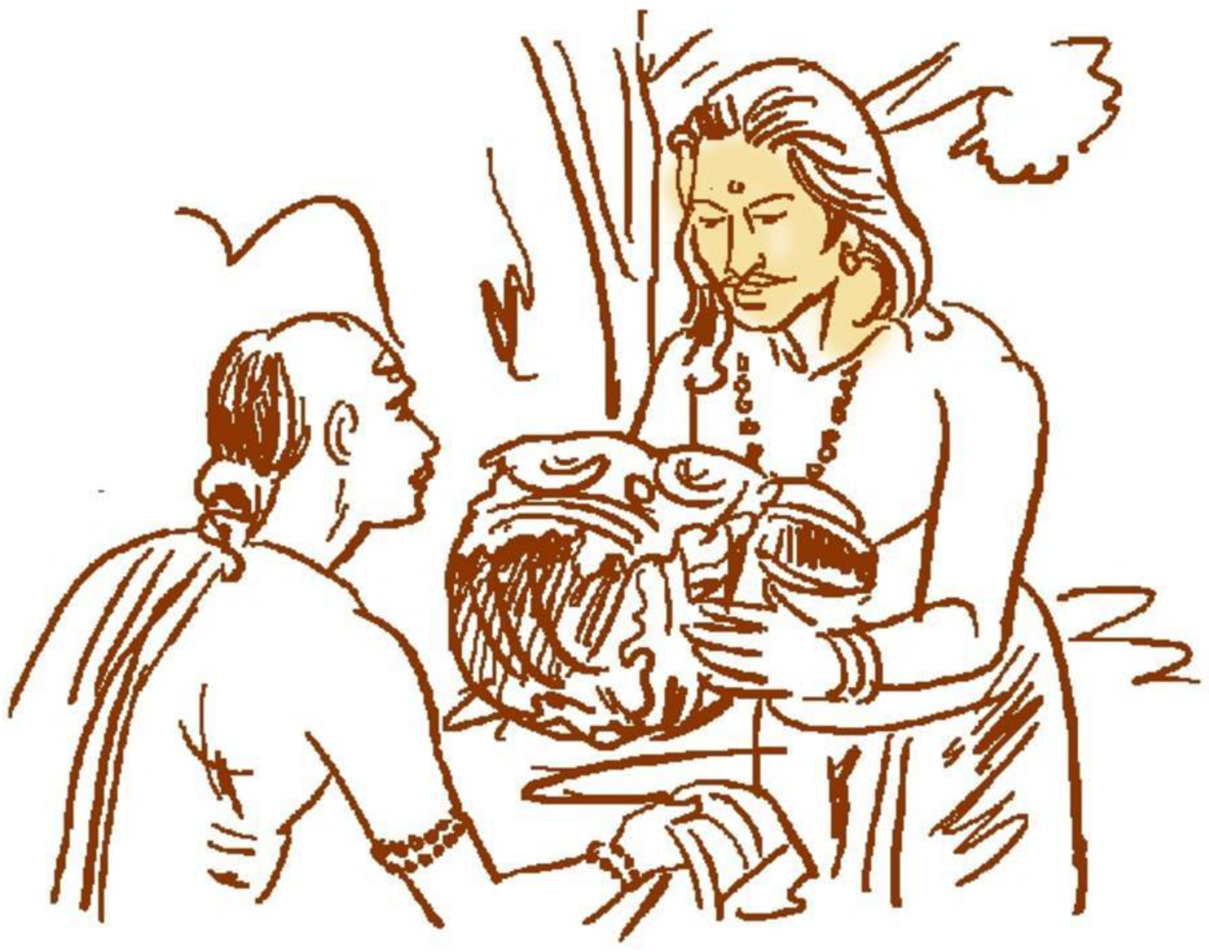

4 जीवन दांव पर लगा दान देने वाले दानी कर्ण

कौरवों का साथ देने के कारण कर्ण निंदित है लेकिन उसकी दानवीरता आज भी उसे यशस्वी बनाए हुए है। कर्ण ने अपना जीवन ख़तरे में जानकर भी ब्राह्मण रूप इंद्र के मांगने पर दिव्य कवच-कुंडल दान कर दिए थे। इस घटना से पूर्व वह राधेय नाम से परिचित था किंतु कवच-कुण्डलों के कर्णन (कर्त्तन) के कारण कर्ण और वैकर्तन नामों से प्रसिद्ध हुआ।

वनपर्व में 11 अध्यायों का एक पूरा उपपर्व 'कुण्डलाहरण पर्व' के शीर्षक से संकलित है। इसमें कर्ण के जन्म, त्याग और महादान की कथा है। इसके अनुसार, पाण्डवों के 12 बरस का वनवास पूरा होने के बाद जब 13वें बरस का अज्ञातवास प्रारंभ हुआ तब सर्वज्ञ देवताओं को भावी युद्ध का अनुमान हो गया था। युद्ध में अपने पुत्र अर्जुन की रक्षा के लिए इंद्र ने कर्ण के उन जन्मजात कवच-कुण्डलों के हरण की योजना बनाई जिनके रहते कर्ण अवध्य और अजेय था। इंद्र का मनोभाव जान सूर्यदेव ने अपने पुत्र कर्ण को समझाया कि यदि अपने प्राणों की रक्षा करनी हो तो किसी भी सूरत में अमृतमय कवच-कुंडल का दान न दे। कर्ण अपने दानव्रत पर अडिग था और कीर्तिकांक्षी था, अतः उसने सूर्य से कहा कि 'वृणोमि कीर्ति लोके हि जीवितेनापि भानुमन्। कीर्तिमानश्नुते स्वर्गे हीनकीर्तिस्तु नश्यति।।' अर्थात हे सूर्यदेव! मैं जीवन देकर भी जगत में कीर्ति का ही वरण करूंगा। इसलिए कि कीर्तिमात व्यक्ति ही स्वर्गिक सुख भोगता है। जिसकी कीर्ति नष्ट हो जाती है, वह स्वयं भी नष्ट ही है।

सूर्य के बहुत समझाने पर भी जब कर्ण न माना तब सूर्य ने उसे दान के बदले इंद्र की शत्रुघातक अमोघ शक्ति मांगने को कहा और अंतर्धान हो गए। अगले दिन इंद्र ने आकर कर्ण से कवच-कुण्डलों का दान मांगा। कर्ण ने आनाकानी की मगर जब इंद्र कवच-कुण्डल पर अड़े रहे तो कर्ण शक्ति के बदले दान पर राज़ी हो गया। उसने तलवार से अपने जन्म के साथ उत्पन्न कवच-कुण्डल काटकर इंद्र को दे दिए।

महाभारतकार लिखते हैं ऐसा करते समय उस पर आकाश से पुष्पवर्षा हुई। काटते समय अत्यंत पीड़ा के बावजूद कर्ण के मुख पर तनिक विकार न आया। इंद्र के आशीर्वाद से कवच निकलने के बाद भी उसका शरीर वीभत्स न हुआ। इंद्र ने उसे केवल एक बार प्रयोग में आने वाली अमोघ शक्ति दी, जो युद्ध में घटोत्कच को मारने के काम आई।

कर्ण को इस दान से यश तो मिला पर फल नहीं क्योंकि उसका दान निष्काम नहीं, विनिमय था। दान वही श्रेष्ठ, धर्मसम्मत व फलदायी है जो कामना रहित होकर किया जाए।

दान ही सच्चा धर्म है...

धर्मग्रंथों में धन की तीन ही गति कही गई है– पहली दान, दूसरी भोग और तीसरी नाश। इनमें दान सर्वोत्तम है।

अन्नदान, जलदान, भूमिदान, धनदान, गोदान, क्षमादान और जीवनदान की कथाओं से धर्मग्रंथ भरे हुए हैं। वर्तमान में रक्तदान, नेत्रदान और देहदान दाताओं के यश का वर्धन कर रहे हैं।

अठारह पर्वों के महाकाव्य 'महाभारत' का 13वां पर्व अनुशासन पर्व है। जो महायुद्ध के बाद शांतिपर्व के ठीक बाद में है। अनुशासन पर्व के 168 में से 166 अध्याय 'दान धर्म पर्व' के ही रूप में संकलित हैं। यह संकेत है कि जीवन का सच्चा अनुशासन दान में ही है। दान ही मनुष्य का सच्चा धर्म अर्थात कर्तव्य है जो पर्व अर्थात मिलन या उत्सव की सृष्टि कर धरती को सबके लिए 'स्वर्ग' बनाता है। **अनुशासन पर्व के अनुसार–**

मनुष्य धर्म, अर्थ, भय, कामना और दया, इन पांच हेतुओं से दान देता है। इनमें ईर्ष्या या कामना रहित होकर दिया गया दान ही धर्ममूलक और सर्वश्रेष्ठ है।

'इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्।' **अर्थात–**

दान करने वाला मनुष्य इस लोक में कीर्ति और परलोक में उत्तम सुख पाता है।

महाभारत के अनुसार दानों में सर्वश्रेष्ठ अन्नदान है।

'अन्नेन सद्दशं दानं न भूतं न भविष्यति।
तस्मादन्नं विशेषेण दातुमिच्छन्ति मानवा:।।' **अर्थात–**

अन्न के समान न कोई दान था न होगा। इसलिए मनुष्य प्रमुखतः अन्न का ही दान करते हैं। कारण...

'अन्नेन धार्यते सर्वे विश्वं जगदिदं प्रभो।' **अर्थात–**

सम्पूर्ण जगत को अन्न ने ही धारण किया है। अन्न से ही सभी सबके प्राण टिके रहते हैं। अतः इससे बढ़कर कोई दान नहीं है।

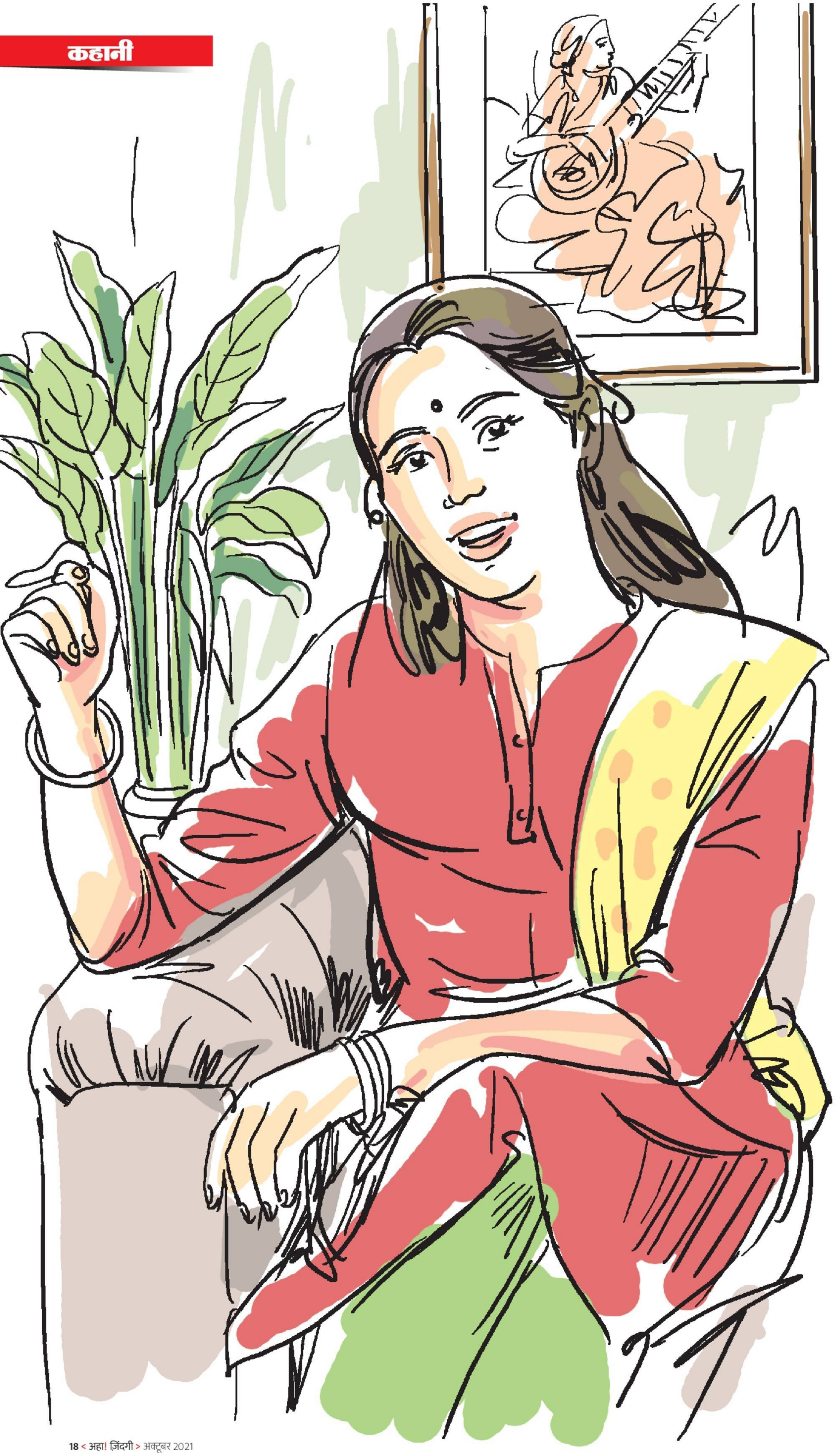

खिड़की की एक झिरी है, जहां से दो स्त्रियों की दुनियाएं आपस में मिल जाती हैं- **मानो क्षितिज हो...**

शायद...

दोनों के हालात अलग-अलग हैं, **लेकिन दुःखों में समानता है।**

यह समानता उनमें से एक को क्षुब्ध करती है तो दूसरी के लिए सहानुभूति से भी भरती है।

उनके बीच होने वाले संवादों से सम्बंधों की जटिलताओं के पहलू खुलने लगते हैं।

मध्यवर्गीय जीवन की दुविधाओं में गहरी मनोवैज्ञानिक सेंध लगाने वाली कहानी

झिरी

पाठकों को अवश्य रुचेगी...

राजगोपाल सिंह वर्मा

पत्रकारिता तथा इतिहास में स्नातकोत्तर। केंद्र एवं उत्तर प्रदेश सरकार के विभिन्न मंत्रालयों में प्रकाशन, प्रचार और जनसंपर्क के क्षेत्र में ज़िम्मेदार पदों पर कार्य करने का अनुभव। विभिन्न राष्ट्रीय समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, आकाशवाणी और डिजिटल मीडिया में हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा में लेखन, प्रकाशन तथा सम्पादन का सिलसिला।

'गरिमा... ओ गरिमा, आ गईं तुम?'

दिन भर ऑफ़िस में खटने के बाद दो ऑटो बदलकर गरिमा घर पहुंची ही थी। वह थकी हुई थी। वॉश बेसिन पर जाकर मुंह पर पानी के छपके मारने जा ही रही थी कि उसे कुछ सुनाई पड़ा। गरिमा ने घूमकर देखा तो खिड़की की झिरी से वही दो आंखें, और परिचित आवाज़ थी।

'हां सुनंदा, बस अभी आई ही हूं। कैसी हो तुम? अंदर आ जाओ,' मुस्कराते हुए कहकर गरिमा ने जल्दी से दरवाज़ा खोलने की औपचारिकता निभाई, पर उसे नहीं आना था।

'न, अभी नहीं, बाद में आती हूं। ज़रा उस चुड़ैल की तो खोज-ख़बर ले लूं...। अभी तक आया नहीं है संजय, पता नहीं क्या टोना-जादू किया है। न कोई शर्म है न लिहाज़...', कहकर वह निकल ली।

कहानी... झिरी... जारी...

थकी-हारी गरिमा अवाक रह गई। वो जानती थी कि वह अभी बैठने वाली नहीं थी। पर अगर न पूछा होता तो कई दिन आते-जाते टोकती, 'गरिमा... अब तो भूल गई हो हमें। बुलाती ही नहीं। खिड़की भी बंद ही रहती है...!'

तब कोई जवाब न होता गरिमा के पास, सिवाय एक फीकी हंसी के। पर कभी-कभी बहुत अखरता उसे। अब वो क्या करे अगर उसका पति किसी और स्त्री के साथ रहता है। वह कर भी क्या सकती है, लेकिन जब वो चुन-चुनकर उस औरत को गालियां दिया करती है तो लगता है कि न जाने अप्रत्यक्ष रूप से कहीं वह ख़ुद गरिमा को ही तो नहीं सुनाना चाहती ये गालियां।

पर दूसरे ही पल गरिमा ख़ुद को मज़बूत बना लेती... यही दुनिया है, हर किसी की समस्या है। किसी को जॉब की, किसी को शादी करने की, कहीं पर मियां-बीवी एक-दूसरे से उलझे रहते हैं। कौन-सा रिश्ता, कैसा प्रेम, क्या संस्कार... कुछ भी निरपेक्ष नहीं। वो क्या कहते हैं गिव एंड टेक, बस वही तो पॉलिसी है आज की इस झूठ के सहारे टिकी जगमगाती दुनिया में।

रोज़ सोचकर दुःखी होती कि न जाने क्यों इतनी दूर घर लिया उसने। कोई अपना नज़दीक नहीं, और तमाम दिक़्क़तें! फिर उसकी दोस्ती क्या सुनंदा से ही होनी थी? जी प्लस थ्री के पचासों ब्लॉक में एक यही उसे मिली? या उसने ही गरिमा को ढूंढा था यहां? अब तो कुछ याद भी नहीं। वो तो कोई बिल्कुल बग़ल की पड़ोसन भी नहीं थी। चार ब्लॉक छोड़कर उसका दूसरी मंज़िल का फ़्लैट था जिस तक वह तो शायद साल-छह महीने में कभी जा पाती।

अभी चेंज करने की हिम्मत नहीं थी, सो डेढ़ कमरे के फ़्लैट में गरिमा दरवाज़ा बंद कर धम्म से सोफे पर ही बैठ गई। मूड बिगाड़ने में सुनंदा का जवाब नहीं, भले ही अनजाने में हो। उसे थोड़ी चिढ़ हो आई। सोचा कि बोल देना चाहिए था कि मैं क्या करूं... तू जान और तेरा पति! अगर सिर्फ़ एक बार ही सख़्ती से बोल दे वह तो फिर हमेशा की छुट्टी। लेकिन ऐसा बोल कब पाती है वो उसे? इतनी बड़ी कॉलोनी है। डिब्बों की तरह चौकोर फ़्लैट्स का भूतल सुनंदा के लिए कुछ ज़्यादा ही आरामदेह रहता है। जैसे किसी पैसेंजर ट्रेन का हाल्ट हो। आते-जाते खिड़की के पास खड़े होकर पुकार लगाओ, और मन को हल्का कर निकल लो। अपने ब्लॉक से इतनी दूर आकर मैं ही मिलती हूं उसे सब क़िस्से-कहानियां खपाने, और मेरा मन ख़राब करने के लिए!

और फिर क्या मन उसी का है? बस अपना मन हल्का किया और चली गई। मेरा क्या, मैं किसके सामने अपना दुःख रोऊं! सोचा था कि फ़र्स्ट फ़्लोर का ख़रीदूंगी फ़्लैट। ऊपर आते-आते चार बार सोचते तब सुनंदा जैसे लोग। खुली हवा में बैठने का मन करे तो बालकनी में बैठ लो। पर बच्चे नहीं माने। उन्हें ग्राउंड फ़्लोर ही भा गया था। अब भुगतो। यहां तो जब चाहे गाहे-बगाहे मुंह उठाओ और खटखटा दो अधखुली खिड़की। अब झिरी भी खुली न रखें तो क्या सांस लेना भी छोड़ दें, वैसे ही कोई वेंटिलेशन नहीं है इस मकान में। सोचते-सोचते गरिमा का मन और ख़राब होने लगता। शायद अवसाद इसे ही कहते हैं।

नहीं ऐसा नहीं चलेगा... वह वैसे ही जल्दी थक जाती है आजकल। उसे कहना ही होगा सुनंदा से कि रखे अपने पास वो पति की बेवफ़ाई की कहानियां। उसके मन की भी तो सोचनी चाहिए सुनंदा को। और अगर वह नहीं सोचती तो मुझे ही क्या पड़ी उसकी सुनने की। इस बार बोल दूंगी पक्के से। पर असलियत तो यह नहीं। न जाने कितनी बार सोचा है ऐसा उसने। पर जैसे ही सुनंदा झिरी के पास से आवाज़ देती, तो न चाहते हुए भी मुस्कराना उसका भी नियम बन गया था। भले ही वो झूठी मुस्कराहट हो।

कई बार लगता है कि उसकी ख़ुद की क्या ग़लती है, वह वाक़ई में सताई हुई है। क्यों होते हैं पुरुष ऐसे? मन करता कि उसके पति से दो-टूक बात करूं। पर जब सुनंदा फ़ुर्सत में आती है तो सबकुछ होने के बाद भी अच्छा मन हो तो पति पर लाड़ भी बरसा देती। तब धीरे से बोलती, 'है तो लाखों में एक... मुझे कोई कष्ट नहीं होने देता। जब उसका साया नहीं होता, तो बहुत प्रेम भाव रखता है। पर जब वो कुलच्छिनी उसे सिखा-पढ़ा देती है, तो न जाने कैसा बर्ताव करने लगता है।' यानी वो खुलेआम बेवफ़ाई कर रहा है, पर 'है तो लाखों में एक'। क्या सोच है! पर होने दो, उसे क्या। उनकी आपसी बात है, उन जटिलताओं में पड़कर मुझे क्या करना, सोचकर ऐसे में चुप ही रहती गरिमा। पर इतना ज़रूर था कि उसकी इन बातों से जो उथल-पुथल उसके ख़ुद के मन में चलती वह आसानी से दूर नहीं हो पाती... कई बार तो पूरी रात ही बेचैनी से कटती।

जानकीपुरम से भी पार होकर पड़ता है उसका घर। ऑफ़िस है गोमतीनगर के विभूति खंड में। दोनों विपरीत छोर। दूरी होगी कोई 19-20 किलोमीटर। और आने-जाने के साधन भी कामचलाऊ। खचाखच भरे ऑटो। उनमें कानफाड़ू आवाज़ में लोकल म्यूज़िक सिस्टम से दिल को दहलाते हुए द्विअर्थी भोजपुरी गानों की बौछार। पता नहीं सरकार क्यों प्रतिबंध नहीं लगाती उन पर। अंधेरा होने के बाद तो पूरे ऑटो में गुलाबी, नीली, पीली और हरी रंग की जलती-बुझती लाइटें भी क्या कम प्रदूषित करती दिखती हैं उसको। एक बार तो वास्तव में ही चिल्ला पड़ी थी वो। तब ऑटो वाले ने जो बोला था वो याद था उसे अभी तक, 'मैडम, अगर इतनी ही दिक़्क़त है तो अपनी गाड़ी से चला कीजिए। क्यों ये शेयर्ड ऑटो में चलकर अपना दिमाग़ ख़राब करती हैं... और साथ में हमारा भी!'

उसकी सहयोगी महिलाएं कहतीं, क्यों नहीं ले लेतीं एक्टिवा... गिरते-पड़ते आना-जाना होता है, उससे तो बेहतर ही रहेगा। ऑटो में चोर-उचक्के, गिरहकट और तमाम तरह की दुर्गन्ध से भरे लोगों का अनजाना-सा साथ। फिर ख़ुद को बचाते-बचाते रोज़ किसी न किसी से उलझना... वाक़ई वह थक चुकी थी। अभी कल ही तो बता रही थी नंदिनी कि अब एक्टिवा ख़रीदने पर ब्याज भी काफ़ी कम हो गया है... शायद सात परसेंट। लेकिन वह चाहती कब है कि एक्टिवा ले। वह तो सीधे फ़ोर व्हीलर पर निगाह जमाए हुए है। पूरे सोलह साल गुज़र गए। पर उसका सपना वही है, और सपना है कि सच होना ही नहीं चाहता!

सोफे पर पसरे हुए ही पता ही नहीं चला कि कब गहरी नींद आ गई। वह अफ़ोर्ड नहीं कर सकती थी इस समय नींद। उसका एक-एक मिनट बंधा हुआ है, एक अलिखित-से अनुशासन में। साढ़े छह बजे लौटना हुआ उसका ऑफ़िस से, और सात बजे उसके स्टूडेंट्स का बैच आ जाएगा पढ़ने के लिए। फिर साढ़े नौ बजे फ़ुर्सत मिलेगी। तब वह पहले से बनी सब्जी और गुंधे आटे से यंत्रवत चपातियां सेंकेगी और चिरौरी करेगी अनु और देव की। इतने छोटे भी नहीं रहे बच्चे कि उनका हाथ पकड़कर कौर मुंह में डाले। डांटना तो कभी सुहाता ही नहीं उसे। पर देव तो ख़ुद को बड़ा मानता है पहले से ही। तभी अकसर कहता है, 'मॉम, क्यों टेंशन लेती हो। जब मन होगा तो खा लेंगे। आप कैसरोल में रख दिया करो। ख़ुद थक जाती हो, फिर भी लगी रहती हो।'

पर वो मां है। उसका दिल नहीं मानता। बढ़ती उम्र के बच्चे हैं। अब ताज़ा बना नहीं खाएंगे तो मेरे पास उनके रहने का सुख ही क्या है। बाद में बोलेंगे कि हमने तो रखी हुई चपातियां खाईं जन्म भर। न। ऐसा नहीं होने देगी वो। बीवी या पति की बात अलग है। शादी हो जाए, तो जैसा वो चाहें वैसे रहना, पर मैं तो गर्म फुल्के ही खिलाऊंगी। ऐसा वो हंसकर कह भी दिया करती। वो याद दिलाती कि जब वो नन्हा-सा था, तब वो नन्ही-सी चपाती की ज़िद करता था। ज़िद यह भी होती कि गोलगप्पे की तरह फूली चपाती ही चाहिए। समय कितना बदल जाता है। लगता है कल ही का देव था वो, जो तुतलाती ज़बान में अपनी बात मनवाने के लिए कभी भी रोने लगता था। वही देव आज कैसरोल में ठंडी चपातियों के लिए तैयार है। और अनु भी।

तीन बार डोरबेल की 'ट्रिंग-ट्रिंग' से गरिमा हड़बड़ाकर उठ बैठी। उसकी निगाहें दीवार घड़ी पर चली गईं। सात बजकर दस मिनट हुए थे, पर बेल उसके स्टूडेंट्स की नहीं थी। दरवाज़ा खोला तो अनु और देव दोनों कोचिंग से लौट आए थे।

'गुड ईवनिंग मॉम...' दरवाज़ा खोलते ही दोनों ने कोरस में बोला। अनु हमेशा की तरह उससे चिपक गई और देव अपने बैकपैक को दीवान पर फेंक वाशरूम में घुस गया।

'मैंने सोचा स्टूडेंट्स आए हैं मेरे... झपकी लग गई थी,' गरिमा ने अनु को सहलाते हुए कहा तो उसने आंखें तरेरीं, 'आप भी मॉम... यानी अब डेट्स की जगह डे का भी मुझे ही याद दिलाना पड़ा करेगा क्या? अरे मेरी बुद्धू मां, आज सैटरडे ऑफ़ है आपके प्रिय स्टूडेंट्स का, और कल संडे...। सो रिलैक्स!' दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ीं। सच में वह निरी बुद्धू ही तो है। तभी तो न डेट्स याद रहती हैं, और अब न दिन। कितनी बार देव ने कहा कि ज़माने के साथ चलो, एक एंड्राइड फोन के बिना कोई जी पाता है क्या...! पर वह वाक़ई नए ज़माने में फ़िट नहीं हो पाती। क्या हुआ अगर उसने पीएचडी कर ली, पर वह है कूपमंडूक ही अभी तक। डेस्कटॉप पर थोड़ा-बहुत काम कर लेती है, पर लैपटॉप और एंड्राइड मोबाइल, दोनों में ही कभी सहज नहीं रही। एक बार लिया भी था पर उससे नहीं सम्भल पाया। वह परेशान होकर अनु को दे दिया। वही पुराना क्वार्टी फोन वापस ले आई थी वो।

'इसे कहते हैं रेट्रो फैशन!' तब ऐसा देव ने उद्घाटित किया था। अनु पूछती रही कि यह क्या होता है। देव ने उसे इसका अर्थ बताते हुए कहा था, 'अ स्टाइल ऑर फ़ैशन फ्रॉम द पास्ट!' तो वह हंसकर बोली, 'है तो स्टाइल ही न। पुराना ही तो घूमकर आता है। और फिर ओल्ड इज़ गोल्ड। मॉम इज़ अ फ़ैशन आइकॉन दैट वे।'

अनु सिक्स्थ में आई है। ग्यारह साल की हो गई है, पर उसे अभी इतना पता है जितना गरिमा को ग्रेजुएशन की स्टडी के दौरान पता होता था।

कहानी... झिरी... जारी...

और देव? उसका तो बस पूछो ही नहीं। वो तो अपने में ही मगन है। उसे याद नहीं आता कि देव ने कब उससे कोई फ़रमाइश की हो। जो है, जैसा है, मस्त रहता है। इस बार फ़र्स्ट ईयर में आया है। कोचिंग में समय देता है। फ़ंडामेंटल्स तो छुट्टियों में ही क्लीयर कर लिए थे। अगले साल की तैयारियों के लिए जुनून सवार है उस पर। पर फिर वह और भी अकेली हो जाएगी, गरिमा सोचती है!

कल छुट्टी रहेगी, तो आज कुछ अच्छा बनाना चाहिए। यह सोचकर गरिमा ने जल्दी से देव को एक लिस्ट थमा दी, जो सामान उसे ग्रॉसरी शॉप से लाना था। पास ही थी दुकान।

उसका निकलना था और सुनंदा का आना। वह दरवाज़ा बंद भी नहीं कर पाई थी कि सुनंदा न जाने कहां से आकर खिड़की की झिरी पर प्रकट हो गई थी।

'गरिमा... आ जाऊं क्या?' उसने बोला तो गरिमा के चेहरे पर मुस्कराहट आई, पर अंदर से उसे कुढ़न हो रही थी कि कितनी ड्रामेबाज़ है यह। एक ही घंटा तो हुआ होगा जब बुला रही थी तो तीर-सा एक वाक्य बोल कर उड़न-छू हो गई। और अब फिर से आ गई है, अपनी कोई नई कहानी लेकर।

उसी कृत्रिम मुस्कराहट को सहेजे हुए गरिमा ने दरवाजा खोला तो सुनंदा ने उसके कंधे पर सिर रखकर जो रोना शुरू किया तो वह रुक ही नहीं पाई। वह जितना उसे चुप कराती, सुनंदा का रुदन उतना ही बढ़ जाता। हिचकियों और आंसुओं से रो रही सुनंदा आज कुछ ज़्यादा ही दुःख में थी। थोड़ा शांत हुई तो बताने लगी, 'आज फिर से उसी रास्ते पर चल निकले हैं ये। न जाने रात को कहां रंगरलियां मनाने का प्रोग्राम बना है...,' सुनंदा फिर रोने लगी थी। थोड़ा चुप हुई तो विवरण बताया। संजय ने बताया था कि ऑडिट की तैयारी के लिए रात भर ऑफ़िस में रुकना होगा, इसलिए वह उसका वेट न करे। उसके फोन की बैटरी भी ख़त्म हो रही थी सो अधिक बात भी नहीं हो पाई कि फोन बंद हो गया था।

'तो क्या हुआ... होता है कई बार ऐसा,' कहकर गरिमा ने सुनंदा को समझाया। पर उसने जो बताया वह कुछ अलग ही कहानी थी।

'वो बात नहीं है गरिमा। सिक्स्थ सेंस अभी भी काम करती है मेरी। मैंने उनके ऑफ़िस के लैंडलाइन पर कॉल किया था अभी। केयरटेकर ने बताया कि सब कमरे बंद हैं, और केवल सिक्योरिटी स्टाफ़ वहां मौजूद है। अब क़िस्मत को रोऊं नहीं तो क्या करूं?' कहकर वह फिर सुबकने लगी। और फिर शुरू हुआ सुनंदा का संजय की तथाकथित प्रेमिका को चुनिंदा गालियां सुनाने का सिलसिला। इसी पुनरावृत्ति से डरती है वो। एक अनजान तथा अनाम पर-स्त्री को दी जाने वाली गालियां न जाने क्यों गरिमा के मन को बेधती जाती हैं। कई बार तो उसे संदेह भी होता है कि कहीं वह वाक़ई बहाने से गरिमा को ही तो नहीं बुरा-भला कहती। पर नहीं, ऐसा क्यों होगा। उसकी सिर्फ़ एक सोच भर थी, कल्पना थी, पर सुनंदा का दुःख तो वास्तविक है। उससे सहानुभूति होनी चाहिए।

'तुम रुको, मैं कुछ बना लूं तब तक,' कहकर गरिमा ने किचन में जाने का उपक्रम किया तो वह भी साथ चली आई। हाथ बंटाने के लिए। आलू-मटर-पनीर की सब्जी और बूंदी का रायता बनाने के लिए सामान निकाल रखा था। उसने आलुओं को छीला और चॉपर पर उनके टुकड़े करने शुरू किए। पर उसकी बातें जारी थीं। बीच में रुक भी जाती। बोली, 'एक बात बताओ भाभी, ये मर्द होते क्यों हैं ऐसे? क्या मुझमें कुछ कमी है? कुरूप हूं? नापसंद हूं? या कम पढ़ी-लिखी हूं। दिल्ली में संजय से बेहतर जॉब पर थी। पर न जाने क्या सोचकर इसने लखनऊ की पोस्टिंग ली और मुझसे जॉब छुड़वा दिया। अब ख़ुद छुट्टे घूमो, और पत्नी सिर्फ़ तुम्हारी राह तके... खिलाए-पिलाए और तुम्हारे मन-मुताबिक़ रहे! वो भी तब, जब वो जानती हो कि तुम किसी और के साथ समय बिताकर आए हो! आख़िर क्यों?' गरिमा चुप रही। अचानक उसने सुनंदा का हाथ थाम लिया। वह कह रही थी कि, 'तुम ख़ुद को दोष क्यों देती हो। तुम बहुत अच्छी हो। संजय ही ग़लत है, वह नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है। यह अंधी गली है। इसमें से वापस आने के दरवाज़े न जाने कब बंद हो जाएं, वह नहीं जानता। उसकी फ़िक्र कम करो, अपनी ज़्यादा करो। तुम्हें अजय को भी देखना है। यह उसका हाईस्कूल है, इसलिए मज़बूत बनो, उसे समय दो। समय और ईश्वर सब रास्ता निकाल देगा!'

पता नहीं कहां से गरिमा ने उसे ज्ञान दिया था। ऐसा ज्ञान था वह जिसकी उसे भी सख़्त ज़रूरत थी। सुनंदा भावुक होकर स्नेह से उसके हाथों को सहलाने लगी। वो अब रुआंसी नहीं रही थी। बोली, 'सच है। यही सोचती हूं कि मुझे भी अपने और बेटे के लिए जीना है... आज से ही मैं बदल लूंगी ख़ुद को। चाहे कितने भी कष्ट उठाने पड़ें पर अब कुछ अलग ही रहेगा मेरा रूप...'

उसके मोबाइल की घण्टी बजी थी। अजय, सुनंदा को घर बुला रहा था। वह जल्दी निकल ली।

गरिमा ने उसे विदा किया, और दरवाज़े के साथ ही उस खिड़की की झिरी को भी बंद कर दिया! वह सोच में थी। आख़िर वह ख़ुद भी तो उसी रास्ते से होकर पहुंची है, जहां अपने पति राकेश के विवाहेतर-संबंध के परिणामस्वरूप वह उसे छोड़ आई थी, पर उसे ख़ुद नहीं मालूम पड़ा कि किस पल वह मोगरे के फूलों की ख़ुशबुओं से सुवासित हो चली थी। और यह अनजानी सुगंध का झोंका यूं ही धीमे-धीमे उसके हर लम्हे... रोम-रोम में रचता-बसता चला गया, बहुत कुछ अपना-सा बनकर। पर सच यही था। वह पुरेन्द्र की ओर आकर्षित होने से स्वयं को नहीं रोक पा रही थी। लेकिन क्या यह सही था? राकेश की जिस हरकत के प्रतिकार में उसने घर छोड़ दिया था, वही हरकत गरिमा भी तो दुहरा रही थी। हालांकि पति से रास्ते अलग करने का निर्णय उसका नितांत अपना था, पर लगता ऐसा था कि उस प्रेम-मोह की परिणति के रूप में वह पति से अलग आकर यहां रह रही है। यह कोई नहीं जानता कि दुर्भाग्य का सामना करना उसकी ही क़िस्मत में लिखा है।

राकेश अपनी मां के पास रहता है। न तलाक़ हुआ है, और न साथ है। पुरेन्द्र अपनी अग्नि साक्षी स्त्री के साथ रहते हुए ही थोड़ा उसका भी बना रहता है। पर ऐसा कोई नहीं जिसने गरिमा का मन पढ़ा हो- न वह जिसने अग्नि के समक्ष हमेशा साथ देने का वचन दिया था, और न वह जिसके साथ गरिमा मोहपाश में बंधती चली गई थी! आज स्थिति यह है कि वह ख़ुद कहीं न होते हुए भी दोनों जगह है, पर अनधिकृत रूप में। क्या सारा क़सूर उसी का है? प्रेम करना या प्रेम की अपेक्षा करना क्या इतना ही बुरा है? गरिमा सोचती।

हमेशा की भांति सोचने के बाद, फिर उसे लगता कि अगर उसकी क़िस्मत में प्रेम नहीं मिलना था तो शायद वह उसका प्रारब्ध था। पर क्या उसने ईमानदारी से प्रेम नहीं किया राकेश से? अग्नि की पवित्रता को क़ायम तो रखा था न? अगर राकेश का पूरा निष्कपट प्रेम उसे मिला होता तो पुरेन्द्र उसकी ज़िंदगी में दबे पांव आ ही नहीं सकता था, यह वह जानती है। पर पुरेन्द्र का क्या... क्यों वह उसे अपना मान बैठी है, जबकि वह तो पहले से ही किसी और के बंधन में बंधा है!

काश! वह इन सब यादों से अलग कुछ सोच पाती। पर न जाने इंसान को क्यों ऐसा बनाया गया है, कि जितना वह भूलना चाहे, यादें और गहराती जाती हैं।

अचानक एक झोंका आया और खिड़की की झिरी, जो अभी तक थोड़ी ही खुली थी, अब काफ़ी अधिक खुल गई। वह झुंझला उठी। बंद करते हुए बड़बड़ाने लगी... तमाम कोशिशों के बाद भी रिश्तों में आख़िर ये झिरियां बची क्यों रह जाती हैं? क्यों वक़्त बे-वक़्त हवा के झोकों-सा कोई बहकावा अपनी जगह बना ही लेता है!

'संडे को कारपेंटर को बुलाकर इसे फ़िक्स कराना ही होगा...' उसने थोड़ा ज़ोर से बोला।

देव ने ग़ौर से मां के चेहरे को देखा। वह जानता है कि मां सुनंदा आंटी को नापसंद करते हुए भी पसंद करती है। यह झिरी उनके लिए ही तो खुली रहती है। वेंटिलेशन का तो बस बहाना है। वह इतना बड़ा हो गया है कि समझ सकता है कि प्रेम के एक ऐसे झोंके की उसे आज भी प्रतीक्षा है, जो सिर्फ़ उसके लिए ही आया हो, उसका अपना बना रहने के लिए।

उधर गरिमा ने वॉशरूम में जाकर ख़ुद से आंखें मिलाने की कोशिश की। रह-रहकर बालों की चांदनी, आंखों के नीचे उतर आई कालिमा और हल्की-सी झुर्रियों के बीच कुछ तो ऐसा था, जो स्मृतियों को विस्मृत नहीं करने दे रहा था। थोड़ा-सा भ्रम बने रहना भी ज़रूरी है!

अपने समय को गाता हुआ

• **विजय नाहटा** की ये कविताएं वृक्ष, वन, नदी, समुद्र और आकाश होने की आकांक्षा से भरी हैं। अपने सार्वभौमिक आशयों में कविता का अर्थ अपनी भौतिक सीमाओं को लांघकर दिगन्त में व्याप जाना ही तो होता है। ये कविताएं उसी व्याप्ति का वितान रचती हैं।

1

कोई प्रारूप नहीं

कोई प्रारूप नहीं
निर्धारित-सा
न ही ठहरा हुआ दृष्टि बोध
बहता प्रवाह हूं
संवेदन का एक गतिशील निर्झर
चेतना की लहर सम
जड़ता नहीं पसरी हुई
एक अनवरत कर्मशीलता हूं
झील का रुका जल नहीं
नदी का कलकल स्वर हूं
जिसे बहना है :
होना है हर पल नया
-औ' प्रासंगिक।
न हूं स्वयंसिद्ध अभिप्राय
बल्कि;
जीवन के हक़ में :
अंतहीन जिज्ञासा-सा व्यग्र आतुर हूं
ठोस निष्पत्ति कहां?
-हर क्षण बुनी जाती दीख पड़ती
वो चिर प्रक्रिया हूं जो थमती नहीं
हर पल के ताप में पकता
जीवन यथार्थ हूं
कोरा अचल सिद्धांत नहीं
न होना मुझे जिल्दों की कारा में बंद
वरन, हर दुःख की टोह लेता
-तरल लोक व्यवहार हूं।

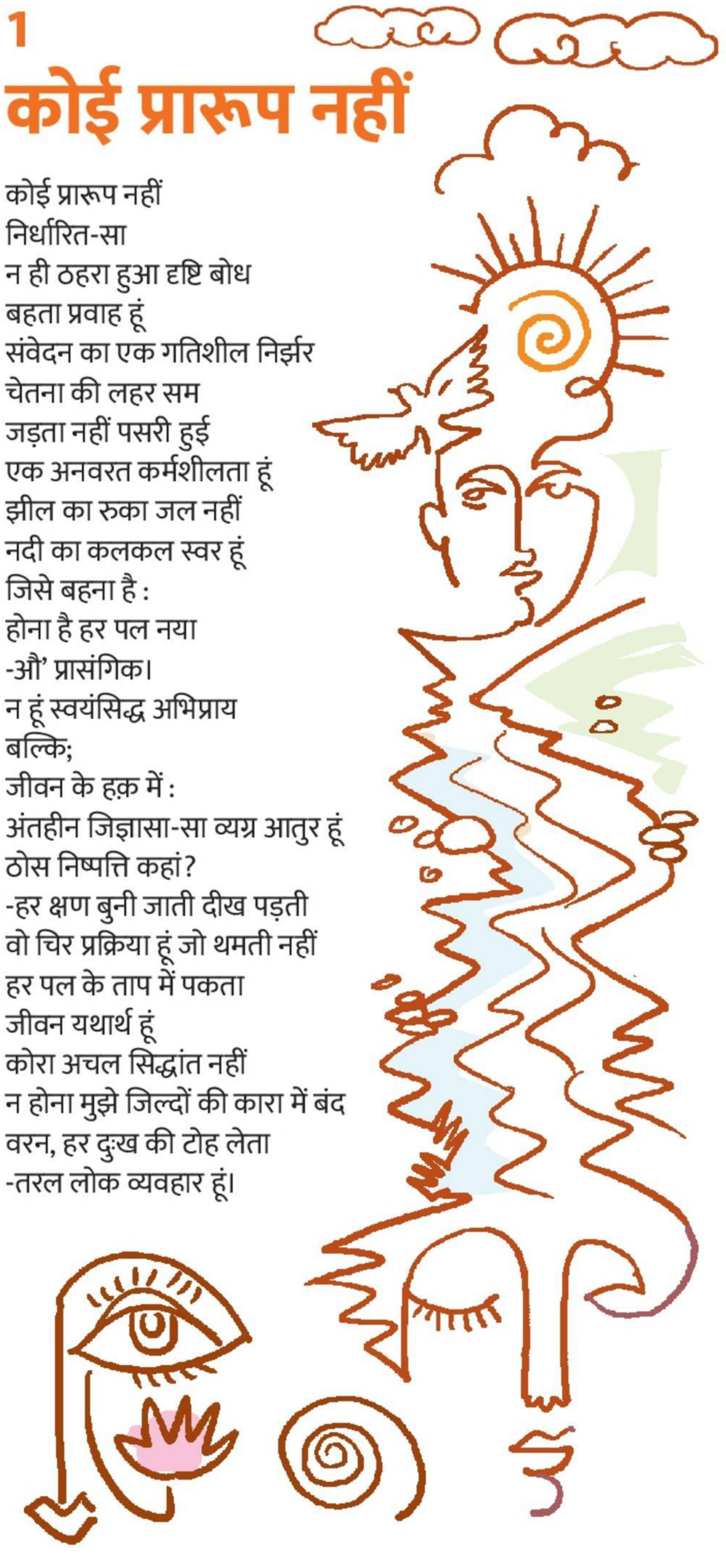

2

खोज लेना मुझे

अपने जाने के बाद खोज लेना मुझे
जंगल की ख़ामोशी में
वहीं मिलूंगा
लाखों गीतों की घुमड़ती स्वर लहरियों में
जो झकझोरती रहेंगी हवा संग मेरी आत्मा को
एक टहनी-सा हिलाती डुलाती स्मृति मेरा स्वत्व
इन्हीं रेतीले धोरों की अनबुझी प्यास में मिलूंगा
जल फुहार-सा
ठहरे दरिया की लहरों के फूटते संगीत में
रहूंगा अपने समय को गाता हुआ
इन्हीं मौसमी हवाओं में लाखों गीत लिए
झिलमिलाता हुआ मिलूंगा तुम्हें
इसी धूप में/ इसी सरज़मीं पर
प्रेम में पकता हुआ समय
-एक मुकम्मल अदृश्य
आत्मीय और सघन
दीप्त औ पावन।

3

शब्द में हूं विदेह

देह नहीं कोरा / हूं शब्द में विदेह-
आकाशगंगाओं के अनंत विस्तार में
फैला हुआ उड़ता विचार
और हूं निर्विचार दूसरे ही छोर
फूल नहीं डाली पर झूमता;
महज़ ख़ुशबू हूं दिगंत में फैली
उसी पल; ज्वलंत अहसास-सा तैरता रगों में
कि जिसे सीमारेखाओं में बांधना असाध्य है
और; इसीलिए कविता में
पिरोया जाकर उदित औ' साकार हूं
-और हूं सीमातीत : बंधनहीन

4

अपलक रहा बटोर

(रेल में सूर्योदय को देखकर)

इस ढलान पर
घाटी के संकरे घुमाव पर
यहीं मिलन का क्षण बिखरा
-पथ बीन रहा हूं
एक हो गई छायाओं ने
नभ के सब शिखरों को
जैसे- नव उजास से छुआ
दीप्ति की जगमग को
-ज्यों, काल पटल पर चीन्ह रहा हूं
यही पुरातन धन्य धाम पावन
स्मृति का बेजान खंडहर सम
मेरा तो तीर्थ यही होगा -और
होगा यही मुकाम
यहीं बुझेगी प्यास हृदय की
और मुक्ति भी आत्मा की
जब तब होगी तो-
इस अरण्य में ही तो होगी
जहां मिल रहा क्षितिज
वहीं पर- आच्छादित वृत्तांत समूचा
मेरे मन का यह अतुलित विराट
जो- इन्हीं झाड़ियों में लिपटा-सा
उसे शब्द की मंजूषा में
अपलक रहा बटोर।

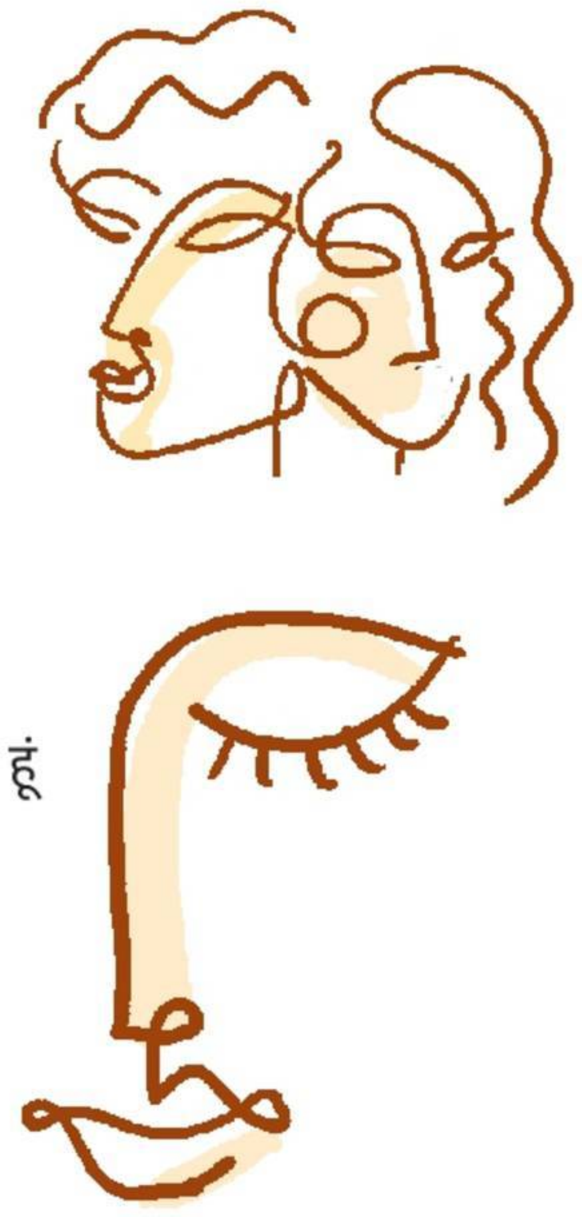

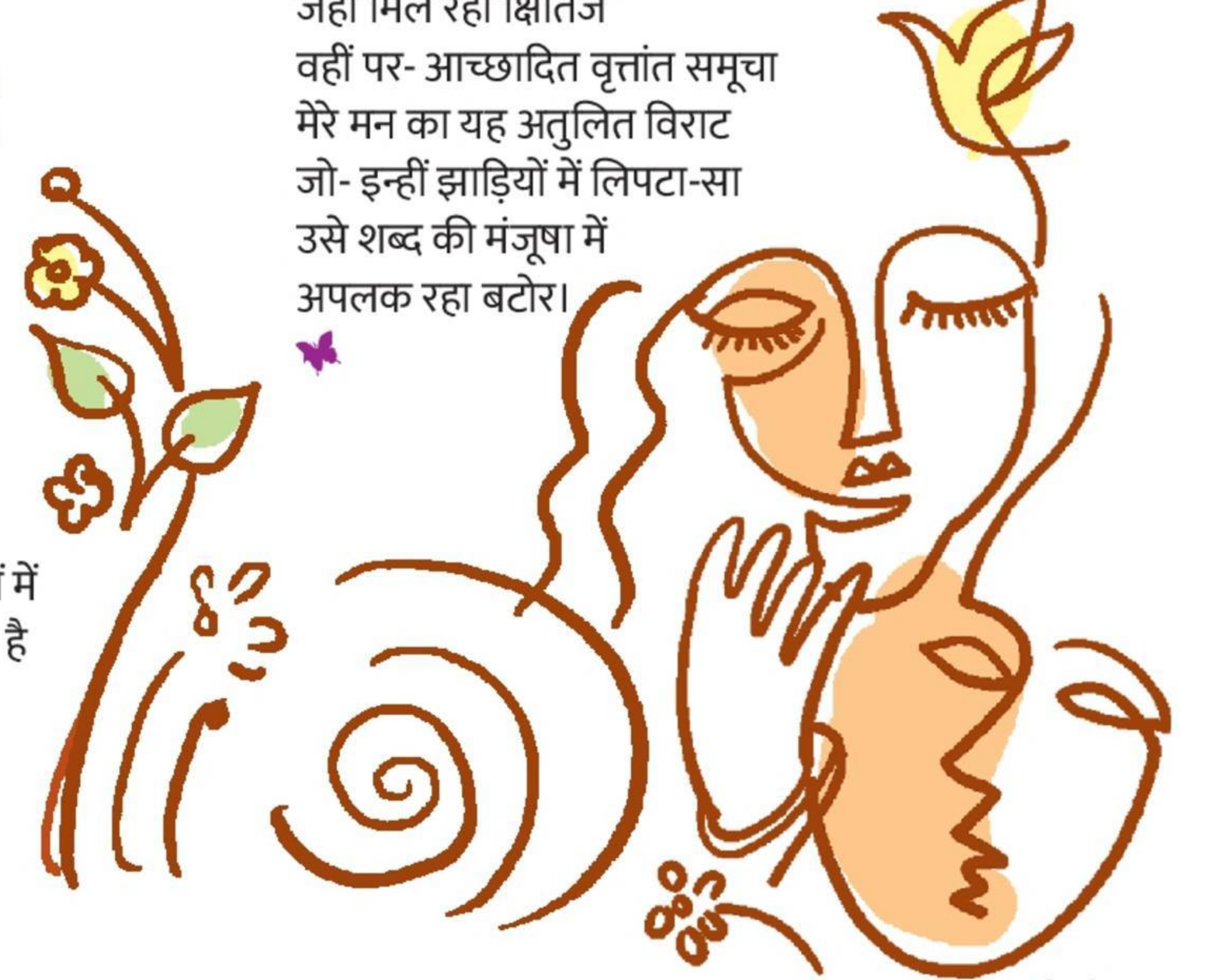

ये सब भी होते हैं क्वारेंटाइन और रखते हैं ज़रूरी दूरी

• संजीव शुक्ल

पेशे से पत्रकार साथ ही वन्य जीवन, पर्यावरण, फ़ोटोग्राफ़ी और पढ़ने-लिखने के शौकीन। लखनऊ से पत्रकारिता शुरू कर संपूर्ण उत्तर भारत में कार्य करने के बाद पुन: गृह नगर लखनऊ से ही क्रियाशील।

मान्यता है कि जानवर तो जानवर ही होते हैं।

वे अपनी ज़रूरतों और स्वार्थ-पूर्ति के अलावा कुछ नहीं जानते।

लेकिन हाल के अनुसंधानों ने इस मान्यता को ग़लत साबित किया है।

जानवर अपनी प्रजाति को बीमारी से बचाने के लिए त्याग की जिस सीमा तक जाते हैं...

हम मनुष्य उस बारे में सोच भी नहीं सकते।

ग़ैर-मानव प्रजातियों अर्थात पशु-पक्षियों को ये सहज ज्ञान होता है कि बीमारी के समय अपनी प्रजाति या झुंड से दूर रहना चाहिए (सोशल डिस्टेंसिंग), वरना इससे उनकी सम्पूर्ण प्रजाति का नाश हो सकता है।

मनुष्य ने समय-समय पर महामारियों के समय पर यह बोध पाया है और स्वयं को क्वारेंटाइन करने की ज़रूरत समझी है। हाल के दिनों में ये ज्ञान कोविड-19 महामारी के दौरान और विश्वव्यापी बना। लेकिन फिर भी मनुष्य यदा-कदा इसकी अवहेलना करने से नहीं चूकता। जबकि जानवर सामाजिक दूरी को लेकर ना केवल सचेत रहते हैं, बल्कि इसके लिए अलग-अलग तरीक़े भी अपनाते हैं।

चमगादड़ों की 1,400 प्रजातियों में से एक वैम्पायर बैट बीमारी के समय निष्क्रिय सामाजिक दूरी (पैसिव सोशल डिस्टेंसिंग) अपनाते हैं। ये प्रजाति स्तनधारी जीवों का ख़ून चूसती है। चूंकि ख़ून में बहुत ज़्यादा पोषक तत्व नहीं होते और वह आसानी से मिलता भी नहीं है अत: झुंड में रहने वाले ये चमगादड़ आपस में भोजन बांटते हैं जिसके लिए एक-दूसरे के मुंह से मुंह लगाना पड़ता है। ये अन्य जानवरों की तरह एक-दूसरे के शरीर को भी चाटते हैं (सोशल ग्रूमिंग)।

सोशल ग्रूमिंग से परहेज़

इस वर्ष मार्च में 'साइंस' नामक जर्नल में छपे एक शोध में बताया गया कि जब कोई चमगादड़ बीमार पड़ता है तो वह झुंड से अलग होकर स्वयं को तब तक के लिए अकेला कर लेता है जब तक कि वह पूरी तरह ठीक न हो जाए। इसे ही पैसिव सोशल डिस्टेंसिंग कहते हैं।

अप्रैल में 'प्लौस वन' जर्नल में छपे लेख में बताया गया कि मैनड्रिल बंदरों में सोशल ग्रूमिंग जहां आपसी संबंधों को मज़बूत बनाने के लिए ज़रूरी है, वहीं समाज में ओहदे और रुतबे को भी प्रदर्शित करती है। अत: ये उनके सामाजिक जीवन का बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है। लेकिन जब किसी बंदर के पाचन-तंत्र में परजीवियों का प्रकोप होता है और उसकी तबियत ख़राब हो जाती है तो वह ग्रूमिंग की अपनी आदत को स्वस्थ होने तक के लिए रोक देता है ताकि उसकी बीमारी दूसरों को न लगे। दूसरे बंदर भी उससे दूरी बना लेते हैं।

चतुर चींटियों की दुनिया

दुनिया में चींटियों की लगभग 20,000 प्रजातियां हैं। जिन प्रजातियों का अध्ययन किया गया है, उनके बारे में कहा गया है कि ये सक्रिय सामाजिक दूरी (एक्टिव सोशल डिस्टेंसिंग) का पालन करती हैं। जैसा कि सर्वज्ञात है, चींटियां झुंड में रहती हैं, ऐसे में यदि कोई चींटी संक्रामक बीमारी से पीड़ित हो जाए तो सारे झुंड का विनाश हो सकता है। ऐसे ख़तरे से बचने के लिए कई प्रजातियों ने क्रमिक विकास के ज़रिए समाज में सक्रिय सामाजिक दूरी को अपनाया है। यहां बीमार चींटी झुंड को ही त्याग कर अलग हो जाती है। इसका अर्थ स्वयं को मौत के मुंह में ढकेलना होता है क्योंकि चींटियां झुंड के सहयोग के बिना लाचार होती हैं। ये कहना ग़लत नहीं होगा कि चींटियां अपनी कॉलोनी के लिए अपना बलिदान देने से भी नहीं हिचकतीं।

झींगे : जोख़िम से परवाह नहीं

कुछ ग़ैर-मानव प्रजातियां ऐसी भी हैं, जो सामाजिक दूरी बनाने के लिए दूसरा तरीक़ा अपनाती हैं। कैरेबियन स्पाइनी लॉब्स्टर (झींगे की एक क़िस्म) के झुंड में यदि कोई बीमार हो जाए तो स्वस्थ सदस्य अपने छिपने की जगहों और झुंड को त्यागकर अलग हो जाते हैं ताकि स्वयं को बचा सकें। ये बात अलग है कि कई बार ये रणनीति भारी पड़ती है क्योंकि वे अन्य शिकारी जीवों के निशाने पर आ जाते हैं। लेकिन घातक वायरसों से बचने के लिए उन्हें ये जोख़िम कम ख़तरनाक लगता है।

मधुमक्खियों का अनुशासन

मधुमक्खियों की बात थोड़ी अलग है। उनके यहां ज़्यादा ही सचेत क़दम उठाए जाते हैं, क्योंकि समाज के सदस्यों और रानी मक्खी की सुरक्षा सर्वोपरि है जिसके लिए वे कुछ भी कर सकती हैं। जब भी किसी बीमार मक्खी का पता चलता है तो उसे बख़्शा नहीं जाता। अन्य मक्खियां उसे मार-मारकर छत्ते से बाहर धकेल देती हैं और वह वापस नहीं आ सकती।

चमगादड़ों को दोषी मानना ग़लत

कोविड-19 महामारी के बाद से हर शख़्स चमगादड़ों को बीमारियों के लिए दोषी मानने लगा है, जबकि वास्तविकता कुछ और ही है। 'एनल्स ऑफ़ दि न्यूयॉर्क एकेडमी ऑफ़ साइंस' में प्रकाशित एक ताज़ा लेख में सगोल स्कूल ऑफ़ न्यूरोसाइंस के प्रमुख प्रो. योस्सी योवेल का कहना है कि सामान्य हालात में चमगादड़ों से मनुष्यों में बीमारी फैलाने की आशंका लगभग नहीं के बराबर होती है। कारण, गुफाओं आदि में रहने वाले चमगादड़ सामाजिक दूरी के सिद्धांत के तहत स्वयं को झुंड से अलग कर अपने निवास स्थान तक ही सीमित रहते हैं और बाहर भी नहीं निकलते। ऐसे में वे मनुष्यों को संक्रमित कैसे कर सकते हैं? इन तथ्यों के मद्देनज़र उनके ज़रिए बीमारी मनुष्यों तक तभी पहुंच सकती है जब या तो मनुष्य उनके आवास में घुसें, या चमगादड़ों के सीधे सम्पर्क में आएं या उनका मांस खाएं जैसा कि कुछ देशों में होता है। ऐसे में बेचारे चमगादड़ों का क्या दोष?

सामाजिक दूरी बहुत ज़रूरी

अंत में यही कहा जा सकता है कि चाहे चींटियां हों, कैरेबियन स्पाइनी लॉब्स्टर या मनुष्य- बीमारी की हालत में सामाजिक दूरी के सिद्धांत का कोई विकल्प नहीं है। यदि स्वयं को, परिवार को, दोस्तों व रिश्तेदारों को बीमारी से बचाना है तो सामाजिक दूरी के सिद्धांत को मानना ही होगा।

सांची में बुद्ध

कम ही लोग जानते होंगे कि सांची में बुद्ध की प्रतिमाएं बनाए जाने से पूर्व उन्हें वहां केवल प्रतीकों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया था। ये प्रतीक बहुत रोचक हैं।

• श्रद्धा सिसौदिया

सांची का महास्तूप मौर्यों ने बनवाया था। शुंगों ने कालांतर में उसकी वेदिका बनवाई। सातवाहनों ने उसके अलंकृत तोरण बनवाए, जो आज भी उसकी कीर्ति का आधार है। और सबसे अंत में, गुप्त शासकों ने ध्यान-मुद्रा में बुद्ध की प्रतिमाएं सांची के परिसर में स्थापित करवाईं!

आश्चर्य की बात है कि इससे पहले तक सांची में तथागत बुद्ध की छवि कहीं न थी। उसकी मूल परियोजना में बुद्ध के मानुष स्वरूप की कोई कल्पना नहीं की गई थी।

सांची के जिन अलंकृत तोरणों की कीर्ति विश्वव्यापी है, उन पर उत्कीर्ण जातक-प्रसंगों और बुद्ध के जीवन की घटनाओं में भी बुद्ध की छवि कहीं नहीं है, केवल उनके प्रतीक हैं।

उदाहरण के तौर पर, सांची के तोरणों पर बुद्ध-जन्म के प्रसंग को एक पद्म की छवि से दर्शाया गया है, जिस पर बुद्ध की माता मायादेवी विराजित हैं। संबोधि की छवि को अश्वत्थ वृक्ष (बोधि वृक्ष) के नीचे स्थित एक वज्रासन से दर्शाया गया है। सारनाथ के मृगदाव में धर्मचक्रप्रवर्तन की छवि वज्रासन को एक स्तंभ पर स्थापित कर दर्शाई है। महापरिनिर्वाण का दृश्य एक स्तूप की छवि से दर्शाया गया है, किंतु कुशीनारा के शालद्वय अनुपस्थित हैं।

सांची में कहीं बुद्ध की छवि पदचिह्नों के रूप में प्रदर्शित है तो कहीं त्रि-रत्न के रूप में। कहीं मात्र विहार-स्थल की छवि है तो कहीं धर्मचक्र की। तोरणों पर उत्कीर्ण एक दृश्य में एक सुसज्जित अश्व है, लेकिन उस पर कोई सवार नहीं है, बस ऊपर एक छत्र टंगा है। यहां तक कि बोधिसत्वों को भी वृक्षों की छवि के माध्यम से ही प्रदर्शित किया गया है।

विश्वभु शालवृक्ष हैं, कृकुच्छंद शिरीष वृक्ष हैं, कनकमुनि औदुंबर हैं तो कश्यप न्यग्रोध वृक्ष।

गुप्त शासकों द्वारा सांची में बुद्ध विग्रह की अभिधा स्थापित करने से पूर्व यह परिसर एक ऐसी लीलाभूमि की तरह था, जहां शास्ता बुद्ध का स्वरूप कहीं नहीं है और इसके बावजूद हर छवि में उनकी अभिव्यंजना है!

कालांतर में बुद्ध के विग्रहों को खंडित करने के बावजूद सांची से उनकी छवि नहीं ही मिटाई जा सकी थी!

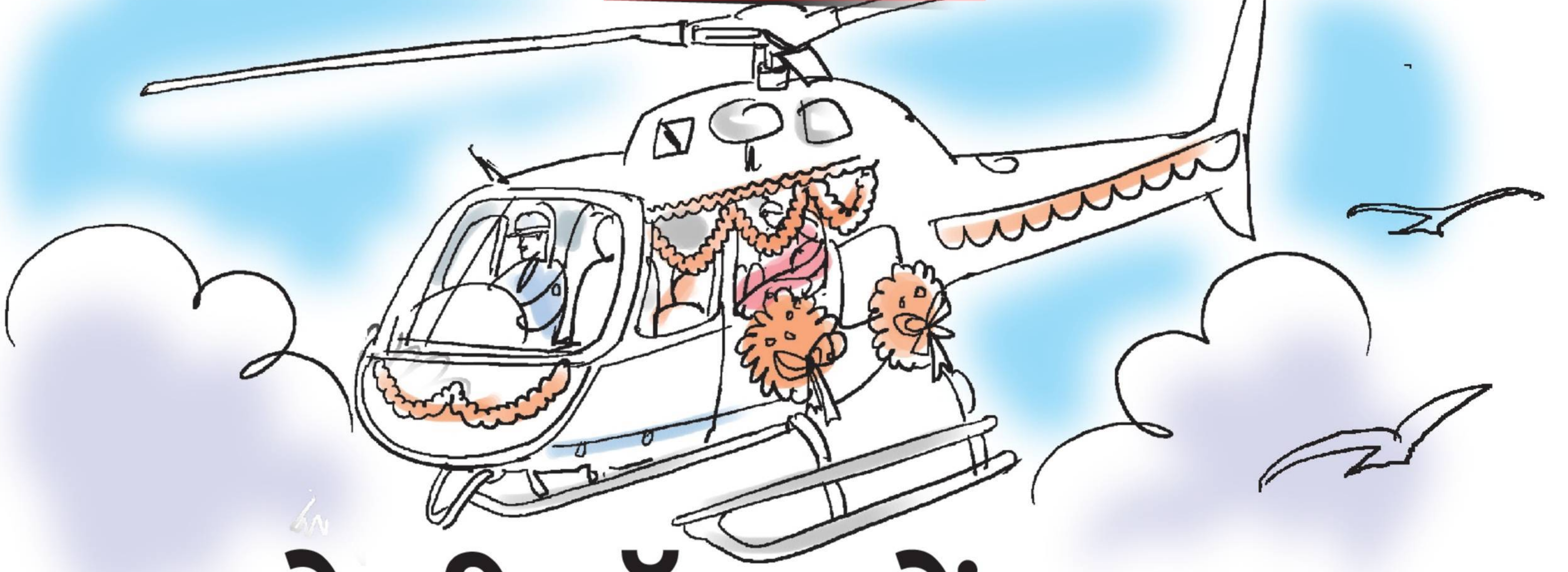

हेलीकॉप्टर में बरात

•मलय जैन

पहले बैलगाड़ियों, फिर ट्रैक्टर-ट्रालियों और इसके बाद जीप-कारों में जाती बरातों के बाद आज वह दिन आया है जबकि बरात हेलीकॉप्टर से आकर इतिहास बना रही है।

चमचमाती कारों के बेड़े में दुल्हन को ले बरात गांव के बाहर खेत पर आ पहुंची है। भारी चिल्लपों के साथ खेत के चारों ओर गांव के लोगों की भीड़ है। कच्ची-अंडी बच्चों से लेकर बूढ़े तक इस भीड़ का हिस्सा हैं। खेत को ख़ूब ठोक-पीटकर पक्का किया गया है। गचागच गोबर से लीपकर हेलीपैड मान लिए गए इस स्थान पर एक हेलीकॉप्टर शोभायमान है। बरात इसी हेलीकॉप्टर से जाएगी। दूल्हा, नई-नवेली दुल्हन, दूल्हे के मां-बाप सबसे आगे खड़े हैं। बरात के रूप में यही चार जने उड़ने को तैयार हैं।

ब्याह के पूर्व की टर्म-एंड-कंडीशन प्रथा के तहत दूल्हे की ज़िद पर बीएमडब्ल्यू नामक लंबी कार दी जा चुकी है। दूल्हे का बाप प्रगतिवादी है। गांव और देश की बदलती तस्वीर देखना चाहता है। ऊंची सोच के साथ वह नाक को भी पहाड़-सी ऊंचाई देना चाहता है। उसकी ज़िद है कि बरातियों का स्वागत गुटके से हो न हो, विदाई वायु मार्ग से ही होना चाहिए। नई-नवेली बहू का हल्ला इतना तो हो कि तीनों लोकों तक ख़बर जाए। लड़के वालों का क्या है, इससे लड़की वालों का ही मान बढ़ेगा सो लड़की का बाप भारी मन से उतना ही भारी भाड़ा चुकाकर हेलीकॉप्टर ले आया है।

दूल्हे का सारा परिवार कुछ न कुछ काटता है। बाप का एक पैर राजनीति में तो दूसरा ठेकों में है। वह लीज़ पर पहाड़ काटता है तो लगे हाथ मज़दूरों का पेट भी। दूल्हे की मां चांदी काटती है और दूल्हा समय काटता है। दूल्हे की मां यों दकियानूस है। बेटे की बरात में मां का जाना ठीक नहीं मानती। लेकिन वह आधुनिक सिर्फ़ इस ख़्याल से हो गई है कि समधी के ख़र्च पर चीलगाड़ी में उड़ेगी। यही कारण है कि वह न केवल बरात में आई है वरन ख़ूब नाची भी है।

दूल्हा अपने मां-बाप और दुल्हन समेत हेलीकॉप्टर में सवार हो चुका है। उड़नखटोले में बैठते दूल्हे और उसके मां-बाप के दिल बल्लियों उछल रहे हैं मगर हेलीकॉप्टर के ऊपर उठते ही कलेजा मुंह को आने लगा है। मां-बेटा ने रेवा मैया का जाप करते एक-दूसरे को थाम लिया है।

हवा में आकर वे संयत होते हैं। आनंद से बाहर झांकते हैं। चींटी-से दिखते लोग और खिलौनों-सी गाड़ियां। वाह... मुंह से निकलता है।

दूल्हा पायलट की ओर देख लड़ियाता है– अंकल जी, हवा में एकाध कलाबाज़ी खिलवाओ न।

पायलट अंकल मुस्कराता है। आए दिन बरातें लाता ले जाता है। उसे ऐसी मूर्खताएं सुनने की आदत हो गई है मगर दूल्हे का बाप चीख़ता है– पागल है? पिछली बार तूने जीप को कैसी कलाबाज़ी खिलाई थी। पलटा ही दिया था।

दूल्हा खीसें निपोर देता है। दुल्हन दुबककर शांत बैठी है। गांव पास आ रहा है। दूल्हे का बाप चाहता है, गांव को ऊपर से देखे। वह हेलीकॉप्टर मुड़वाता है। बचपन का मेरा गांव कितना बदल रहा है। उसका अपना दिमाग़ कलाबाज़ी खा जाता है। पहाड़ एक-चौथाई तो काट डाला, कुछ साल में साफ़ ही कर देगा। हगिया-तालाब पूर कर वहां बढ़िया घर बना दिए। अब आगे नदी पर नज़र डालेगा। रेत का कारोबार और हाथ आ जावे तो रेवा मैया की पहाड़ जितनी ऊंची प्रतिमा बनवाए। दूल्हे की मैया के दिमाग़ में कुछ और ही चल रहा है। वह चाहती है कि काश, यह चीलगाड़ी अपनी हो जाए।

– ड्राइवर साहब, यह चीलगाड़ी कित्ते की आती होगी? वह जानना चाहती है।

– बहुत महंगी, सुनकर वह पति की ओर घूमती है, क्यों जी, ये पहाड़ पूरा कट जाए तो हम नहीं ले सकते ऐसी चीलगाड़ी?

दूल्हे का बाप विचार में पड़ता है। जीप, ट्रैक्टर और डम्परों के अलावा इतनी ऊंचाई तक सोच गई ही नहीं कभी। वह अपनी टुच्ची सोच पर लज्जित होता है। गो कि दूल्हे की माता की सोच बहुत ऊंची है। वह जानती है पहाड़ कटने में बरसों लगेंगे। इतनी प्रतीक्षा कौन करे। उसके पास फ़ौरी उपाय है। वह लाड़ले को उलाहना देती है– लल्ला तुमने अपनी ज़िद्द में फालतू में इत्ती लंबी कार मांग ली। गांव के कीचड़-खचा में साइकिल तो चल नहीं पाती, कार कहां से चलेगी?

लल्ला चिढ़ते हैं– यार मम्मी, तो क्या साइकल मांगते हम?

– साइकल नहीं, चीलगाड़ी मांगनी थी, वह फुसफुसाकर कहना चाहती है लेकिन हेलीकॉप्टर की गड़गड़ में भी आवाज़ बहू के कानों तक चली ही जाती है।

– तुम समधी जी को पुटिया लो न, पहली विदा में एक चीलगाड़ी दे दें बस, फिर कुछ नहीं चाहिए।

पति के कान में ज्ञान फूंक वह नीचे झांकती है, जहां बदलते भारत की तस्वीर देखने ढेरों रिश्तेदार और गांव वाले जमा हैं। भीड़ आसमान में चक्कर काटती इस चीलगाड़ी को देख तालियां पीट रही है। पहले बैलगाड़ियों, फिर ट्रैक्टर-ट्रालियों और इसके बाद जीप-कारों में जाती बरातों के बाद आज वह दिन आया है जबकि बरात हेलीकॉप्टर से आकर इतिहास बना रही है। उत्साही युवा मोबाइलों से वीडियो बना रहे हैं तो आसपास के मीडिया वाले भी कैमरे आसमान में उठाए चक्कर काटते इस हेलीकॉप्टर की लाइव रिपोर्टिंग कर रहे हैं। गांव में विकास का नया आयाम उतर रहा है।

दूल्हा, उसका बाप और मां छाती फुलाए देख रहे हैं इस अद्‌भुत दृश्य को। यों नज़रें नीची किए दुल्हन भी देख रही है चीलगाड़ी में बैठे गिद्धों और बदलते भारत की तस्वीर को। सोच रही है, बैलगाड़ी से चीलगाड़ी तक के सफ़र में बहुत कुछ बदल गया है लेकिन गिद्ध आज भी वही हैं।

टीवी शो 'मूवर्स एंड शेकर्स' के एग्ज़ीक्यूटिव प्रोड्यूसर अभिज्ञान झा ने भारत के पहले वेब कॉमेडी शो 'जय हिंद!' का निर्माण किया...

...वहीं पत्नी मृणाल के साथ बेस्टसेलर नॉवेल 'नवम्बर रेन' भी रचा।

बिना तलाशे मिल जाती है ख़ुशी...

हंसते-हंसते गम्भीर मुद्दे उठाना चाहिए

मैं **बहुत ख़ुशी के साथ कहता हूं कि** जय हिंद ने इंटरनेट पर हंसी और व्यंग्य का स्तर ऊंचा किया है। एक तरह से हमने वेब शोज़, स्टैंडअप कॉमेडी और ऑनलाइन कंटेंट के लिए ज़मीन तैयार की।

हमारा सिर्फ़ एक ही उद्देश्य था कि रोज़मर्रा की जिन दिक़्क़तों, सियासतदानों और परिस्थितियों से आप दो-चार होते हैं, उनका मज़ाक बना सकें। ▪

कई बार **ज़्यादा प्रयास किए बिना हंसी-ख़ुशी मिल जाती है। इसे सौभाग्य ही कहेंगे कि मुझे कभी संघर्ष नहीं करना पड़ा।** मुम्बई में कॉलेज से निकलने के बाद मृणाल (पहले दोस्त, अब पत्नी) के साथ जब मैंने विज्ञापनों के लिए लिखने का काम शुरू किया

...

हमें अपना पहला काम विज़िटिंग कार्ड के सहारे मिला था। अलबत्ता उन दिनों एक स्ट्रगलर के पास विज़िटिंग कार्ड होना अचरज की बात थी। मेरे पास न दफ़्तर था, न मीटिंग के लिए कोई ख़ास जगह। इसलिए अपना गिटार बेचकर कार्ड छपवा लिए थे। मन में यही विचार था कि 600 कार्ड्स हैं। कम से कम 600 लोगों से मुलाक़ात होगी और उनमें से किसी ने काम दे दिया तो दफ़्तर भी हो जाएगा।

दूसरा बड़ा काम किताब नवम्बर रेन की वजह से मिला। दरअसल, मैंने और मृणाल ने नॉवल लिखा और 1000 कॉपी ख़ुद छपवाईं। जब भी काम की तलाश में किसी निर्देशक के पास जाते तो उसे किताब ज़रूर गिफ़्ट करते। महेश भट्ट साहब मेरे इस आइडिया से वो काफ़ी प्रभावित हुए। उन्होंने कहा कि ये अच्छा है। तुमने तो किताब को ही अपना विज़िटिंग कार्ड बना लिया। इसी तरह अधिकारी ब्रदर्स के गौतम अधिकारी ने हमें एकता कपूर के पास भेजा था जो कमांडर धारावाहिक बना रही थीं। उनके लिए लिखना शुरू किया। आनंद महेंद्रू से भी मुलाकात हुई। उन्होंने रजनी के दूसरे पार्ट के लिए लिखने को कहा और देखिए, बग़ैर ज़्यादा कोशिश के होंठों पे हंसी आ गई।

जय हिंद से मज़बूत हुआ व्यंग्य का स्तर

मैंने 2013 में जय हिंद में नरेंद्र मोदी पर व्यंग्य किया गया था, लेकिन उनकी तरफ़ से कोई कड़ी प्रतिक्रिया नहीं मिली। इससे मालूम हुआ कि हंसी अब तक मरी नहीं है। जय हिंद के छह साल में 376 वेबिसोड और फिर एपिसोड प्रसारित हुए और इस तरह लोगों के बीच हंसी की समझ बढ़ी। सच ये है कि इस वेब शो ने व्यंग्य-हंसी के प्रति दर्शकों में संवेदना बढ़ाई। वरुण ग्रोवर, अदिति, रविंदर चौधरी, गुरुशरण खम्बा, सौरभ, साहिल वैद, एलेक्स वग़ैरह हमारे शो में रहे। जिसने जो चाहा, वो लिखा। अगर लिखना तर्क पर खरा है तो मैं उसे सेंसर नहीं करता।

ये हो सकता है मैं निजी तौर पर किसी का प्रशंसक होऊं, लेकिन एक अच्छे स्क्रिप्ट एडिटर की ज़िम्मेदारी है कि वो लेखकों पर अपना एजेंडा ना थोपे। एक बात साफ़ है- जब आप अपने से बड़े लोगों पर हंस भी ना सकें, तब तक उनके प्रभामंडल से दबे रहते हैं और उनकी बुरी चीज़ों के ख़िलाफ़ आवाज़ भी बुलंद नहीं कर पाते। हंसते-हंसते गम्भीर मुद्दे उठाना और अपने रोष का इज़हार करना ही एक व्यंग्यकार का उद्देश्य होना चाहिए।

सुषमा जी बोलीं- नहीं बैन कर पाई तुम्हारा शो

27 साल की उम्र में मैं मूवर्स एंड शेकर्स से जुड़ा। मूवर्स ने भारतीय राजनीति पर साफ़-सुथरे कटाक्ष किए। एक बार तत्कालीन केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री सुषमा स्वराज हमारे कार्यक्रम में आईं। एंकर शेखर सुमन जी ने सवाल किया- हम लोग राजनीतिक लोगों और सियासत पर इतने मज़ाक करते हैं, कभी आपका मन नहीं करता कि शो को बैन कर दें?

सुषमा जी ने हंसकर कहा- मैंने कई बार सोचा कि तुम्हारा मुंह बंद कर दूं... क्योंकि तुमने मेरे बारे में ये तक कहा कि- बच्चो, सो जाओ, नहीं तो सुषमा आ जाएगी (तब सुषमा जी दिल्ली की मुख्यमंत्री थीं और रात में दौरे पर निकल जाती थीं।)

अब प्रॉब्लम क्या है कि हर रात अटल जी (तत्कालीन प्रधानमंत्री) तुम्हारा शो देखते हैं और ज़ोर-ज़ोर से हंसते हैं, इसलिए मुझे चुप रह जाना पड़ता है। वैसे, उनके इस जवाब से पता चल गया कि राजनेता ख़ुद पर किए गए मज़ाक को सहन करने की क्षमता रखते हैं और ख़ुद पर हंसना जानते हैं।

गालियों की डिक्शनरी में शब्दों के मायने

जयहिंद के 31वें एपिसोड को हमने गालियों पर केंद्रित किया था। उसमें सुमित बाक़ायदा गालियों की डिक्शनरी लेकर आते हैं और बताते हैं कि गालियां कहां और किस तरह ज़रूरी होती हैं। मसलन- आप शो रूम से नई कार ख़रीदकर निकले हैं और बाहर आते ही पहिया खड्ढे में घुस जाता है। सोचिए, तब मुंह से गाली निकलेगी या नहीं। लेकिन जैसे ही पता चलेगा कि कंस्ट्रक्शन कराने वाला नेता कौन है तो उसके प्रति अलग ढंग से आक्रोश अभिव्यक्त होगा। अपशब्द भी अभिव्यक्ति का एक ज़रिया हैं, लेकिन तब उन्हें सही नहीं ठहराया जा सकता, जब वे किसी कुंठा के चलते उपयोग में लाए जा रहे हैं। हां, खीझ में, आक्रोश में कई बार गाली निकलती है, लेकिन उसके पीछे कोई ना कोई ठोस कारण होता है। हम ग़लत शब्दों की हिमायत नहीं करते, लैंगिक आधार पर किसी को निशाना बनाने के विरुद्ध हैं, लेकिन हमें पता ज़रूर होना चाहिए कि सच्चाई क्या है।

...

(स्व. चण्डीदत्त शुक्ल ने अहा! ज़िंदगी के लिए जीवन का हास्य शृंखला के तहत साक्षात्कारों की सीरीज़ की थी।

इस कड़ी में कुछ शख़्सियतों को पिछले अंको में आप पढ़ चुके हैं। **इस प्रस्तुति से इस शृंखला को विराम दिया जा रहा है।)**

नऊवारी और पैठणी का महाराष्ट्र

सांस्कृतिक रूप से सजग महाराष्ट्र में विभिन्न पर्वों और उत्सवों की धूम अलग ही रहती है।

इस दौरान महाराष्ट्रीयन महिलाएं पारंपरिक परिधान पहनती हैं।

तो चलिए इस बार देशभूषा में जानते हैं देश के तीसरे सबसे बड़े राज्य महाराष्ट्र की परंपरागत वेशभूषा के बारे में।

• ज्योत्स्ना पंत श्रीवास्तव

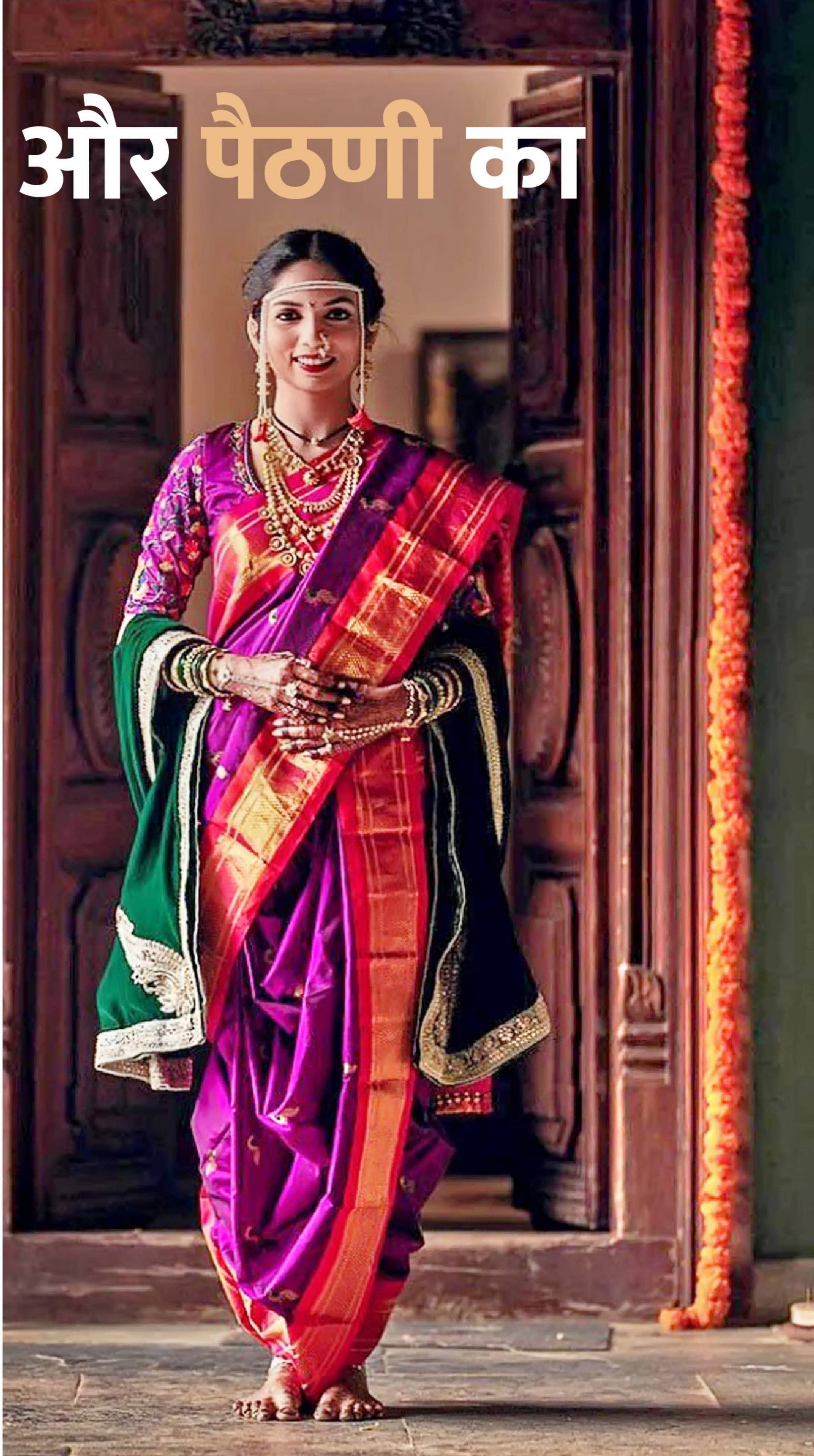

इतिहास के पन्ने रानी ताराबाई, रानी लक्ष्मीबाई जैसी पराक्रमी वीरांगनाओं की शौर्य गाथाओं से भरे हुए हैं। इनमें एक समानता है, इनकी वेशभूषा यानी नऊवारी। नऊ यानी नौ और वारी अर्थात गज़। इसी वेशभूषा ने इन्हें युद्ध के मैदान में फ्री मूवमेंट की छूट दी। यह साड़ी महाराष्ट्र की शान है और इसे शक्ति, साहस और समानता के प्रतीक रूप में देखा जाता है।

इसे अखंड वस्त्र भी कहते हैं, क्योंकि इसके साथ किसी अन्य परिधान की ज़रूरत नहीं रहती। पुरातन काल में अंतरिया (ऊपर पहनने के कपड़े) और उत्तरिया (नीचे बांधने वाले कपड़े) को मिलाकर इसे बनाया गया। इसके पल्लू को पादार कहते हैं। समय के साथ-साथ नऊवारी साड़ी को पहनने का तरीक़ा भी बदला। महाराष्ट्र के अलग-अलग क्षेत्रों में इसे बांधने के तरीक़े में भी कुछ परिवर्तन दिखता है। नऊवारी को काष्टा (धोती की तरह बंधी) साड़ी, सकाच्चा और लुगादी के नाम से भी जाना जाता है।

देशभूषा... नऊवारी... जारी...

ऐसे जन्मी नऊवारी

महाराष्ट्र की पहचान बन चुकी नऊवारी का इतिहास सदियों पुराना है। शुरुआती दौर में यह साड़ी कच्छम अथवा धोती की तरह बांधी जाती थी, जिसे पुरुष और महिलाओं द्वारा पहना जाता था। राजा-महाराजाओं के ज़माने में युद्ध के मैदान में जाना हो या शस्त्र कला का ज्ञान अर्जित करना हो, महिलाओं के लिए आरामदायक कपड़े की आवश्यकता महसूस हुई। पुरुषों की धोती से प्रेरणा लेते हुए जन्मी नऊवारी साड़ी।

इसकी ख़ासियत थी, इसे पहनकर आसानी से अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करना और बिना किसी बाधा के अपना युद्ध कौशल दिखा पाना। साड़ी का यह इकलौता रूप है, जिसे मिलिट्री यूनिफ़ॉर्म माना जाता है। हिंदी फ़िल्मों में भी नऊवारी साड़ी देखने को मिली और हमारे दिमाग में उनकी छवि अंकित हो गई।

फ़ैब्रिक और मोटिफ़ भी हैं विशेष

इतिहास की बात करें तो मुख्य रूप से नऊवारी साड़ी कॉटन से बनती थी। समय के साथ इसके फ़ैब्रिक में भी प्रयोग देखने को मिले। कॉटन के साथ ही विभिन्न प्रकार के सिल्क से इसे तैयार किया जाने लगा। सूती नऊवारी रोज़मर्रा के कामों के लिए उपयुक्त मानी जाती है, जबकि पूजा-पाठ व अन्य विशेष अवसरों पर सिल्क से बनी नऊवारी पहनने का चलन है। इसमें छोटे बूटे और सुनहरी ज़री की बॉर्डर विशेष रहती है।

पहनने के अलग हैं तरीक़े

नऊवारी बांधने के पांच सबसे लोकप्रिय तरीक़े हैं-

ब्राह्मणी स्टाइल, पारंपरिक मराठी साड़ी, पेशवाई मराठी साड़ी, कोली एवं किसान महिलाओं की साड़ी और कंटेम्प्ररी मराठी साड़ी। मूल स्टाइल है काष्टा, जिसमें साड़ी के बॉर्डर को पीछे की तरफ़ खोंसा जाता है। काष्टा साड़ी मूल रूप से कॉटन से बनती है ताकि रोज़मर्रा के काम करते हुए इसे आसानी से पहना जा सके। त्योहारों या अन्य विशेष अवसरों पर सिल्क से बनी साड़ी पहनी जाती है। मराठा शासन के दौरान यह तरीक़ा ख़ूब प्रचलित था। महिलाओं को घुड़सवारी करने के साथ ही जंग भी लड़नी होती थी। पेशवाओं के शासन में महिलाओं ने जो साड़ी बांधी, उसे नाम मिला पेशवाई।

चलिए जानते हैं इस अनूठी साड़ी को बांधने के अलग-अलग तरीक़ों के बारे में।

1. ब्राह्मणी नऊवारी साड़ी

महाराष्ट्रीय दुल्हनों में साड़ी का यह स्टाइल इन दिनों ख़ूब लोकप्रिय है। इसमें बेसिक गांठ लगाने के बाद बाईं तरफ़ के खुले हिस्से को ऊपर मोड़ते हुए टक करते हैं, जिससे डबल बॉर्डर लुक दिखता है। अब प्लीट्स बनाते हुए दो हिस्सों में बांटकर बाईं प्लीट्स को काष्टा बनाते हुए पीछे टक करते हैं। दाईं ओर की प्लीट्स आगे ही सेट करके टक की जाती है।

नऊवारी में दौड़ का विश्व रिकॉर्ड

नऊवारी पहनकर सबसे तेज़ दौड़ने का विश्व रिकॉर्ड है मुंबई की क्रांति साल्वी के नाम पर। उन्होंने जर्मनी के बर्लिन मैराथन में दौड़ लगाई और 'फ़ास्टेस्ट रन इन अ साड़ी' का विश्व रिकॉर्ड गिनीज बुक में दर्ज कराया। उनसे पहले 61 साल की लता कारे ने बारामती मैराथन में तीन किमी की दौड़ नऊवारी साड़ी पहनकर लगाई और जीतीं। उनसे कई महिलाओं को प्रेरणा मिली।

2. पारंपरिक नऊवारी

नऊवारी का सबसे प्रचलित तरीक़ा है, जिसे राजशाही, मराठा एवं पारंपरिक नऊवारी भी कहते हैं। यह साड़ी एक गांठ पर टिकी होती है। साड़ी के हिस्से को लेकर दाहिनी तरफ़ गांठ लगाते हैं और फिर पल्लू की लंबाई नापते हुए उसे सेट करते हैं। चूंकि साड़ी नौ गज़ की है तो इसकी प्लीट्स चौड़ी बनाई जाती है। सामने की दो प्लीट्स से बाक़ी को कवर करते हैं और साड़ी बॉर्डर को बाहर निकालते हुए केल यानी वरवंटा (कमर पर प्लीट्स से बनाया बेल्ट) बनाते हैं। सारी प्लीट्स को दो भागों में बांटकर बाईं तरफ़ एक प्लीट ज़्यादा रखते हैं। प्लीट्स पीछे ले जाते हुए बॉर्डर सीधा करके अंदर टक करते हैं। दोनों बॉर्डर जुड़े होने चाहिए। यही लुक काष्टा कहलाता है। लावणी डांसर भी अमूमन इसी स्टाइल की साड़ी पहनती हैं।

3. पेशवाई स्टाइल

पेशवाओं के शासनकाल से नऊवारी का यह तरीक़ा चलन में आया। इसमें बेसिक प्लीट्स पहले की तरह डालते हैं। उसके बाद बाईंी प्लीट्स पीछे टक करने के बाद दाईं ओर की प्लीट्स को ज़िग-ज़ैग स्टाइल में आगे की तरफ़ सेट करते हैं।

4. कोली एवं किसान महिलाओं की नऊवारी

इन दोनों तरीक़ों की नऊवारी को घुटने के ऊपर तक ही बांधा जाता है ताकि काम करने में आसानी हो। किसान महिलाएं साधारण पल्लू रखती हैं, जबकि कोली महिलाएं इसे दो भाग में पहनती हैं। एक भाग नीचे की धोती के लिए और दूसरा दुपट्टे की तरह पहना जाता है।

5. कंटेम्प्ररी स्टाइल

इसमें धोती पैटर्न की नऊवारी प्रमुख है। इन दिनों रेडीमेड नऊवारी मिलती है, जो धोती पैटर्न के साथ ही कुछ अलग तरीक़ों से बांधी जाती है। बॉलीवुड की कई अभिनेत्रियों ने इस तरह की साड़ी पहनी है।

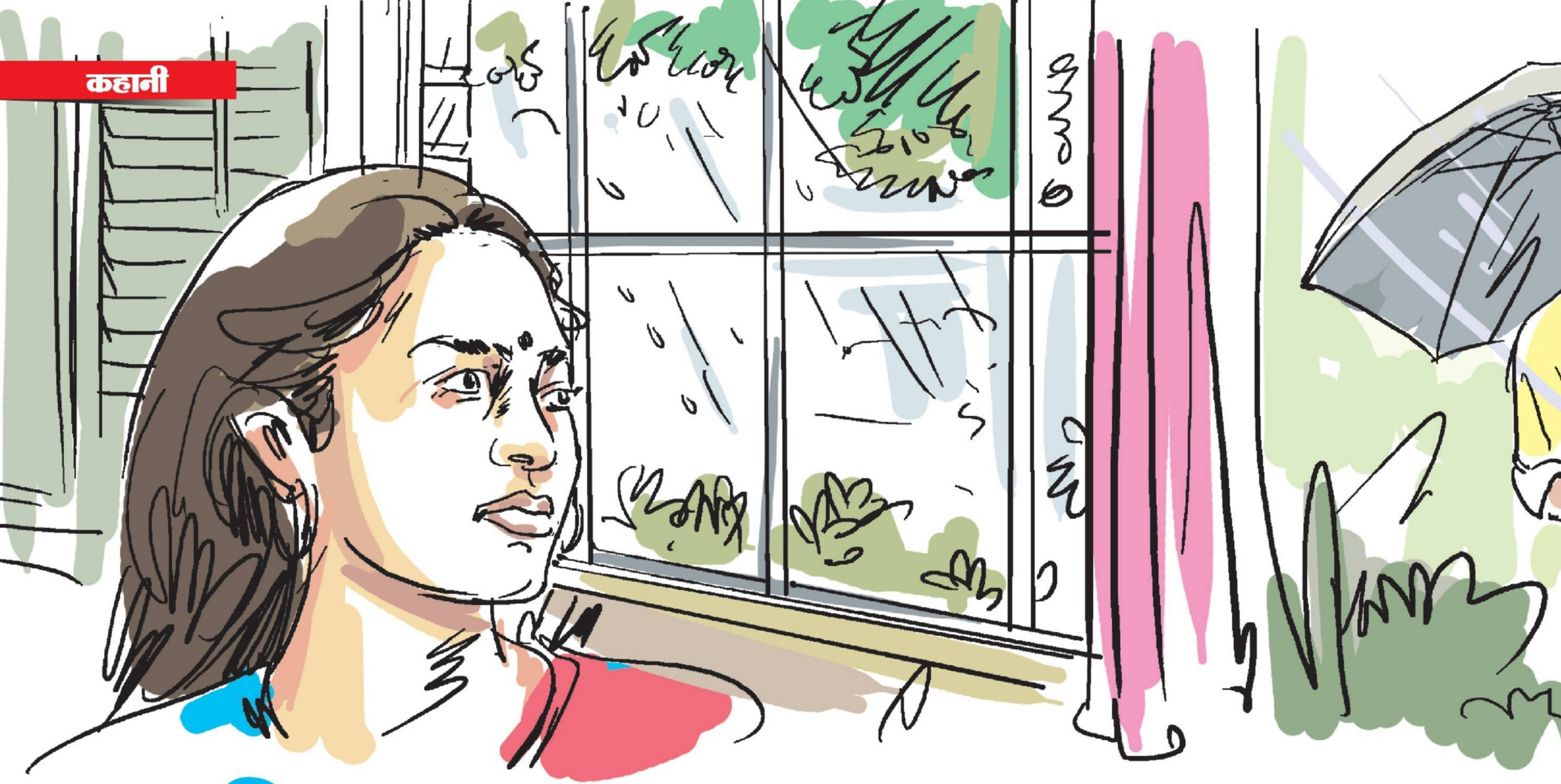

बारिश

• पवन चौहान

फ़ीचर, कविता, कहानी, बाल कहानी, आदि विधाओं में रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित। कुछ कविताओं का भारतीय भाषाओं के साथ नेपाली में अनुवाद। कविता, कहानी और बाल कहानी संग्रह प्रकाशित। स्कूली और महाविद्यालयीन पाठ्यक्रमों में रचनाएं शामिल।

...बारिश बुलाती है। फिर से बच्चा बन जाने का आमंत्रण देती है।

लेकिन एक उम्र के बाद झिझक आड़े आ जाती है। कुछ डर भी हावी हो जाते हैं। बरसात का आनंद सिर्फ़ बचपन की यादों में रह जाता है।

फिर जब वही बचपन बच्चों के रूप में अठखेलियां करता है तो बूंदों के साथ भावनाएं भी बरसने लगती हैं और सारे बांध तोड़कर बहुत कुछ बह निकलता है!

आज **ऐसी झमाझम बारिश हो रही थी कि** उसे देखकर दोनों बच्चों का मन भीगने को होने लगा था। क्या मोटी-मोटी बूंदें गिर रही थीं धरती पर, स्लेट वाली छत पर, आंगन पर, आंगन के सामने वाले छोटे-से खेत पर, बड़े हो रहे मकई के पौधों पर, फलों से लदे पेड़ों पर... हर जगह बस इनका ही क़ब्जा था। पानी इतना ज़्यादा बरस रहा था कि यह सबके मन में एक अलग ही उथल-पुथल मचा रहा था। बच्चों के लिए यह एक रोमांच लेकर आया था। इस घनी बारिश में, आंगन के साथ लगते पड़ोसियों के घर भी स्पष्ट नज़र नहीं आ रहे थे। हर जगह धुंध का गझिन परदा गिर आया था और बच्चे इसमें तसल्ली से भीगना चाह रहे थे। लेकिन देखो तो सही! राजेश बार-बार अपने निर्देश थोपे जा रहा था- 'बारिश में भीगोगे तो बीमार हो जाओगे। यहीं कमरे के अंदर रुके रहो और बारिश का आनंद उठाओ।' पर यह कैसे संभव था? बारिश तो बाहर थी और अंदर सिर्फ़ सूखा।

बरसात आज जिस गति और सघनता से बरस रही थी वह सबको खुला आमंत्रण दे रही थी। लेकिन कब से जारी उपदेश-वाणी को सुन-सुनकर दोनों बच्चों के चेहरों पर उदासी बार-बार लौट आती थी। दूसरी ओर, उनके चाचू के दोनों बच्चे और कुछ समय पहले बसे नए पड़ोसियों का बेटा इस बारिश का ख़ूब मज़ा ले रहे थे। वहां से आने वाली आवाज़ें उनका मन तरसा रही थीं। अंतरिक्ष से रहा ही नहीं जा रहा था। वह जैसे ही क़दम दरवाज़े से बाहर निकालने लगता, पापा उसे पीछे खींच लेते। यह देख कुसुम भी मन मसोसकर कमरे के अंदर से ही इन मस्ती में गिरती बूंदों का दीदार कर ही, जी बहलाने लगती।

वैसे सड़क के साथ वाली पक्की कूल्ह में कुछ दिनों से हो रही हल्की-हल्की बारिश के कारण थोड़ा-बहुत पानी आ रहा था जहां सब बच्चे अपनी काग़ज़ की कश्तियों से पूरा आनंद ले रहे थे। परंतु दोनों बच्चों को तो इससे ज़्यादा की चाह थी जो आज पूरी हो सकती थी। उन्होंने पापा को राज़ी भी कर लिया था। लेकिन आज जब मौक़ा आया तो राजेश न जाने क्यों मुकरने लगा, उन्हें यह बात ज़रा-सी भी समझ नहीं आ रही थी।

ऋतु खिड़की के पास चुपचाप बैठी थी। वह इस मामले में अभी अपना कोई भी पक्ष रखने के मूड में नहीं थी। वह इस बारिश को पूरे ग़ुस्से के साथ कई भावों को चेहरे पर लिए एकटक निहार रही थी। कमरे में होते हुए भी वह कमरे में नहीं थी। उसके भीतर ही भीतर एक खलबली मची हुई थी। वह अब इस बारिश में जाने से बहुत घबराती थी। परंतु वह कभी ऐसी न थी। ये वह ऋतु थी जिसे कभी पानी से बहुत लगाव था। वह मायके में पानी से भरे खेतों में धान लगाने सबसे पहले पहुंचती और खेतों में उछलती-कूदती, ख़ूब मस्ती करती थी। अंजुरी में पानी भर-भरकर अपने भाई-बहनों पर फेंकती।

बारिश हो रही होती तो उसके लिए सोने पे सुहागा जैसी बात हो जाती थी। वह मस्ती में ख़ूब नाचती। कभी मेड़ पर पीठ के बल लेटकर बारिश की बूंदों को पकड़ने की कोशिश करती तो कभी इस उथले पानी में तैरने का नाटक करती। बचपन से ही ये उसके प्रिय खेल थे। पानी देखकर इस उत्साह से सराबोर न हो पाना जैसे उसके बस में ही न था। इसमें उसका छोटा भाई बराबर साथ देता था। धान रोपना उसका मनपसंद कार्य था जो शादी के बाद भी यथावत रहा। इन खेतों और बारिश की ढेर सारी बातें जब वह राजेश और बच्चों को सुनाती तो उसका चेहरा खिलखिला रहा होता। बारिश के पानी से भरे खेतों को देखकर उसका मन ललचा जाना स्वाभाविक था। जब ऋतु अपने परिवार संग पगडंडी से होते हुए ससुराल पहुंच रही होती तो चलते-चलते वह अपने जूते हाथों में ले लेती और मेड़ तक चढ़ आए पानी में अपने पांव डुबाते हुए चलती।

इधर दोनों बच्चे पापा को मनाने की पूरी कोशिश में लगे हुए थे। 'पापा, आपने ही तो हमें कहा था कि जब भी बारिश होगी तो तुम उसमें नहा सकते हो। और यह भी कि तुम्हारे साथ मैं भी नहाऊंगा। अब आप हमें...।'

कुसुम की बात को काटते हुए राजेश बोला, 'वह तो मैंने तुमसे यूं ही कह दिया था बेटा। बारिश का पानी बीमार कर सकता है। बुख़ार या फिर ज़ुकाम भी हो सकता है। बिजली कड़के तो उसका ख़तरा अलग से है।'

कहानी... बारिश.. जारी...

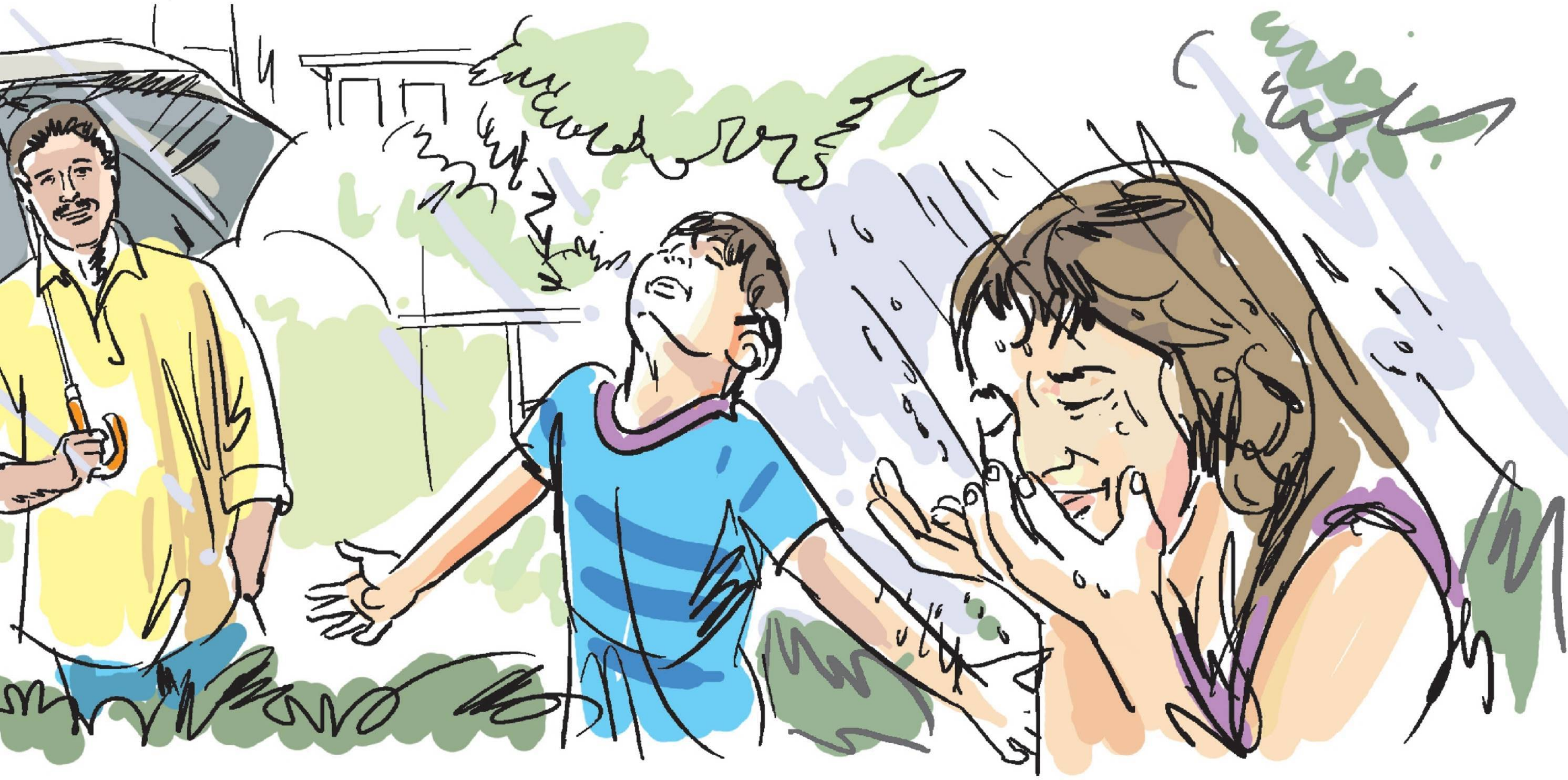

'हमें कुछ नहीं होगा पापा। आप इतना क्यों डरते हो? इस पानी में तो हमें भीगना ही चाहिए। यह तो हमारे शरीर को स्ट्रेंथ देता है। स्वास्थ्य पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। मेरे दोस्त तो इस बारिश में ख़ूब नहाते हैं। यही नहीं, उनके पैरेंट्स भी।' अंतरिक्ष ने अपनी बात रखी।

राजेश ने अबकी बार कुछ नहीं कहा। उसका डर न बच्चों को और न ही ख़ुद उसे इस बारिश में भीगने की इजाज़त दे रहा था।

'मम्मी, आप क्यों चुप हो, पापा को कहो न!' कुसुम उदासी और नाराज़गी भरे स्वर में बोली।

ख़यालों में लिपटी ऋतु एकदम जागी और संभलते हुए बोली, 'अरे बेटा, मैं क्या कहूं! तुम पापा से ही पूछो। मैं तुम्हारे इस पचड़े में नहीं पड़ना चाहती।'

राजेश उसके जवाब से ख़ुश था जबकि ऋतु इस वक़्त कोई भी बात करने के मूड में नहीं थी। इस बारिश की रफ़्तार उसे किसी और ही दिशा में लिए जा रही थी।

ख़ूब चहकने वाली ऋतु के चेहरे से पिछले लगभग दो वर्षों से यह हंसी ही ग़ायब थी। बारिश के आते ही उसे उदासियां घेरकर बैठ जाती थीं। उसे बारिश से नफ़रत हो गई थी। बारिश का आना उसके लिए किसी ज़लज़ले का आना था। उस दिन भी खड्ड के पिछले किसी हिस्से में यह बेदर्द बारिश ख़ूब बरसी थी और इसमें नहाते उसके भाई को अचानक प्रकट हुई ये उफनती लहरें सदा-सदा के लिए अपने साथ ले गई थीं। वही तो था जो खेतों की इस मस्ती में ऋतु का बराबर साथ देता था। उसके लिए ऋतु ख़ूब स्नेह लुटाती थी। पांच चाचा-ताया के इस बड़े परिवार में वह सबका चहेता था। वह अब धान के खेतों में जाती लेकिन उसके पांव अब उनके भीतर नहीं उतरते थे। वह उनमें अपने भाई को ही तलाशती रहती। निश्छल हंसी लिए उसे वह अपने सामने खड़ा दिखता और वह खेतों के इस पानी को खारा बनाती रहती। पिछली सारी यादें उसकी आंखों में लालिमा बनकर उभर-उभर आती थीं। आज भी यह बरसता पानी उसकी आंखों में एक चुभन ही पैदा कर रहा था।

'मम्मी, पापा को बोलो न कि हमें बाहर जाने दें।' अंतरिक्ष ने भी गुहार लगाई थी।

ऋतु अपनी आंखें पोंछती हुई बोली, 'सुनो राज, बच्चों को जाने दो न। कब से बोल रहे हैं बेचारे।'

'अरे ऋतु, तुम यह कैसे कह सकती हो? तुम तो जानती हो न कि बारिश मेरे साथ क्या खेल खेलती है।' राजेश ने चिढ़ते हुए कहा और साथ ही आंगन की तरफ़ वाले जाली के दरवाज़े की कुंडी भी लगा दी।

ऋतु को न जाने क्या हुआ कि वह एकदम से चिल्लाई, 'तुम्हें यदि इस पानी से दिक़्क़त है तो तुम इन्हें क्यों अपने इस डर में शामिल कर रहे हो! एक बात और, अपने बचपन को याद करो ज़रा! क्या बचपन में तुम भी इस बारिश में घर पर ही रुकते थे?'

राजेश सकपकाते हुए बोला, 'अर...रे, व...ह समय कुछ और था, यह कुछ और है।'

'वह भी यही समय था। बारिश तब भी बरसती थी और आज भी बरस रही है। तब भी सब मिलकर इसमें नहाते थे और आज भी हम...' कहते-कहते ऋतु की ज़ुबान जैसे अटक-सी गई। लेकिन फिर अपने भर्राए गले को संभालते हुए बोली, 'मैं जानती हूं, तुमने अपने मन में फालतू का डर बिठा रखा है, बस, और कुछ नहीं। अब इसमें बच्चों की क्या ग़लती?'

'ये सब इनके और हमारे भले के लिए ही तो मैं कह रहा हूं। कहीं बीमार पड़ गए या कहीं चोट-वोट लग गई तो मुश्किल हो जाएगी। अस्पताल भरे पड़े हैं मरीज़ों से।'

'अरे राज, तुम कुछ ज़्यादा ही आगे की सोच रहे हो। ऐसा कुछ नहीं होगा। ये किसी नहर या खड्ड में नहाने के लिए थोड़े ही न कह रहे हैं। यहीं आंगन में ही उछलेंगे, कूदेंगे और लौट आएंगे तुम्हारे पास।'

दोनों बच्चों का ध्यान मम्मी-पापा की बातों पर टिका था। वे किसी सुखद निर्णय की बाट जोह रहे थे। उन्हें कभी थोड़ी-सी उम्मीद दिखती परंतु अगले ही पल वह ग़ायब भी हो जाती।

'तुम फालतू की ज़िद कर रही हो? इन्हें यहीं से ही बारिश का नज़ारा लेने दो।' राजेश अपनी बात पर अड़ा हुआ था।

'ऐसे कैसे मज़ा लेंगे ये! जब तक बारिश में नहीं भीगेंगे तब तक उसका आनंद कैसे आएगा? क्या तुमने कभी ऐसे आनंद लिया है? भीगने दो न इन्हें। ये पहली बार ही तो जा रहे हैं।'

'तुम्हारी मर्ज़ी। देख लो कुछ हुआ तो मुझे न कहना फिर।' राजेश ने अपनी बात को मनवाने के लहज़े से कहा।

'इन्हें कुछ नहीं होगा।' ऋतु पूरे विश्वास के साथ बोली।

बस, यही सुनने भर की देर थी कि अंतरिक्ष पलक झपकते ही कुंडी को एक तरफ़ सरकाकर कपड़ों संग ही आंगन में पहुंच गया। इससे पहले कि पापा का हाथ उसे छू पाता, वह बारिश में पूरी तरह से भीग चुका था।

और फिर कुसुम भी उसके पीछे फटाक से दरवाज़ा खोलकर पहुंच गई आंगन में। राजेश हैरान-सा खड़ा ही रह गया।

बारिश इतनी ज़्यादा थी कि छाता भी घबरा जाए। भीगने के डर ने राजेश के क़दम कसकर बांध दिए थे। झमाझम गिरती इस बारिश में बच्चों की ख़ुशी का ठिकाना न रहा। इनकी उछल-कूद और बारिश की बूंदों संग चेहरों से टपकती खिलखिलाहट बहुत ही प्यारा दृश्य पैदा कर रही थी। आंगन के एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ते इन बच्चों का शोर बारिश के शोर में घुलकर राजेश और ऋतु के कानों तक पहुंच रहा था।

ऋतु की बातें राजेश को बहुत कुछ याद दिला रही थीं। मन में कई तरह की हलचल लिए वह अनवरत बच्चों को देख रहा था। उसे अपने भीतर कुछ आहटें सुनाई दे रही थीं- 'वाह, क्या नज़ारा है! काश मैं भी...।' कुछ ऐसे शब्द कब से बाहर आने को व्याकुल थे। लेकिन एक डर उनकी चाल को लगातार थामे हुए था। इधर मानस-पटल पर होने वाली दस्तक उसका हाथ थामे उसे अपने साथ कहीं ले जा रही थी। वह न चाहते हुए भी इस यात्रा में बार-बार, ख़ुशी-ख़ुशी जाना चाहता था। उसने ज़रा-सा भी इनकार नहीं किया और उछलते-कूदते क़दम मिलाते हुए पहुंच गया उसके संग अपने गांव, जहां उसके सभी साथी कब से उसका इंतज़ार कर रहे थे। अभी यहां कुकुरमुत्तों की तरह पक्के मकान नहीं उगे थे। इक्का-दुक्का थे जो उंगलियों पर गिने जा सकते थे। इस वक़्त ख़ूब बारिश हो रही थी और वह अपने बड़े दादा के एक बड़े-से सीमेंट के आंगन में खड़ा था। यह आंगन गांव के चुनिंदा पक्के आंगनों में से एक था।

कहानी... बारिश.. जारी...

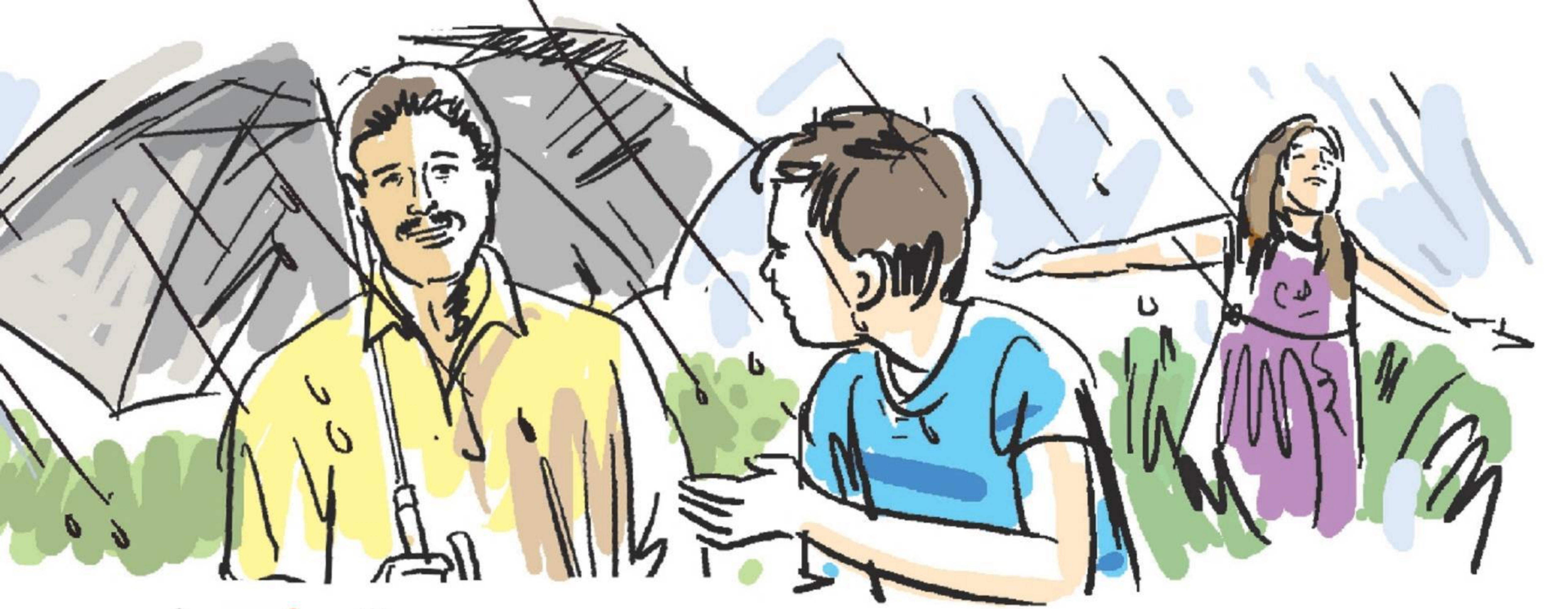

जब भी गांव में कोई बड़ा आयोजन या विवाह आदि के कार्यक्रम होते तो इसी आंगन में लोगों को बिठाकर खिलाया जाता था। वैसे आंगन राजेश के घर वाला भी बड़ा था लेकिन वह कच्ची मिट्टी का था और उसमें बड़े-बड़े पत्थर बिछाए गए थे।

इधर राजेश बुत-सा बना दरवाज़े की जाली से बाहर झांकता हुआ बच्चों की मस्तियों को बड़े आनंद से निहारने लगा था। लेकिन छोटा राजेश उसे फिर-फिर अपने पास बुला रहा था। वह तो अभी उसके साथ खेलना चाहता था, उसे अपनी दिलेरी, मस्ती और मीठी शरारतों से मिलवाना चाहता था। वह उसे अबकी बार बड़े दादा के खुरदरे आंगन के बीचो-बीच उस हिस्से के पास ले गया जो सीमेंट से ही लीपा गया था। यह चमकीला और समतल था। इसका इस तरह से बनाने का एक ही मक़सद था कि यहां आराम से घर की औरतें खुले में कपड़े धो सकें। वैसे, यह ख़याल बुरा न था- उनके लिए भी और बच्चों की पूरी पलटन के लिए भी। इस हिस्से को देखकर राजेश की आंखें चमक उठीं। बरसात में यही तो उनका केंद्र बिंदु था। जब भी बारिश का अंदेशा होता तो राजेश सबसे पहले कपड़े खोलकर यहां पहुंच जाता था। उसे पता था जब यहां भीड़ बढ़ेगी तो उसका सारा मज़ा किरकिरा हो जाएगा।

बारिश की बूंदें गिरीं नहीं कि राजेश नंगा ही दौड़ पड़ता था इस शीशे जैसे आंगन में सबसे पहले फिसलने के लिए। अंडरवियर की उस समय ऐसी कोई ज़्यादा सुविधा नहीं थी। कपड़े से सिले मिल गए तो ठीक, वरना उसके बग़ैर भी गुज़ारा चल जाता था। छोटे बच्चों के लिए तो खुली छूट थी।

राजेश इस आंगन के पास खड़ा मंद-मंद मुस्करा रहा था। वह उस खेल को याद कर रहा था जो यहां खेला जाता था। छोटा राजेश इसके लिए सबसे पहले तैयार खड़ा मिलता। खेल यह रहता कि सभी बच्चे आंगन के एक कोने से दूसरे कोने तक पेट के बल बारी-बारी या समूह में नंगे ही फिसलते। जो खेल के अंत तक टिका रहता वह जीत जाता और जो हल्का-सा भी इस आंगन से बाहर निकल आता वह इस खेल से बाहर हो जाता। छोटा क़द होने के कारण राजेश इस खेल में ज़्यादातर विजयी ही रहता। ये आनंद के अनोखे पल होते। पेट के बल फिसलना सबको प्रिय था। यही नहीं, बारिश में यदि कोई किसी को अचानक ज़ोर का धक्का देकर या टांग खींचकर दूसरे किनारे तक पहुंचा देता तो कोई भी बुरा नहीं मानता था। सभी अपनी ताक़त लगाए बिना ऐसे ही तो फिसलना चाहते थे। यह सबसे मज़ेदार था। परंतु कभी यह धक्का इतनी ज़ोर का भी होता कि कोई फिसलते हुए खुरदरे आंगन में भी पहुंच जाता था और उसका नतीजा पिछवाड़े या पेट का छिलना होता। फिर कई दिनों तक वह तमाशा देखने वाला ही बनकर रहता। राजेश भी एक बार इसका ख़ामियाज़ा भुगत चुका है। ये सब शरारतें, अठखेलियां, मस्ती तब तक चलती जब तक बारिश रहती या तब तक, जब तक कि घर वालों से धुनाई नहीं हो जाती।

ऋतु भी अपनी जगह से हिले बिना इस मूसलधार बारिश के शोर में बच्चों को झूमते हुए देख फिर से अपनी उजली यादों को समेट लेना चाह रही थी लेकिन एक अंधेरा उसे इस रोशनी तक पहुंचने से रोक रहा था। उसकी आंखें बार-बार गीली हो रही थीं। दूसरी तरफ़, बीते समय की सैर पर निकला राजेश आनंदित हुए जा रहा था। इन स्मृतियों में झांकना उसे कितना प्रसन्नचित्त किए हुए था, यह उसके लाल हो रहे कपोल गवाही दे रहे थे। उसका ध्यान बारिश में नहाते दोनों बच्चों पर ही था। छोटा राजेश उसका हाथ थामे पगडंडियों संग लहलहाते खेतों से होता हुआ पक्षियों के घोंसलों से उसे मिलवाकर थोड़ा और वक़्त उसके साथ गुज़ारना चाह रहा था। दोनों बच्चे नाचते-गाते हुए पिता को इशारों से बार-बार अपने पास बुला रहे थे। यह स्थिति एक संयोग पैदा कर रही थी।

अबकी बार दरवाज़े के पास खड़े-खड़े ही बाज़ुओं को ऊपर कर एक हल्की-सी आलस्य भरी जम्हाई के साथ राजेश के चेहरे पर एक उदासी तैर जाती है। वह जानता है उन दिनों का वापस आना अब मुमकिन नहीं है। उसके सभी साथी भी बड़े हो गए हैं और वे भी अब उसकी तरह हर छोटी-छोटी बात को लेकर घबराने लगे हैं। जबकि राजेश ने तो सुन रखा था कि बड़े होने पर कई डर भाग खड़े होते हैं। पर शायद इस योजना में राजेश वाला डर शामिल न था। अब वह पहले से ज़्यादा भयभीत रहने लगा था। बचपन का वह समय था जब वह ऊंचे से ऊंचे पेड़ तक कौए या फिर तोते के बच्चों को देखने के लिए बिना किसी डर के चढ़ जाता था और फिर उसकी चोटी से ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से हंसता, गाता, चीख़ता और उन टहनियों को पूरी ताक़त से हिलाकर अपनी ख़ुशी व दोस्तों को इस ऊंचाई पर खड़े होने का गर्व महसूस करवाता। बच्चों में से यह हुनर सबसे ज़्यादा उसमें ही कूट-कूटकर भरा था। अब वह छोटे-से पेड़ पर चढ़ने से भी घबराता है। या यह कहें कि उससे अब चढ़ा ही नहीं जाता है। पेट काफ़ी बाहर की ओर जो निकल आया है। लेकिन बचपन से हर डर घबराता है। यह बात उसकी समझ में आ रही थी।

बारिश अभी भी ख़ूब बरस रही थी और दोनों बच्चे अपनी ही मस्ती में खोए थे। वे आज जी भरकर अपनी इच्छा को पूरा कर लेना चाहते थे। फिर कौन जाने, उन्हें इसकी अनुमति मिले या न मिले। वे धमाचौकड़ी करते हुए कभी आंगन के एक कोने में स्लेट की छत वाली पशुशाला की छत से गिरते ढेर सारे पानी के नीचे खड़े होकर किसी झरने के जैसा आनंद ले रहे थे तो कभी आंगन में ही लोट-लोटकर पीठ-पेट के बल घूम-घूमकर मस्ती में झूम रहे थे। यह इस मौसम का जादू था।

अबकी बार कुसुम दौड़ती हुई दरवाज़े के पास ही पहुंच गई और हल्की ऊंची आवाज़ में बोली, 'क्या सोच रहे हो पापा, आओ न हमारे साथ।'

इस बार छोटे राजेश से उसका हाथ फिसलने लगा था लेकिन उसकी ऊर्जा राजेश के रोम-रोम में दाख़िल हो चुकी थी। श्याम-श्वेत में फिर से रंग भरने लगे थे। राजेश ने कोई उत्तर नहीं दिया। बस चेहरे पर एक मासूम मुस्कान लिए अपने पांव आंगन में रख दिए थे।

लघुकथा

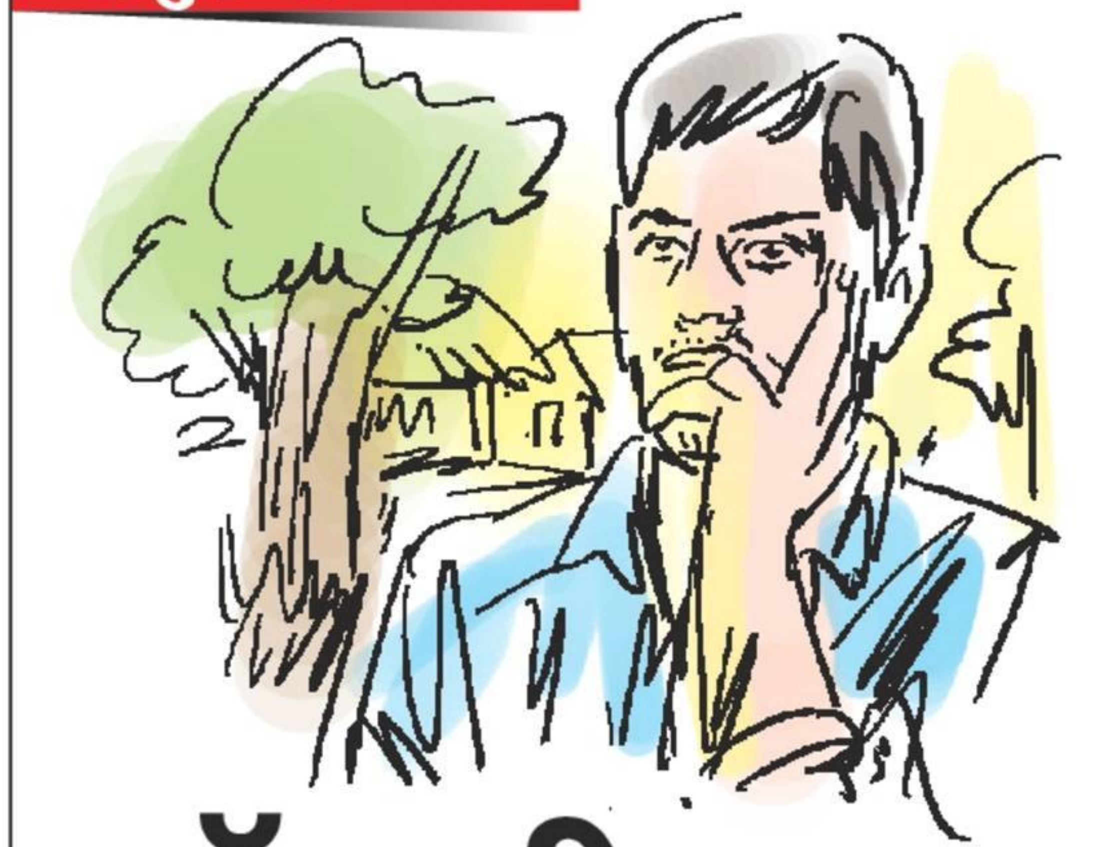

ऑक्सीजन

वह इस शहर में एक बार फिर अकेला हो गया था। अजीब-सी घुटन हो रही थी, जो गहरी सांसें लेने के बाद भी नहीं जा रही थी...

वो झुरमुट... अम्मी... अब्बू... रूही... मेरा गांव...

• हर्षा

वो एक झुरमुट था दरख़्तों का, जिसे पांचवीं मंज़िल पर बने अपने दफ़्तर से निहारता रहता। सबसे बड़ा वाला दरख़्त अब्बू जैसा दिखता, उसके पास अम्मी और फिर मेरी शैतान बहन रूही।

एक अदद नौकरी की ख़ातिर गांव छोड़ देना उस वक़्त भले आसान लगा हो, पर था क़तई नहीं।

दूर-दूर तक फैले सब्ज खेतों, लहराते पेड़ों, आसमान की चूनर पर टंके सलमे-सितारों और जिस्म को हौले से गुदगुदाती नर्म-मुलायम हवाओं को पीछे छोड़ मैंने महानगर के दस बाय बारह अटैच्ड बाथरूम वाले कमरे में आशियाना बसा लिया था। पर सच कहूं, मुझे घर में रहने से ज़्यादा दफ़्तर जाना पसंद था। वहां से दिखने वाले झुरमुट में मेरा गांव और क़ुनबा बसता था।

जब भी उस झुरमुट को देखता, लगता अम्मी कह रही हैं- थक गया होगा बेटा, पहले खाना खा ले। हवाएं चलने से जब उन पेड़ों की पत्तियां हिलतीं, सर पर अब्बू की हथेलियों की गर्माहट महसूस होती। वो झुरमुट मेरी उन लोगों से होने वाली बातचीत का अहम हिस्सा बन गया था- आज बारिश हुई थी, झुरमुट बहुत धुला-धुला लग रहा था... आज पेड़ बहुत चुपचाप थे, रूही, तू ठीक है न... आज ख़ूब ठंडी हवा चल रही है, कुछ अच्छा-सा बनाइएगा अम्मी।

अब ये शहर भी कुछ-कुछ अच्छा लगने लगा था।

एक हफ़्ते पहले ईद की छुट्टियों में गांव गया था। अजब बदलाव था मेरे भीतर। रह-रह कर अपना दरख़्तों वाला क़ुनबा याद आता रहा मुझे। वापसी पर रूही ने छेड़ा- भाईजान, जाइए, आपका दूसरा घर इंतज़ार कर रहा होगा।

आज शहर लौटा तो पता चला कि कल रात न जाने किन लोगों ने बड़ी ख़ामोशी से मेरे उस खानदान का ख़ात्मा कर दिया। मेरा मासूम-सा झुरमुट कंक्रीट के किसी जंगल के रास्ते का रोड़ा बना हुआ था। किसी तरह दफ़्तर आया। खिड़की के उस पार देखने की हिम्मत नहीं हो रही थी। जाने कहां पड़े होंगे उन दरख़्तों के बेजान जिस्म। शायद पुकारा हो उन्होंने मुझे... आख़िरी अलविदा के लिए। वो मर रहे थे, और मैं कुछ न कर सका। अब यहां कौन मुझे इस तरह दुलार करेगा।

मेरी रूह में ऑक्सीजन की कमी होने लगी थी!

यों तो अनानास अनेक फलों की तरह एक फल ही है, लेकिन हाल ही में कुछ ऐसे हालात बने कि इसके कारण अंतरराष्ट्रीय राजनीति में अनबन की स्थिति बन गई।

यह पूरा वाक़िया बहुत रोचक है और विस्तार से पढ़े जाने का अधिकारी है...

• देवेश पथसारिया

अनानास पर अनबन

हर बच्चा कुछ वस्तुओं को अनसुलझी पहेली की तरह देखता है। ये वस्तुएं बच्चे के आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और पारिवारिक परिवेश से तय होती हैं। मैं भी ऐसी ही कुछ पहेलीनुमा वस्तुओं से वाबस्ता था। कुछ तो देखी भी नहीं थीं, बस उनके बारे में सुनकर अनुमान लगाता था। फलों में लीची और अनानास इसी श्रेणी में आते थे।

एक अरसे तक मैंने लीची का फल देखा नहीं था। अनानास देख तो लिया था पर कभी चखा नहीं था। महंगे फल बेचने वाली किसी दुकान पर कभी वह दिखाई भी देता तो हमेशा साबुत। अलग कोने में रखा जैसे किसी वीआईपी ग्राहक के लिए है। हम लोग तो बस केला या संतरा जैसा कोई फल ख़रीद सकते थे। छोटे-छोटे नुकीले पठारों जैसी सतह वाले अनानास को देख कौतूहल होता कि इसे काटते कैसे होंगे! कितना भीतर और कैसा होता होगा इसका खाने योग्य हिस्सा!

समय गुज़रा और मैं देश-विदेश के कुछ फल चख सका। कुछ पहेलियां सुलझीं। आवोकादो पहली बार पेरिस के मेट्रो स्टेशन से ख़रीद कर खाया। और अनानास तो यहां ताइवान आकर इतना देखा कि सारा कौतूहल जाता रहा। पहली बार यहां यूनिवर्सिटी के डॉर्म की किसी जन्मदिन पार्टी में पिज़्ज़ा पर अनानास के टुकड़े देखे। मैंने सोचा अरे यार कौन लगाता है पिज़्ज़ा पर अनानास? ऐसा सोचने वाला मैं अकेला नहीं था। लेकिन पिज़्ज़ा पर अनानास पसंद करने वाले भी कम नहीं हैं। अब जबकि हर बहस का मंच डिजिटल हो गया है, इस बारे में भी इंटरनेट पर बहस चलती रहती है।

ताइवान अनानास का प्रमुख उत्पादक है। ताइवान की जलवायु ट्रॉपिकल और सब-ट्रॉपिकल होने के कारण अनानास की फ़सल के लिए बेहद मुफ़ीद है। ऐतिहासिक रूप से देखें तो ताइवान में अनानास की खेती जापान और अन्य देशों के प्रयासों से शुरू हुई थी। अब स्थिति यह है कि खट्टे-मीठे स्वाद के इस फल की लगभग 95 अलग-अलग क़िस्में ताइवान में मिलती हैं। इनमें सबसे प्रमुख 'गोल्डन डायमंड' क़िस्म का अनानास है। यह अपने नाम के अनुरूप ही सुनहरी आभा लिए होता है। इसकी लोकप्रियता की एक वजह है इसका अधिक मीठा, या दूसरे शब्दों में कहें तो कम खट्टा होना।

ताइवान हर साल लगभग चार लाख टन अनानास का उत्पादन करता है। अब तक इस कुल उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा चीन को निर्यात होता था, जिसका हालिया वर्षों का सालाना मूल्य लगभग पौने चार अरब भारतीय रुपए होगा।

साल 2021 के फ़रवरी महीने के अंत में चीन ने ताइवान से अनानास के आयात पर यह कहकर रोक लगा दी कि ताइवान के इस फल में नुक़्स है; इसमें कीड़े मिल रहे हैं। ताइवान और अंतरराष्ट्रीय समुदाय के कई देश चीन की इस बात का खंडन करते हैं और चीन के इस निर्णय को राजनीति से प्रेरित मानते हैं।

कई देश ताइवान के समर्थन में सामने आए, पर बिना स्थानीय भावना के वह निरर्थक होता। सबसे पहले तो ताइवान की जनता और यहां के नेताओं ने दैनिक भोजन में अनानास के उपयोग को प्रमोट करना शुरू किया। ताइवान की राष्ट्रपति त्साई इंग-वेन द्वारा अनानास के किसानों के समर्थन में ट्विटर पर 'फ्रीडम पाइनएप्पल' अभियान शुरू किया गया। ताइवान के उपराष्ट्रपति लाइ चिंग-ते ने ट्वीट किया- 'ताइवानी अनानास फ़ाइटर जेट से ज़्यादा ताक़तवर हैं। राजनैतिक दबाव उनके स्वाद को बिगाड़ नहीं सकता।'

पूरे देश में यह माहौल था कि अनानास के किसानों को नुक़सान ना हो। 2 मार्च, 2021 तक विभिन्न कंपनियों, वेबसाइटों और खुदरा विक्रेताओं द्वारा लगभग 41,000 टन अनानास ख़रीदने का ऑर्डर ले लिया गया था। अनानास से संबंधित पुराने व्यंजन बनाए जाने लगे और कुछ नई रेसिपीज़ भी ईजाद की गईं। अनानास वाला पिज़्ज़ा भी ख़ूब डिमांड में रहा। क्योंकि बात लहर के समर्थन की थी, पिज़्ज़ा पर अनानास का विरोध करने वाले लोगों ने भी चुप्पी बनाए रखी।

गहराई में जाकर देखें तो विभिन्न भोजन संस्कृतियों में मीठे-नमकीन का समावेश होता है। अपने गुजराती बंधु बहुत-सी सब्जियां मीठी बनाते हैं। मेरी एकमात्र गुजरात यात्रा के दौरान पारंपरिक स्वाद ग्रंथियों से बंधा हुआ मैं बाईस साल की उम्र में उन व्यंजनों का पूरा आनंद नहीं ले पाया था। अगली बार शायद स्थिति भिन्न हो। मैं पहले अपने क़स्बे के लोगों के कचौड़ी-जलेबी मिलाकर खाने पर भुनभुनाता था और अब मुझे ही उसका चस्का लग चुका है।

ताइवान के एक भारतीय रेस्त्रां में मार्च के अंतिम सप्ताह में होली मनाई गई। आयोजकों की तरफ़ से सलाद में अनानास भी शामिल किया गया। विदेशों में भारतीय रेस्त्रां कोई भी अतिरिक्त चीज़ यूं ही शामिल नहीं कर देते। अर्थशास्त्र का 'मांग एवं आपूर्ति' का नियम काम कर रहा था। 'कोको' यहां की एक लोकप्रिय फ्रूट जूस, बबल टी इत्यादि की चेन है। बबल टी यानी साबूदाने के बुलबुलों वाली चाय की शुरुआत ताइवान में ही हुई थी। अपने निश्चित मैन्यू के अतिरिक्त कोको समय-समय पर मौसमी फलों पर आधारित ड्रिंक्स भी बेचती है। मई-जून में उसने अनानास और आम के ड्रिंक को शामिल किया।

स्थानीय जनता के अतिरिक्त दुनिया के कई देश न केवल ताइवानी अनानास की ख़रीद के लिए आगे आए, बल्कि मीडिया और सोशल मीडिया पर उन्होंने ताइवान का पक्ष भी लिया। ताइवान को सबसे मुखर समर्थन जापान से मिला। जापान के पूर्व प्रधानमंत्री शिंज़ो आबे ने यहां से आयातित अनानास के साथ अपनी तस्वीर ट्विटर पर पोस्ट की। जवाब में ताइवान की राष्ट्रपति ने लिखा कि यदि आबे के सामने रखे पांच अनानास कम हों तो वे कभी भी और भिजवा सकती हैं। अप्रैल महीने तक जापान ने 6,000 टन अनानास आयात करने हेतु ऑर्डर दे दिया था। अब जापान ताइवान से सर्वाधिक मात्रा में अनानास आयात करने वाला देश बन गया है। जापानी संगीतकार सावागुची काज़ुहिको ने 'ताइवान पाइनएप्पल सॉन्ग' लिखा। हांगकांग, सिंगापुर, कनाडा, दक्षिण कोरिया, थाईलैंड, मलेशिया और अमेरिका से भी आयात के ऑर्डर प्राप्त हुए।

कुल मिलाकर किसी भी भावना से लिया गया चीन का फ़ैसला ताइवान को लाभ ही दे गया। यदि निरपेक्ष होकर देखा जाए, तब भी स्थानीय जनता और अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सहयोग से ताइवानी अनानास और उसे उपजाने वाले किसान एक वैश्विक शक्ति के विरुद्ध विजयी रहे हैं।

जो दिखता है हमेशा सच नहीं होता

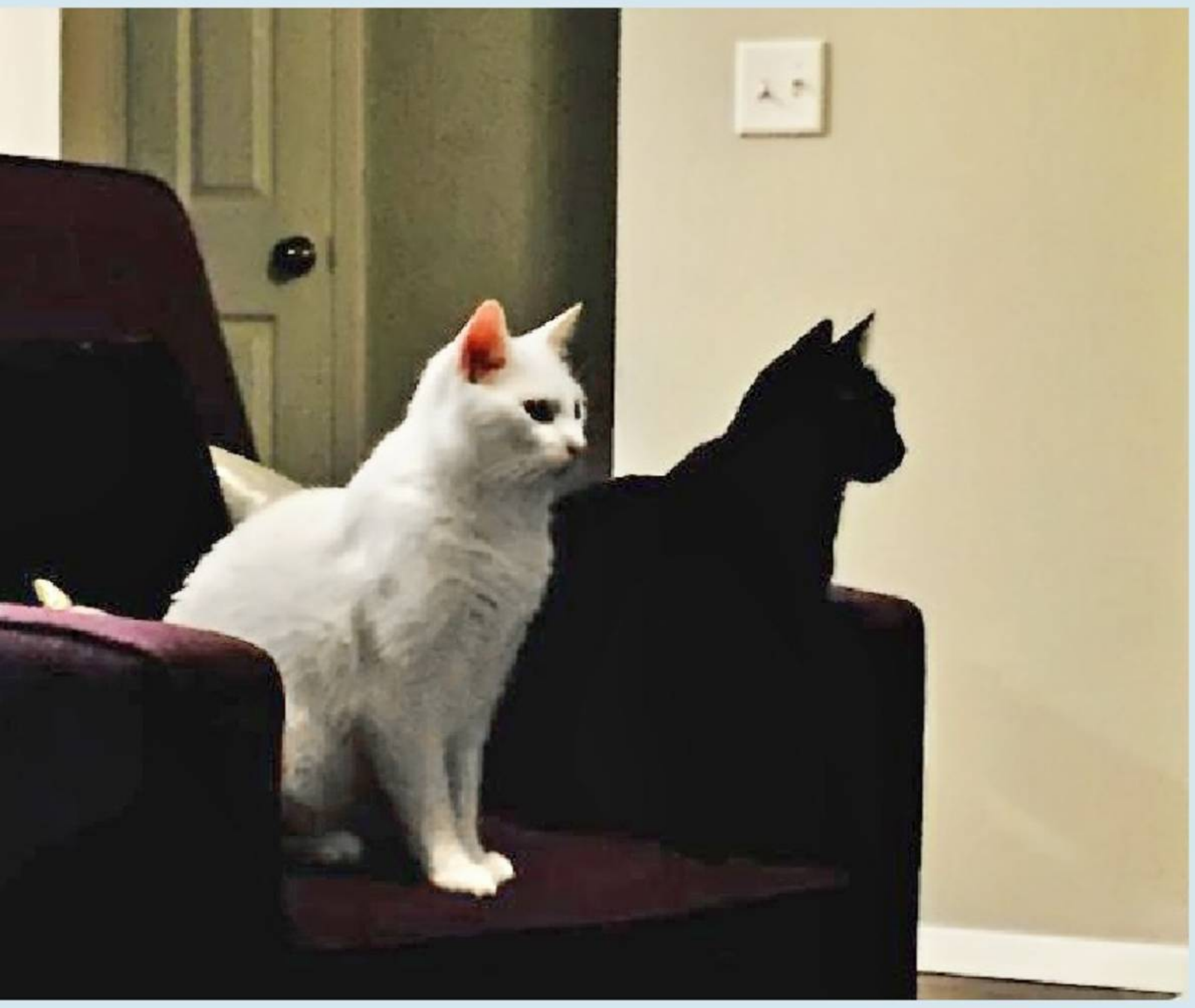

स्याह सफ़ेद...

देखने में दीवार पर सफ़ेद बिल्ली की परछाई दिखाई दे सकती है लेकिन असल में सफ़ेद बिल्ली के पास एक काली बिल्ली खड़ी है।

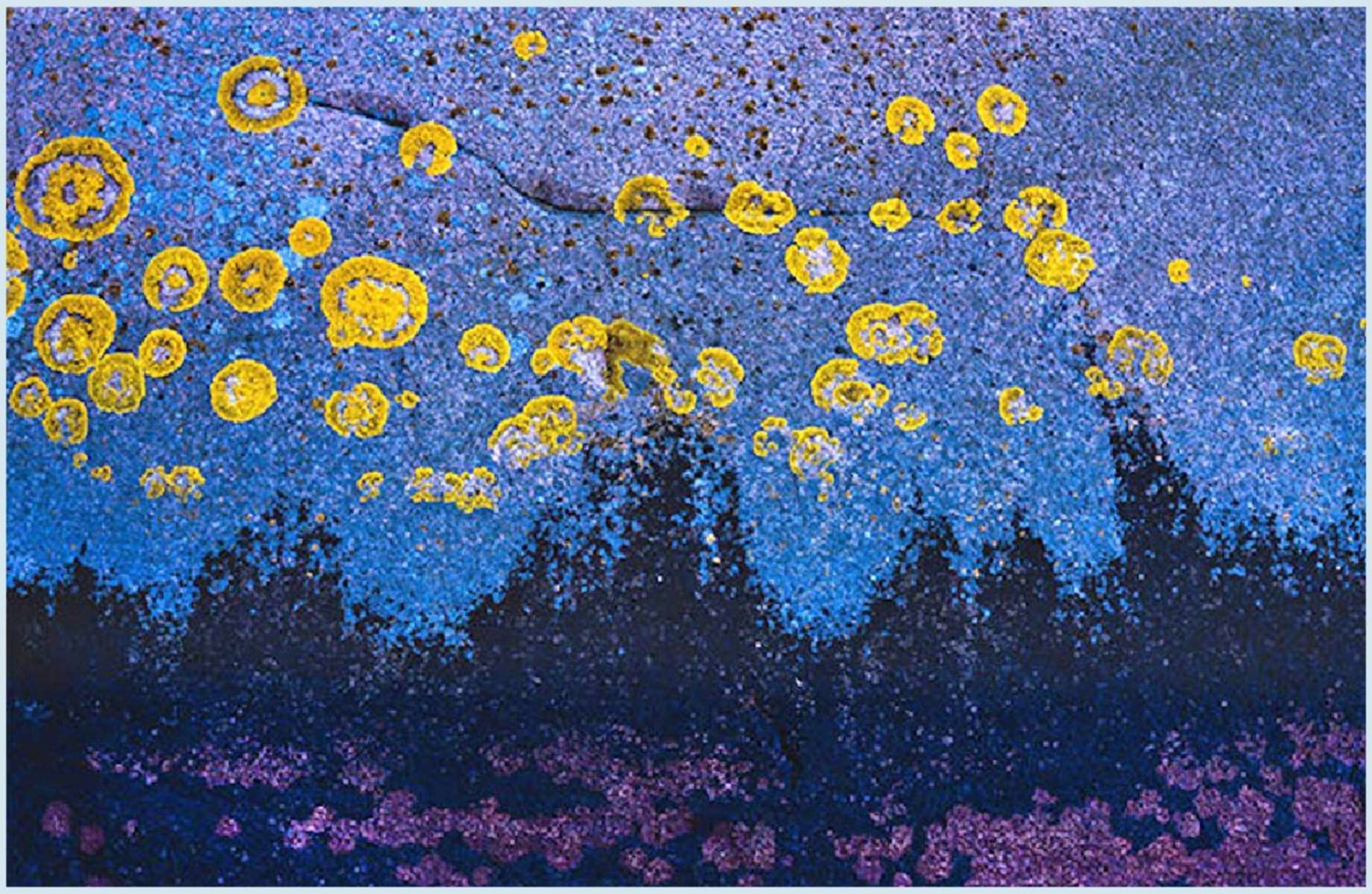

कलाकृति...

प्रसिद्ध चित्रकार विंसेंट वॉन गॉग के चित्र 'स्टारी नाइट' की दिखाई दे रही यह कलाकृति दरअसल एक पत्थर पर प्राकृतिक रूप से उभरी है।

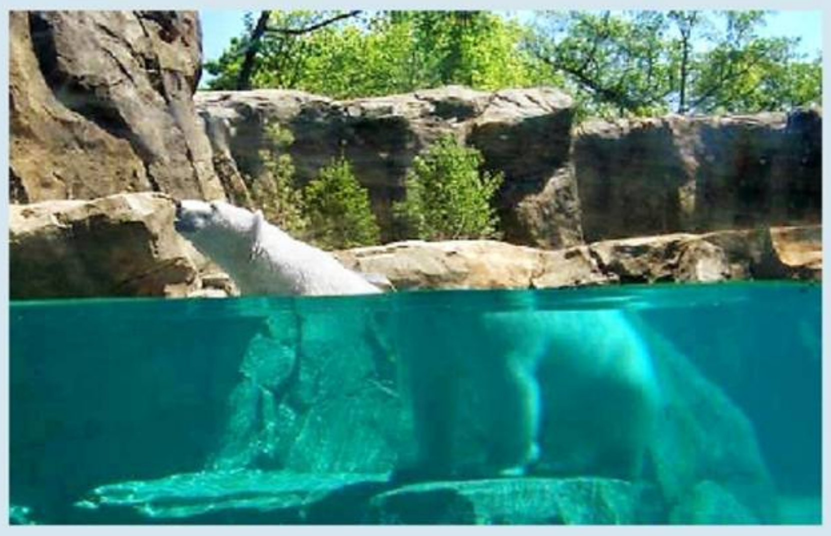

विचित्र भालू...

भौतिक विज्ञान की भाषा में अपर्वतन के कारण इस ध्रुवीय भालू की गर्दन आगे और धड़ पीछे की ओर दिखाई दे रहा है।

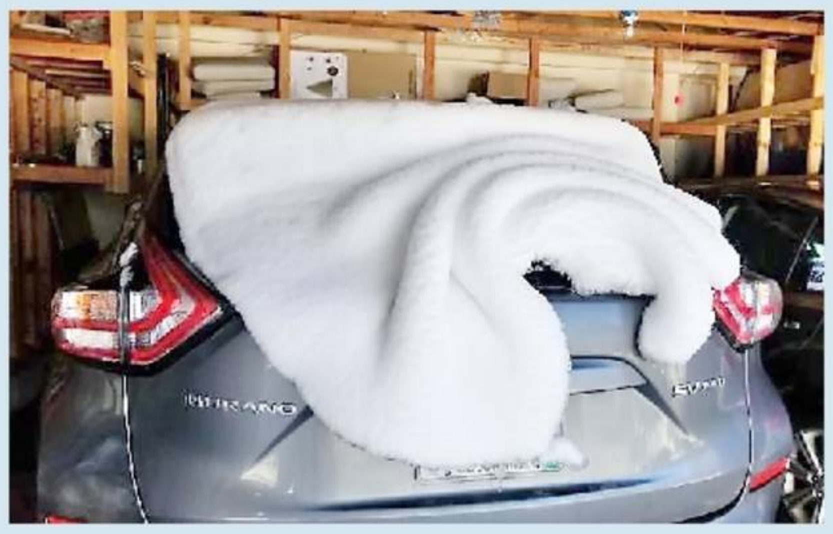

कार पर कम्बल...

कार के ऊपर किसी बड़े कम्बल की तरह दिखाई दे रही यह आकृति दरअसल बर्फ़ है।

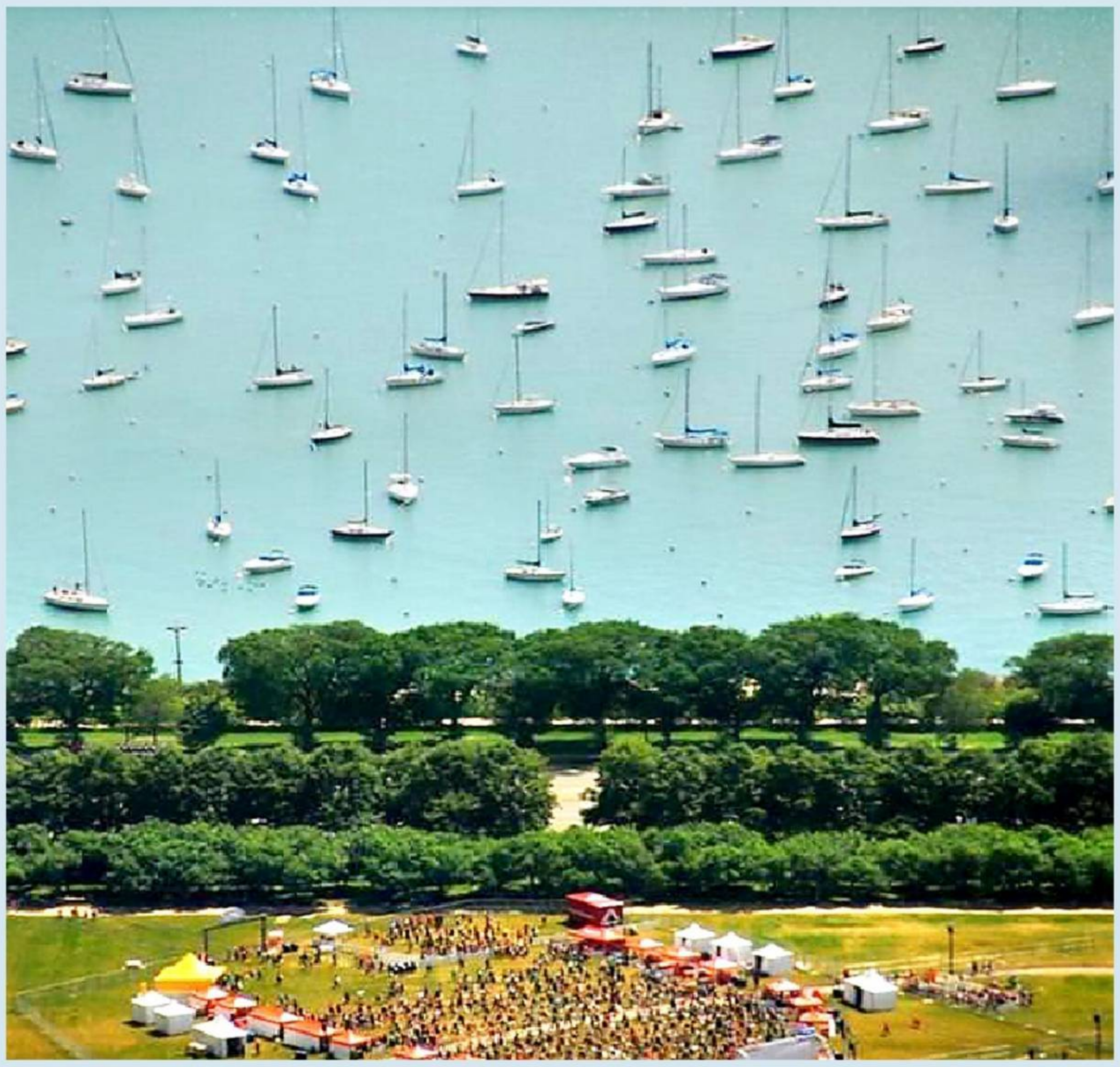

आसमानी नावें...

दरअसल, नावें समुद्र में हैं और इस ओर एक मैदान है। यह तस्वीर ऊंचाई से ली गई है इसलिए इसमें एक भ्रम की स्थिति पैदा हो रही है।

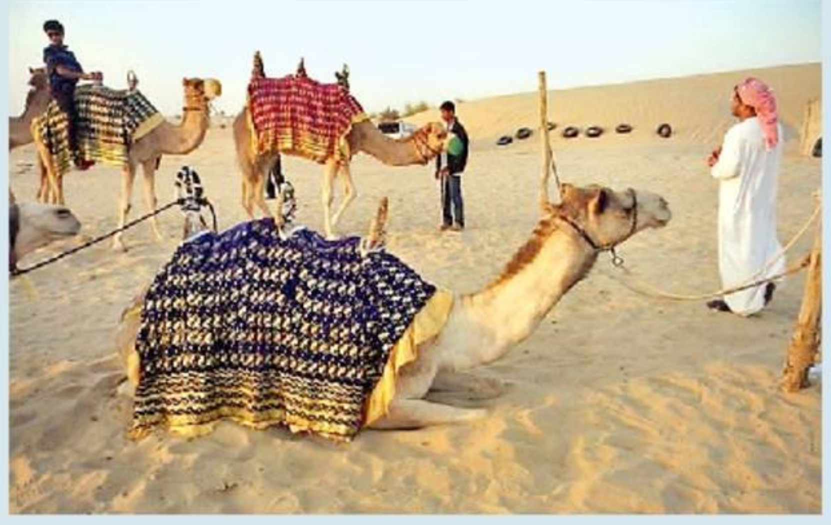

ऊंट पर ऊंट...

एक ऊंट के ऊपर दिखाई दे रहा दूसरा ऊंट वास्तव में पीछे की ओर दूर खड़ा है। सारा परिप्रेक्ष्य का खेल है।

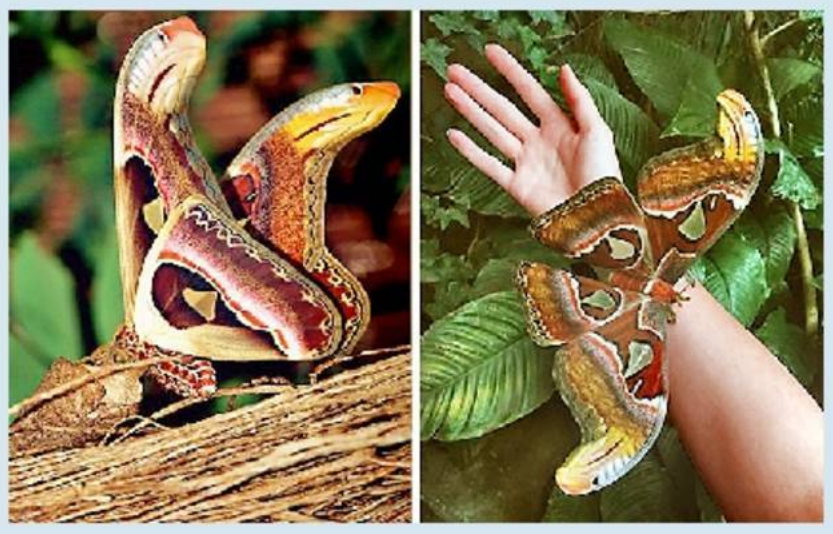

पंखों पर सांप...

यह एटलस मॉथ कीट है जिसके पंख प्राकृतिक रूप से सांप की तरह दिखाई देते हैं।

एक पुरानी कहावत है जिसका अर्थ यूं है कि

अक्सर जो दिखाई देता है वह सच नहीं होता। सच खोजने के लिए दृश्य पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। यहां ऐसी ही कुछ चंद तस्वीरें प्रस्तुत की गई हैं, जो पहली नज़र में आपको सामान्य दिखाई दे सकती हैं, किंतु इनके पीछे का सच कुछ और ही है।

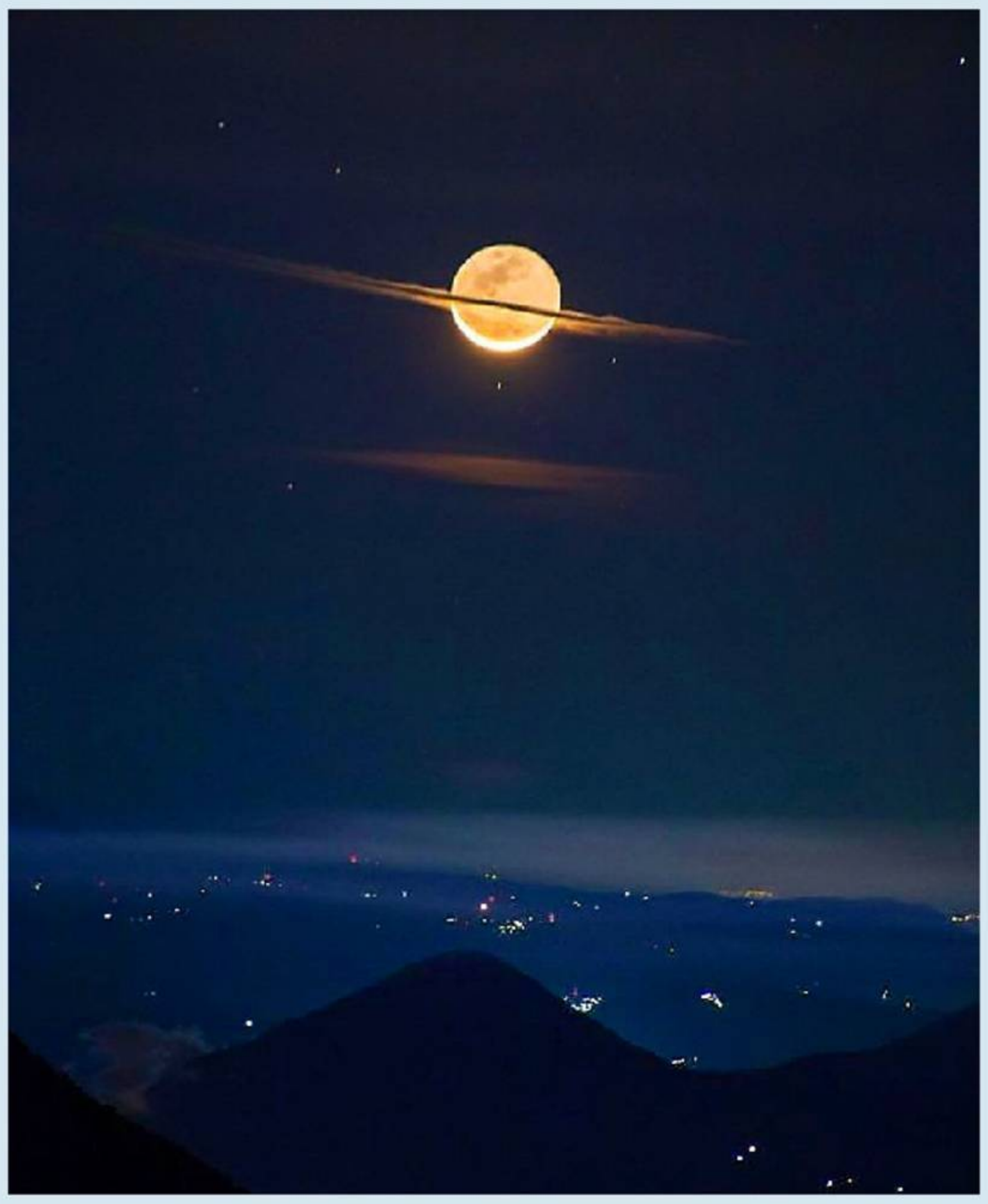

चंद्रमा के वलय...

चंद्रमा की इस तस्वीर के चारों ओर बादल वलय की तरह दिखाई दे रहे हैं। जैसे चंद्रमा ने शनि का रूप ले लिया हो।

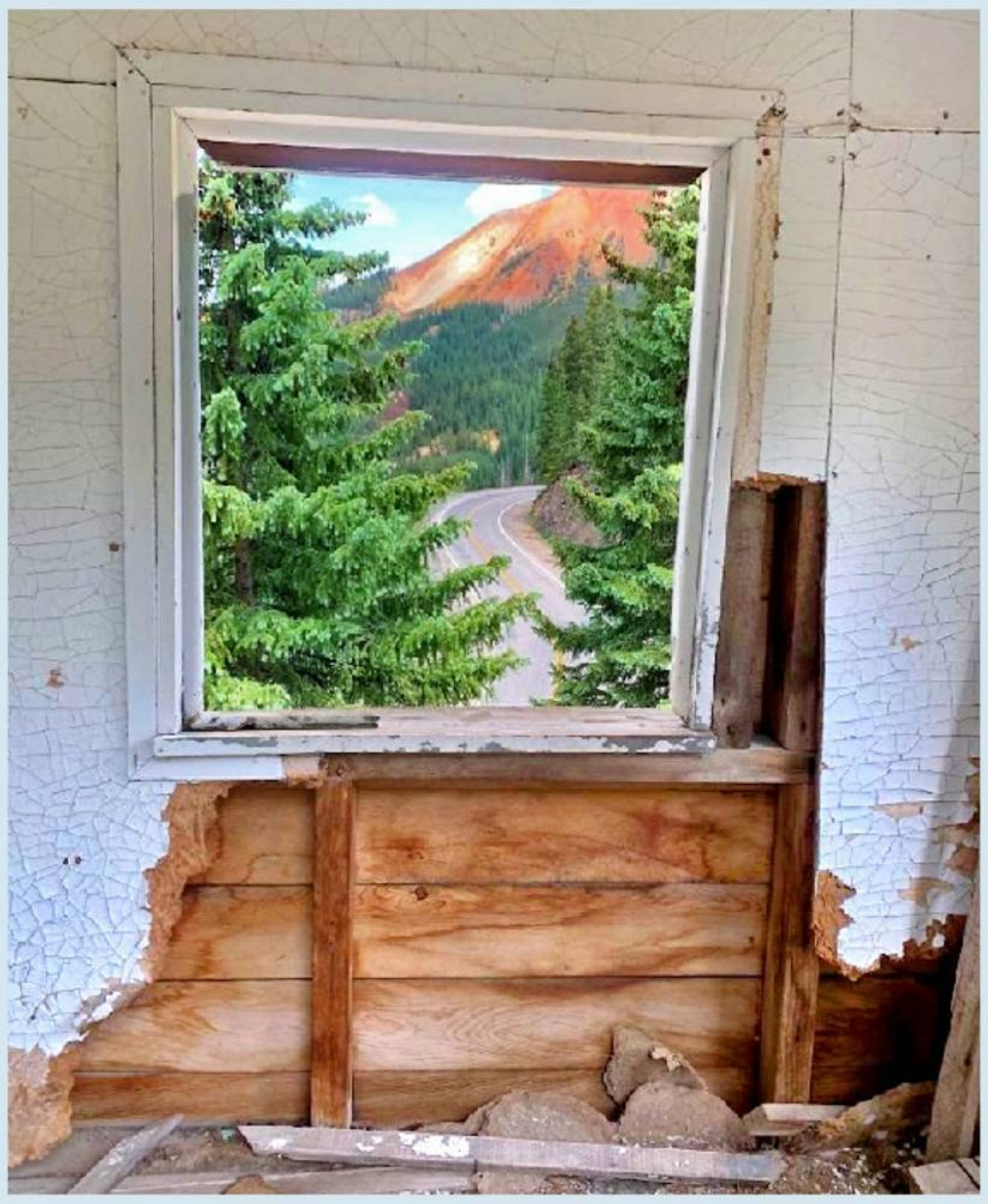

वॉल पेंटिंग...

दीवार पर चित्र की तरह दिखाई दे रहा यह दृश्य दरअसल घर की खिड़की से दिखाई देता एक प्राकृतिक दृश्य है।

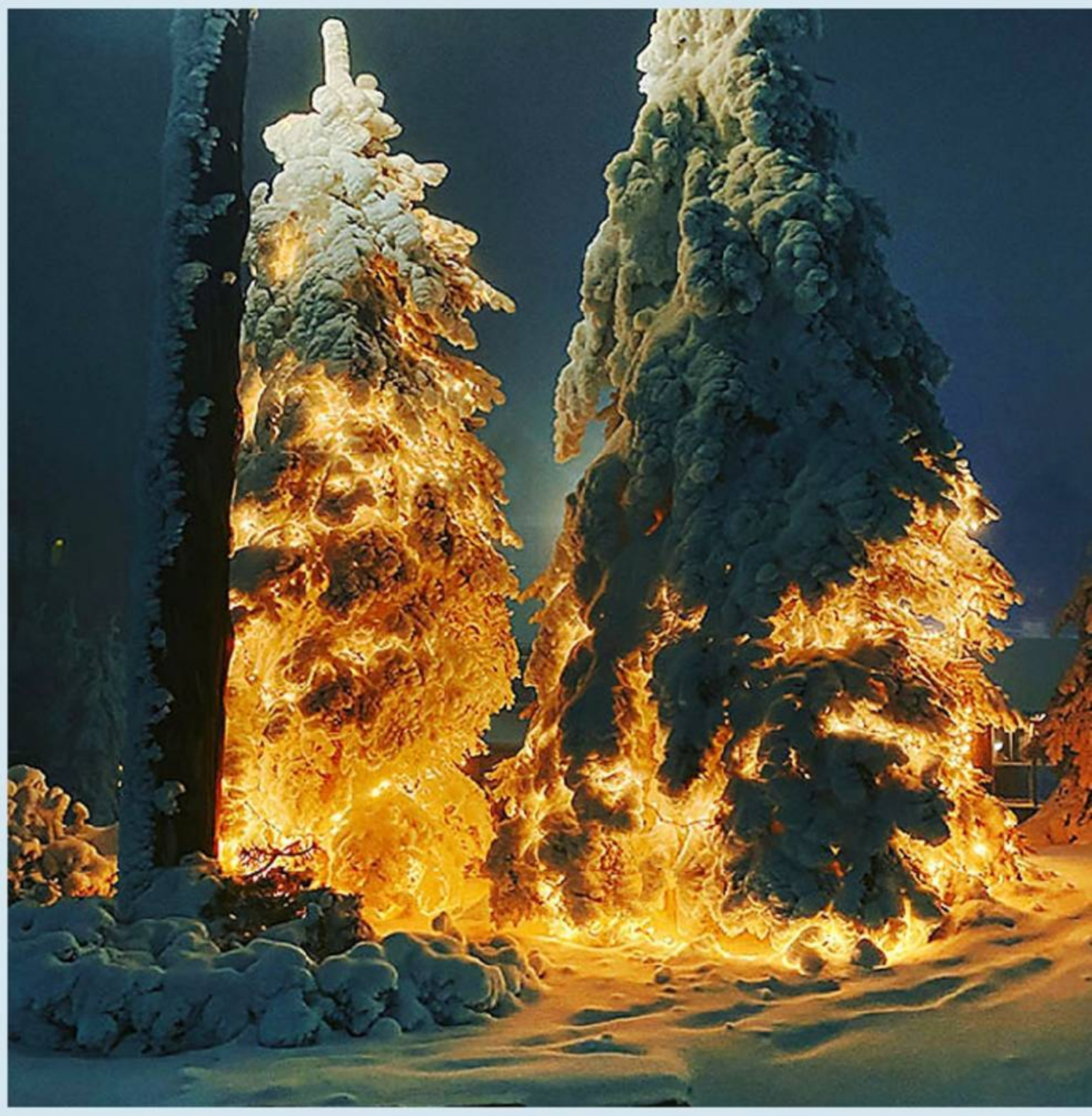

रॉकेट लॉन्च...

रॉकेट लॉन्च के धुएं की तरह दिखाई दे रही ये तस्वीर रोशनी किए क्रिसमस पेड़ों की है जिन पर बर्फ़ जमा हो गई है।

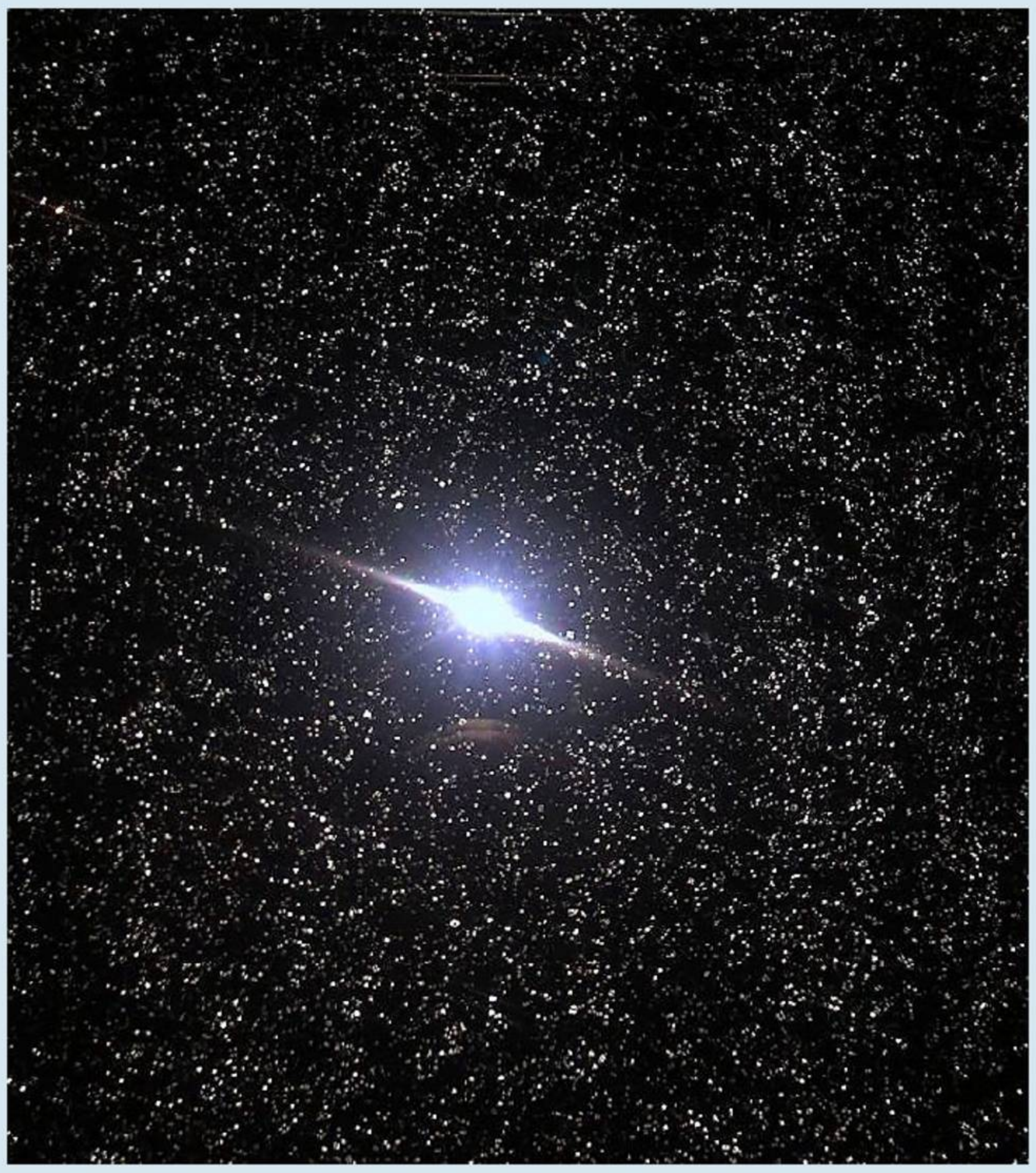

आकाशगंगा...

एक नज़र में यह किसी ग्रह और अनेकानेक तारों का चित्र दिखाई दे सकता है, परंतु वास्तव में यह कार की खिड़की का शीशा है जिस पर बारिश की बूंदें जमा हैं और सामने से आता प्रकाश किसी वाहन की हेडलाइट है।

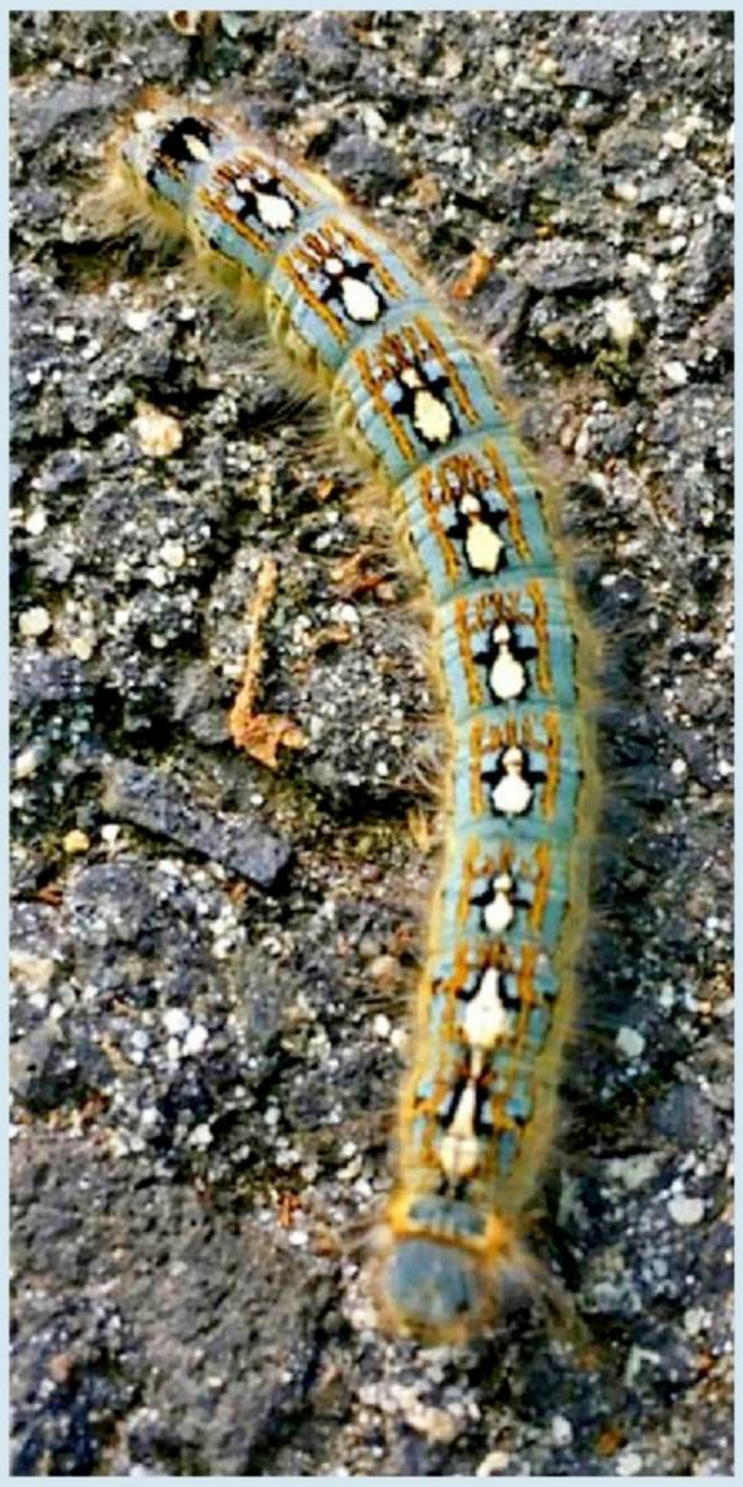

पेंग्विन स्वेटर...

इस फ़ॉरेस्ट टेन्ट कैटरपिलर मॉथ की बनावट ऐसी है कि मानो उसने पेंग्विन चित्रित स्वेटर पहन रखा हो।

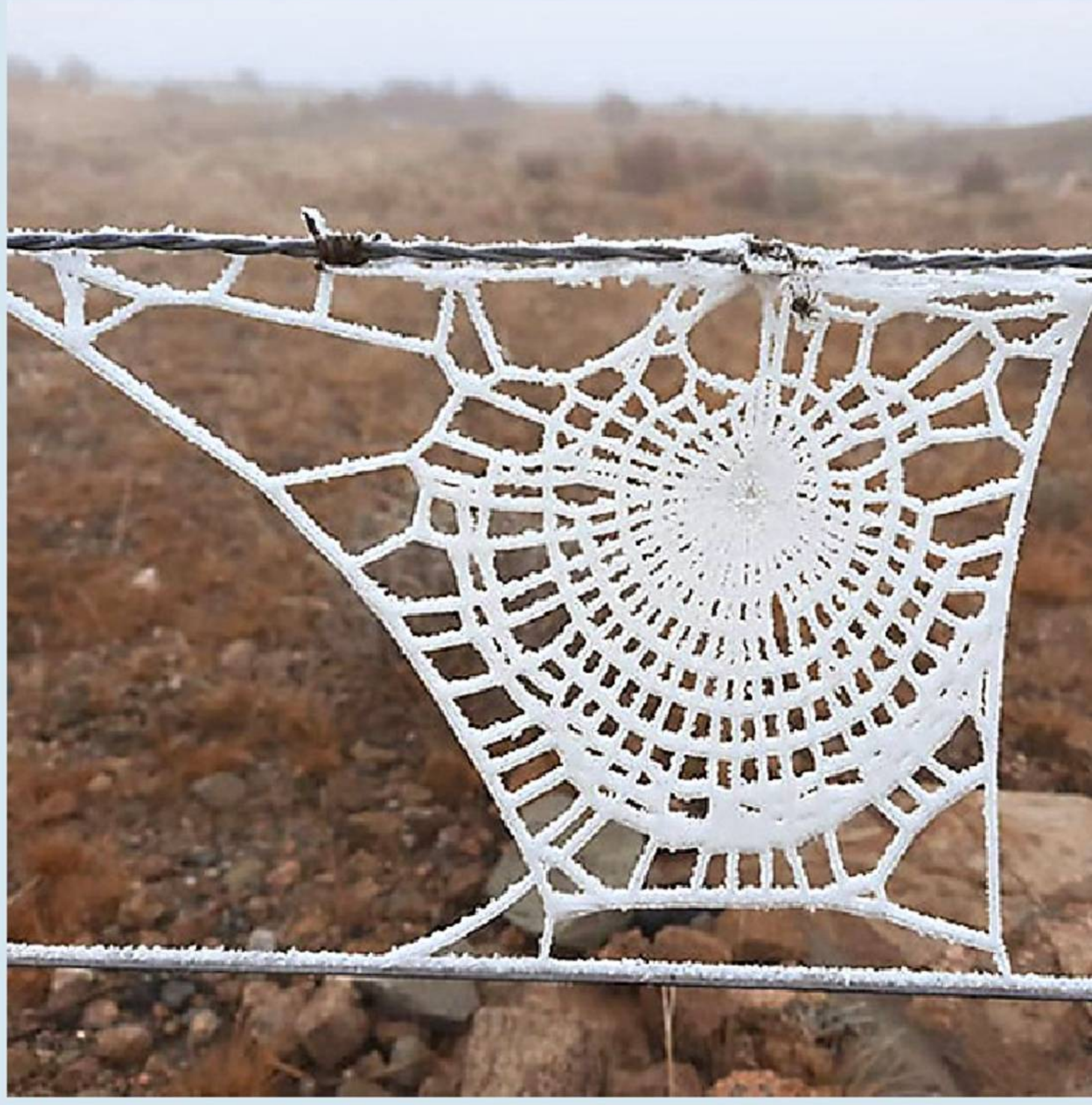

बुनावट...

यह एक मकड़ी का जाल है जिस पर बर्फ़ जमा हो गई है। लेकिन यह किसी दादी-नानी द्वारा की गई बुनाई की तरह दिखाई पड़ रहा है।

सत्याग्रह

प्रतिरोध का अध्यात्म

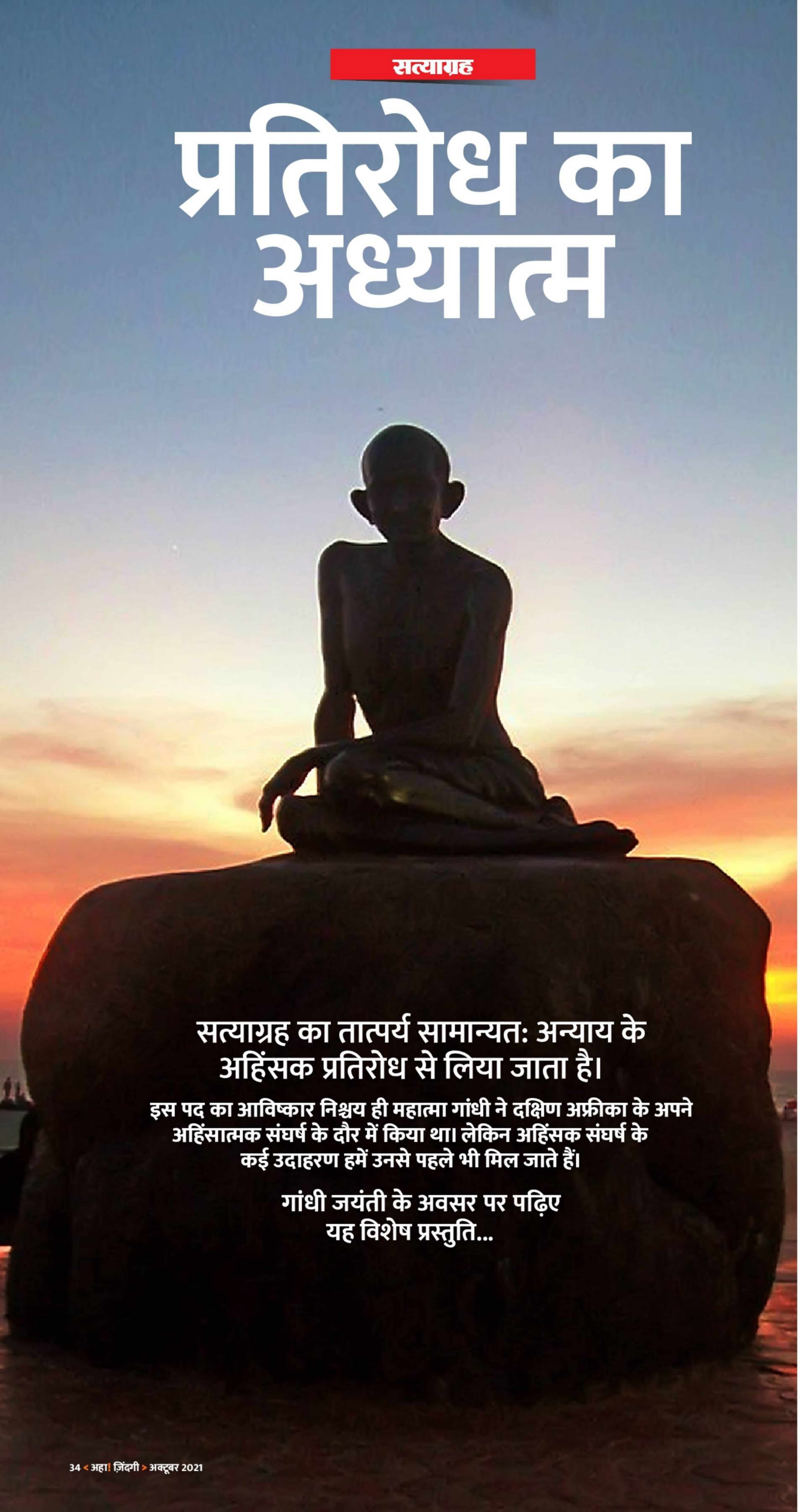

सत्याग्रह का तात्पर्य सामान्यत: अन्याय के अहिंसक प्रतिरोध से लिया जाता है।

इस पद का आविष्कार निश्चय ही महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका के अपने अहिंसात्मक संघर्ष के दौर में किया था। लेकिन अहिंसक संघर्ष के कई उदाहरण हमें उनसे पहले भी मिल जाते हैं।

गांधी जयंती के अवसर पर पढ़िए यह विशेष प्रस्तुति...

• नन्दकिशोर आचार्य

बीकानेर में जन्म और निवास। अनेक विधाओं में सृजनशील और अनेक सम्मानों से विभूषित। अभी तक कविता की बारह, साहित्यालोचना की दो, चिंतन की ग्यारह पुस्तकों सहित दस नाटक भी प्रकाशित। गांधी-चिंतन पर केंद्रित उनकी पुस्तकें सभ्यता का विकल्प और सत्याग्रह की संस्कृति ने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। वे अहिंसा विश्वकोश का सम्पादन भी कर रहे हैं।

महात्मा गांधी से भी पहले अहिंसक प्रतिरोध के कुछ उदाहरण मिलते हैं, जिनमें कुछ सफल भी हुए थे। इनमें दो आंदोलनों का उल्लेख किया जा सकता है।

...

एक है 19वीं शताब्दी के मध्य में हंगरी के लोगों द्वारा किए गए आंदोलन जो ऑस्ट्रिया के राजा फ्रांज़ जोसेफ़ द्वारा हंगरी को ऑस्ट्रिया में मिला लेने के ख़िलाफ़ किया गया था।

दोनों देशों का शासक तो ऑस्ट्रिया का राजा ही होता था लेकिन हंगरी ऑस्ट्रिया का हिस्सा न होकर एक अलग राज्य था। हंगरी के लोगों ने स्वयं को ऑस्ट्रिया में मिला लिए जाने का विरोध करते हुए राजा की आज्ञा को मानना तथा उन्हें कर देना बंद कर दिया और शिक्षा, कृषि और उद्योगों के विकास के लिए अपनी स्वायत्त योजना बनाकर उस पर काम करना शुरू कर दिया।

आंदोलन को दबाने की बहुत कोशिश की गई, लेकिन अंतत: राजा को झुकना पड़ा और हंगरी को उसका अलग संविधान मिल गया।

...

एक अन्य उदाहरण 19वीं सदी में ही न्यूज़ीलैंड सरकार के विरुद्ध माओरी जाति के अहिंसात्मक आंदोलन का है।

1840 ई. में हुए एक समझौते के अनुसार माओरी हितों के संरक्षण की शर्त के आधार पर उस जाति के मुखियाओं ने ब्रिटिश सरकार की संप्रभुता स्वीकार की लेकिन न्यूज़ीलैंड प्रशासन ने माओरी भूमि को राजा के अधिकार में लेकर उसे श्वेत उपनिवेशियों को देना शुरू कर दिया।

माओरी के लोगों ने इसके ख़िलाफ़ सशस्त्र विद्रोह करना शुरू कर दिया। लेकिन उनके एक नेता रोंगोमाई ने अहिंसक पद्धति अपनाने का आग्रह किया। सरकारी अत्याचार से त्रस्त होकर माओरी लोगों ने आंतरिक प्रदेश में जाकर एक नई बस्ती परिहाका बसा ली। जब वहां भी सरकार द्वारा अन्याय किया जाने लगा तो उन लोगों ने सड़क रोकने तथा बाड़ें लगाने का आंदोलन शुरू किया।

जब उस नई बस्ती पर सशस्त्र प्रहार किया गया तो वहां के निवासियों ने एक ओर उसके ख़िलाफ़ धरना दिया तो दूसरी ओर आक्रान्ता सैनिकों के लिए रोटियां भी बनाईं। लंबे संघर्ष के बाद अंतत: उस बस्ती का अपनी तरह से जीने का अधिकार स्वीकार कर लिया गया। यह उल्लेखनीय है कि 1975 ई. में न्यूज़ीलैंड सरकार ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि माओरी मामले में बहुत अन्याय हुआ है। उनके दावों को निपटाने के लिए एक ट्रिब्यूनल का गठन भी किया गया।

सत्याग्रह... प्रतिरोध का अध्यात्म... जारी...

लेकिन अहिंसक प्रतिरोध और सविनय अवज्ञा को एक राजनैतिक अवधारणा के रूप में प्रतिपादित करने का श्रेय वस्तुतः 16वीं शताब्दी के फ्रांसीसी विचारक बोइसी को दिया जाना चाहिए। बोइसी ने ओरलिंस विश्वविद्यालय में डिस्कोर्स ऑन वॉलंटरी सर्विट्यूड नामक निबंध लिखा, जिसमें उन्होंने प्रतिपादित किया कि कोई भी शासन, चाहे वह कितना भी निरंकुश हो, अंततः जनता की सामूहिक स्वीकृति पर निर्भर करता है। उन्हीं के शब्दों में, यदि अत्याचार सामूहिक स्वीकृति पर निर्भर है तो उसे मिटाने का स्पष्ट उपाय उस स्वीकृति को सामूहिक तौर पर वापस लाना है। वे कहते हैं, ग़ुलामी ना करने का संकल्प करते ही तुम तत्काल स्वतंत्र हो जाते हो। वे अत्याचारी के ख़िलाफ़ किसी हिंसक कार्रवाई के बजाय यही मांग करते हैं कि उसकी आज्ञा का पालन करना बंद कर दो। यही अन्याय से असहयोग उसकी सविनय अवज्ञा है।

गांधी की सत्याग्रह अवधारणा पर तोलस्तॉय की अप्रतिरोध की धारणा का प्रभाव स्वीकार किया जाना चाहिए। तोलस्तॉय के अप्रतिरोध का तात्पर्य प्रतिपक्षी का प्रतिरोध न करते हुए भी उसके आज्ञापालन से इनकार करना है, जिसे निष्क्रिय प्रतिरोध भी कहा गया है। तोलस्तॉय का कहना है कि जब हम किसी को प्रेम करते हैं तो उसका प्रतिरोध कैसे कर सकते हैं और ईसा की सीख के अनुसार तो विरोधी से प्रेम करना भी धर्म है लेकिन उल्लेखनीय यह है कि तोलस्तॉय पर भी बोइसी के विचारों का गहरा असर है। उन्होंने अपनी अंतिम कृति लॉ ऑफ़ लव एंड लॉ ऑफ़ वायलेंस में बोइसी के अवदान का उल्लेख किया है।

थोरो के निबंध ऑन सिविल डिसओबिडियंस को भी अवज्ञा की अवधारणा के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। थोरो का मानना है कि हम नागरिक होने से पहले मनुष्य हैं और सत्य क़ानून से श्रेष्ठ है। इसलिए यदि क़ानून सत्य के विरुद्ध है तो मनुष्य होने के नाते उसकी अवज्ञा करना हमारा कर्तव्य है। महात्मा गांधी भी थोरो का उल्लेख करते हैं लेकिन उनका निबंध उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में अपना सत्याग्रह शुरू करने के बाद अपनी दूसरी जेल यात्रा के दौरान पढ़ा था, जिसकी पुष्टि स्वयं उन्होंने कोंदड़ राव को लिखे एक पत्र में की है। लेकिन महात्मा गांधी की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने सत्याग्रह को केवल अहिंसक प्रतिरोध तक सीमित नहीं रखा क्योंकि सत्य का आग्रह केवल प्रतिरोध का आग्रह नहीं हो सकता। प्रतिरोध के रूप में भी तोलस्तॉय और थोरो उसे वैयक्तिक स्तर पर लेते हैं जबकि महात्मा गांधी उसका विशाल पैमाने पर सामूहिक प्रयोग करते हैं। उससे से भी बड़ी बात यह है कि उनके लिए सत्याग्रह रचनात्मक अवधारणा है, जिसका एक अंग अहिंसक प्रतिरोध है।

गांधी के लिए सत्याग्रह दरअसल सांस्कृतिक आध्यात्मिक प्रक्रिया है, जिसकी व्याप्ति मानव जीवन में सभी पहलुओं तक है। संस्कृति सत्य का अन्वेषण है- केवल वैचारिक नहीं, बल्कि अनुभूत्यात्मक अन्वेषण। लेकिन सत्य को लेकर कोई निश्चित एकआयामी धारणा विकसित नहीं की जा सकती। सभी दर्शन और धर्म-संप्रदाय सत्य का दावा करते हैं लेकिन सत्य की उनकी अवधारणाएं इतनी भिन्न, बल्कि विपरीत होती हैं कि हमें उस तत्व की खोज करनी पड़ती है, जो धारणाओं की भिन्नता के बावजूद जीवन को चलाए और हमें एक समान बनाए रखता है। एक तरह से क्या वही सत्य नहीं है? इसलिए महात्मा गांधी अहिंसा को सत्य-स्थानीय स्वीकार करते हैं क्योंकि यही वह साधन है, जिससे धारणाओं और हितों के पारस्परिक विरोध के बावजूद जीवन चलता रह सकता है।

शायद यही कारण है कि सत्याग्रह केवल अन्याय के प्रतिरोध तक सीमित नहीं रहता बल्कि वह अवरोध का बोध भी हो जाता है। सत्याग्रही प्रतिपक्ष के लिए भी एक नैतिक दायित्व का अनुभव करता है, क्योंकि वह भी अपना ही एक रूप है। ऐसा न मानने पर अहिंसा केवल रणनीति मात्र रह जाती है, जीवन-मूल्य अर्थात सत्य नहीं। अहिंसा की अनुभूति जीवन के एकत्व की अनुभूति से निस्सृत होती है, जिसका व्यावहारिक रूप सबके प्रति, यानी प्रतिपक्ष के प्रति भी, दायित्व का निर्वाह करना है। इसलिए जिसे हम अन्य या प्रतिपक्ष कहते हैं, उसके प्रति दायित्व के निर्वाह के बिना जीवन-एकत्व के बोध पर अहिंसा की अनुभूति संभव नहीं होती। महातमा गांधी सत्याग्रह की प्रक्रिया में आत्मपीड़न को केंद्रीय स्थान देते हैं, तब उनका आशय केवल तात्कालिक प्रयोजन में सफलता नहीं, बल्कि अपने नैतिक उत्कर्ष अर्थात उनके मन में भी अहिंसा और न्याय का बोध पैदा करने से होता है।

सत्याग्रह अन्याय का प्रतिरोध मात्र नहीं, बल्कि सत्य अर्थात न्याय की स्थापना की सकारात्मक प्रक्रिया है। इन्हीं अर्थों में सत्याग्रह संस्कृति हो जाता है- एक ऐसी संस्कृति जिसकी व्याप्ति जीवन के सभी पक्षों में होने के लिए हमारी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक संस्थाओं को भी सत्य अर्थात न्याय पर आधारित होना होगा- क़ानूनी न्याय पर नहीं बल्कि उस नैतिक न्याय पर जो जीवन के एकत्व-बोध पर आधारित है- बल्कि अस्तित्व मात्र के एकत्व-बोध पर। अस्तित्व का एकत्व-बोध ही वह आध्यात्मिक बोध है, जिसमें स्व तथा अन्य में अभेद की अनुभूति संभव होती है। सत्याग्रह अन्यत्व को भेद कर अन्य में आत्मानुभूति की प्रक्रिया है। इसलिए विनोबा सत्याग्रही की पूर्व शर्त सत्यग्राही होना मानते हैं।

इन्हीं अर्थों में महात्मा गांधी के उस वक्तव्य को समझा जा सकता है, जिसमें वे भारत की आज़ादी के लिए अपने राजनैतिक संघर्ष के साथ अन्य सभी कामों को भी आध्यात्मिक प्रक्रिया मानते हुए कहते हैं- मैं जो प्राप्त करना चाहता हूं- जिसके लिए प्रयासरत और लालायित हूं- वह है आत्म-साक्षात्कार अर्थात ईश्वर का साक्षात, मोक्ष की प्राप्ति। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मैं जीता हूं तथा चलता-फिरता हूं और अपना अस्तित्व बनाए हुए हूं। मेरे सभी भाषण, समस्त लेख और राजनैतिक क्षेत्र के सभी कार्य उसी लक्ष्य की ओर अभिमुख हैं।

दोहे

हमने सूखी रेत पर तैरा दी इक नाव

दोहे कविता की सबसे देशी विधा है। ये अगर लय में सुनाए जाएं तो समां बंध जाता है। पाठकों के लिए प्रस्तुत है कुछ वैसे दोहे, जिन्हें पढ़कर आप कहेंगे- हां, वज़न तो है।

• मनमीत सोनी

ख़ुद में ही पैदा करे, ख़ुद में ही दे मार।
माटी से बढ़कर नहीं, कोई और कुम्हार।।

दो नैनों के प्रिज़्म से, झांकी मन की धूप।
और गगन पर छप गया, इंद्रधनुष का रूप।।

जीवन जैसे दीप है, धरती जैसे चाक।
ढल जाए तो रोशनी, ढह जाए तो राख।।

छोटी सी इक चोट पर, ढहनी है दीवार।
मन की मन में रह गई, मरना था दो बार।।

आग लगे उस स्वाद में, और पड़े फिर धूल।
जिस खाने में खट गई, औरत एक समूल।।

बादल जब खाने लगे, हद से ज़्यादा भाव।
हमने सूखी रेत पर, तैरा दी इक नाव।।

कविता की इक नाव लो, आओ ज़रा समीप।
इस धरती के ठोस पर, हम पानी के द्वीप।।

धवल पृष्ठ की आड़ में, शाश्वत है कालुष्य।
कविता तो आदर्श है, कवि है एक मनुष्य।।

झाड़ू पोंछा कर दिया, कर दी मिट्टी साफ़।
मां ने फिर से कर दिया, इक आंधी को माफ़।।

अंतर्मन में चल रहा, सबके कोई युद्ध।
सोचें तो हर आदमी, थोड़ा-थोड़ा बुद्ध।।

घर ने पागल कह दिया, दुनिया ने मजबूर।
ख़ुद में घुटकर मर गए, कविता के मज़दूर।।

धरती से आकाश तक, हर वस्तु आश्चर्य।
आंखें कितना देखतीं, होने का सौंदर्य।।

व्याकुल है धरती बहुत, रही देर से सीझ।
छाती में है पल रहा, इक बादल का बीज।।

हम गिनती के लोग हैं, आख़िर के दो-चार।
झूठी करते दुश्मनी, सच्चा करते प्यार।।

पहाड़ों के पड़ोस में

हल्द्वानी से रामगढ़-मुक्तेश्वर और फिर लौटकर आने का यह वृत्तांत है...

जिसमें रास्ते में काठगोदाम, रानीबाग, भीमताल, भवाली, गागर आदि के भी रससिक्त ब्योरे हैं। इन जगहों पर अधिकतर पर्यटक नहीं जाते यानी ये लोकप्रिय नहीं हैं, इसलिए भी इस यात्रावृत्त में ताज़गी मालूम होती है। और भाषा पहाड़ी-कथाकारों सरीखी टटकी और चुस्त।

...पढ़कर मालूम होगा पहाड़ों की हवा को गहरी सांस लेकर सीने में भर लिया हो।

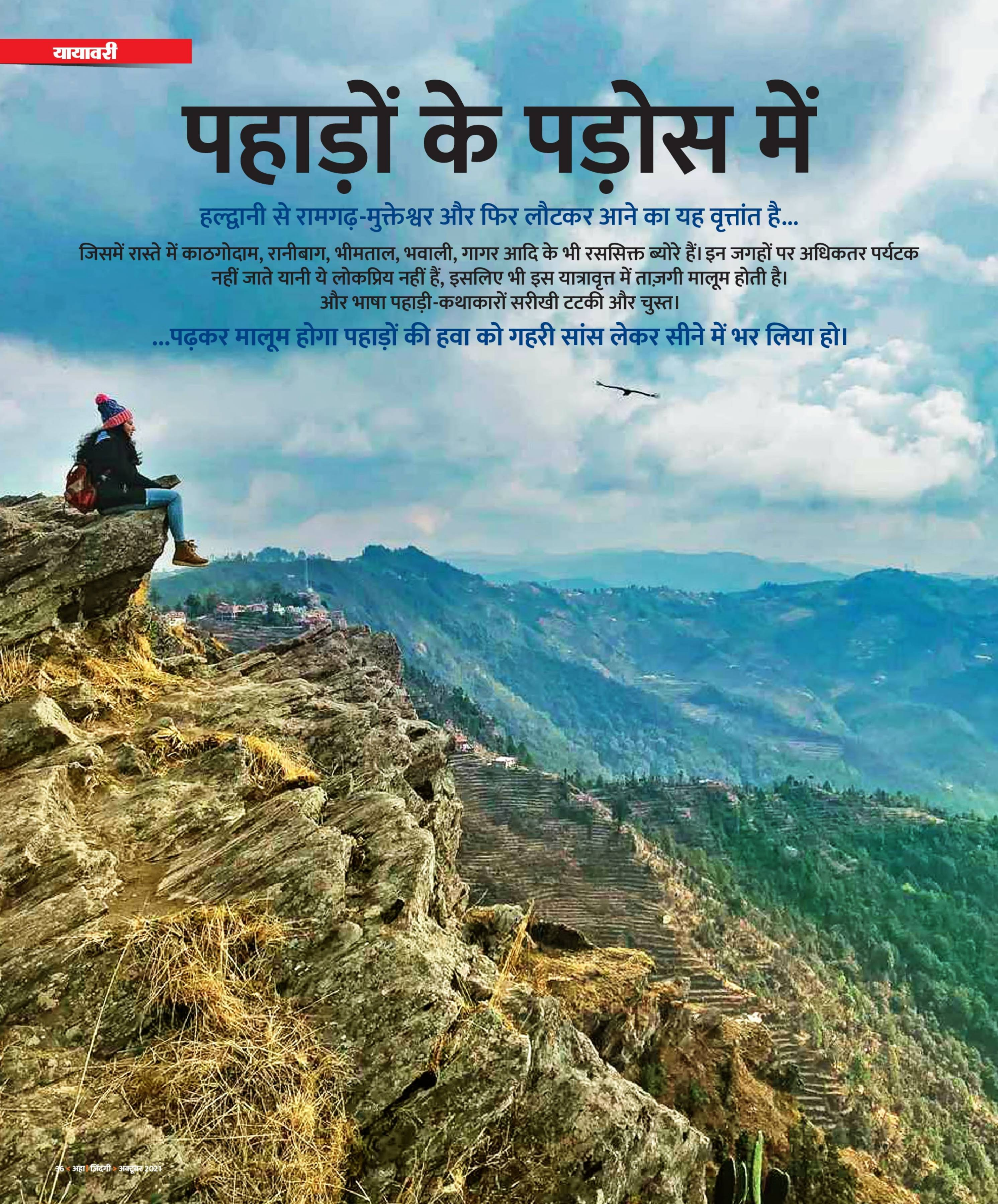

हल्द्वानी
HALDWANI
ہلدوانی

हल्द्वानी, कुमाऊं का प्रवेश द्वार।

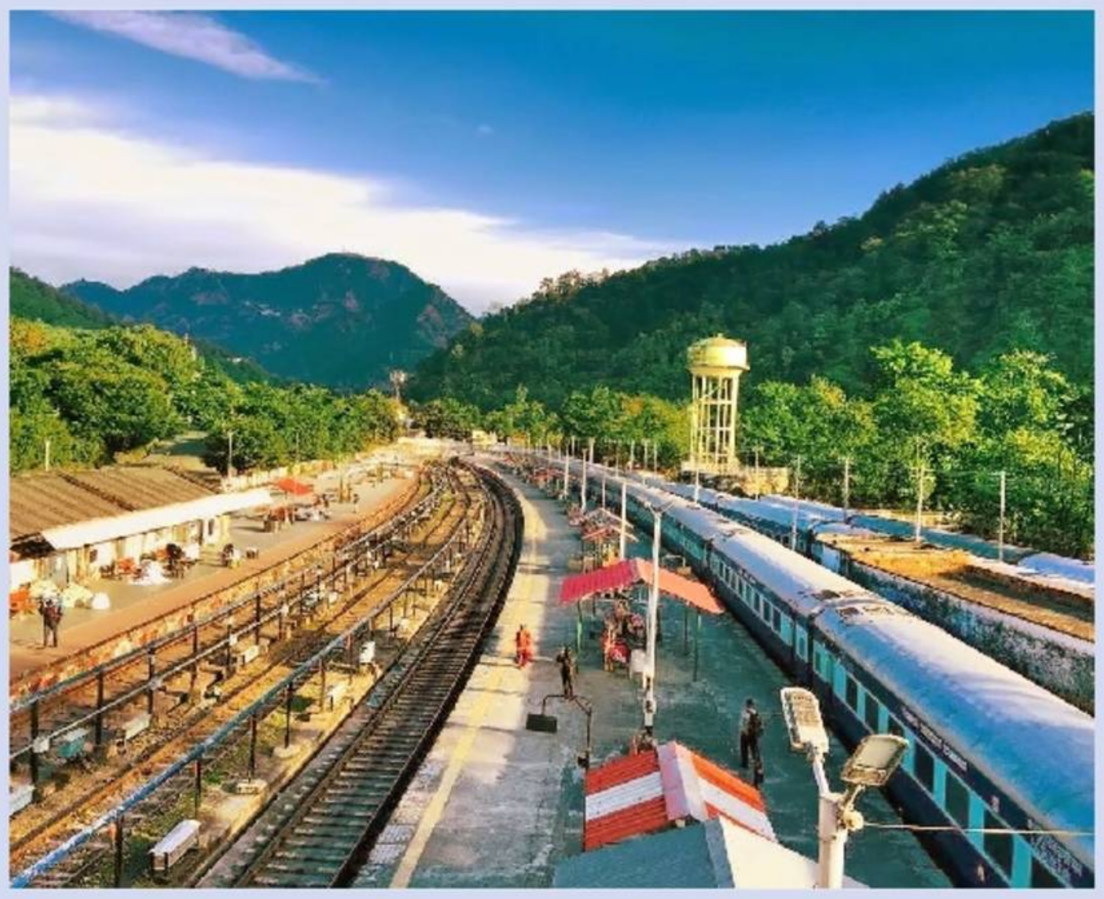

पहाड़ों बीच बसा काठगोदाम स्टेशन।

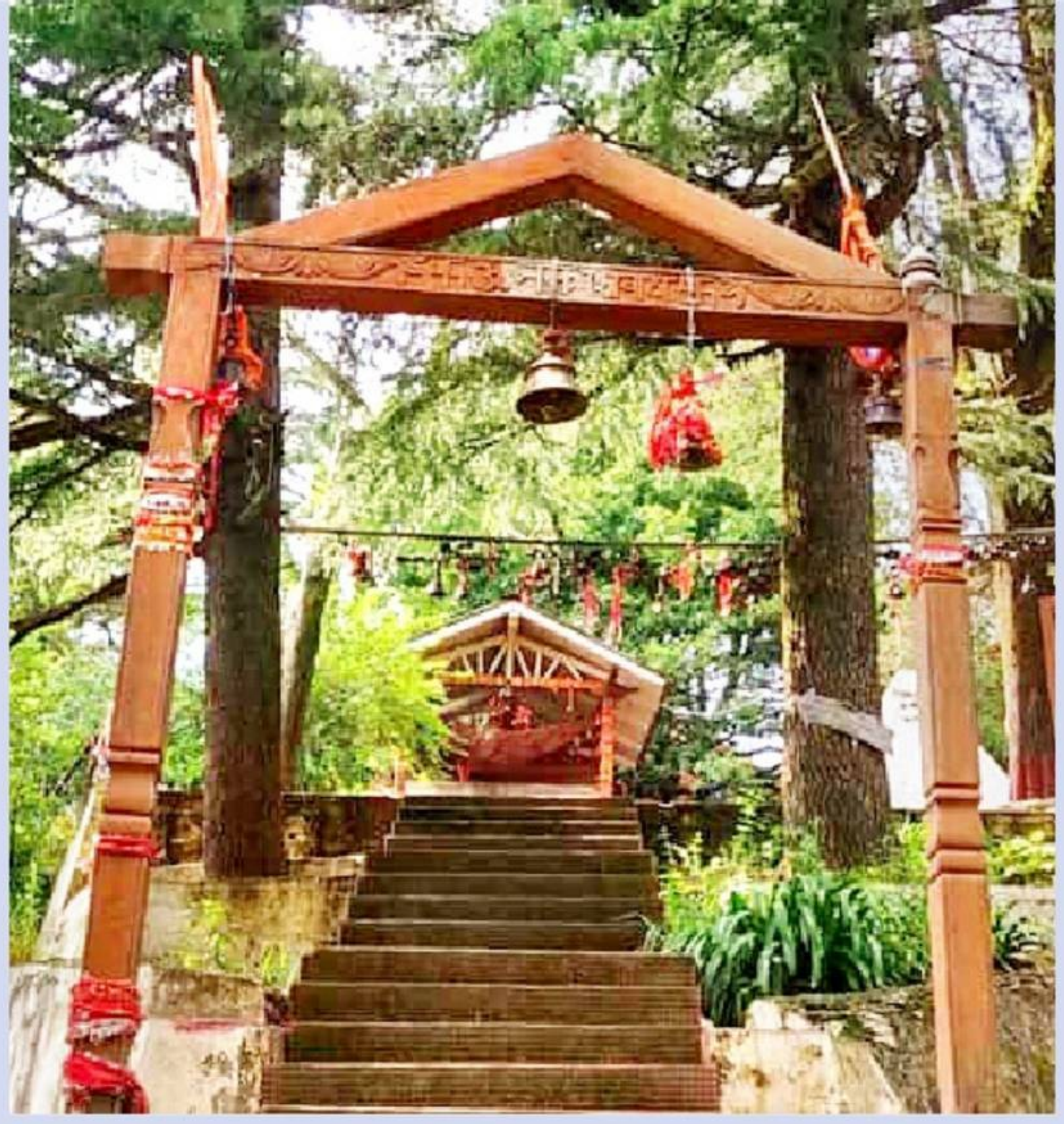

प्राचीन महादेव मंदिर, मुक्तेश्वर

उत्तराखंड की प्राकृतिक सुषमा का भला मैं क्या बखान करूं! यहां जिस रामगढ़ की बात कर रही हूं; वह कुमाऊं के नैनीताल ज़िले में है। हमारे देश में और भी रामगढ़ हैं। हमने हल्द्वानी को बेस बनाकर रामगढ़ और मुक्तेश्वर की यात्रा की योजना बनाई थी। प्रयागराज से बरेली और फिर हल्द्वानी। रामगढ़-मुक्तेश्वर पहुंचने के लिए सर्वाधिक समीप रेलवे स्टेशन काठगोदाम है, इसके बाद बस, टैक्सी से सफ़र तय कर सकते हैं। हल्द्वानी से रामगढ़ की दूरी 57-58 किलोमीटर की होगी, फिर रामगढ़ से मुक्तेश्वर 28-29 किलोमीटर दूर होगा।

सबसे पहले हल्द्वानी

हल्द्वानी, कुमाऊं का प्रवेश द्वार और विशाल मंडी। यहां से कुमाऊं के पहाड़ी ज़िलों अल्मोड़ा, नैनीताल, चम्पावत, पिथौरागढ़ के लिए खाद्य पदार्थ और अन्य वस्तुओं का निर्यात किया जाता है। प्राचीन समय में हिमालय की तलहटी में बसी भोट-लामा जातियां भेड़ों के ऊन का व्यापार कर आपसी लेन-देन की परम्परा यानी वस्तु-विनिमय को समृद्ध करती थीं।

कहते हैं पहले **हल्द्वानी हल्दू नाम के वृक्षों का वन** हुआ करता था, इनके नाम से ही हल्द्वानी नाम का प्रादुर्भाव हुआ। मोटा हल्दू नाम की एक जगह यहां अपने प्राचीन हस्ताक्षर के साथ आज भी विख्यात है। यहां की आबादी उस समय नगण्य थी पर अंग्रेज़ रैम्ज़े साहब ने यहां आबादी को बसाने का कार्य किया। बाद में स्वतंत्रता सेनानियों को यहां सरकार द्वारा प्रचुर मात्रा में भूमि प्रदान की गई।

हल्द्वानी को ग्रीन सिटी का दर्जा भी दिया गया है। यहां मेडिकल कॉलेज वाली सड़क के आसपास साल, पोपलार और सागौन वन के छोटे-छोटे पैचेज़ हैं। हल्द्वानी में शीशम, सागौन के फ़र्नीचर की छोटी-बड़ी कई दुकानें हैं। अनाज उगाने के लिए, प्रेमपुर, आनंदपुर, हिम्मतपुर, बिठुरिया, कटघरिया और गौलापार की उपजाऊ भूमि प्रसिद्ध है। हल्द्वानी अब पहाड़ी गांवों की दुरूह जीवनशैली से पलायन करने वालों के बसने का मुख्य अड्डा भी बन चुका है।

...फिर चले काठगोदाम

जब आप हल्द्वानी से आगे बढ़ते हैं तो काठगोदाम आता है। यहां पहले काठ का डिपो रहा है। हल्द्वानी तराई का क्षेत्र है, अपनी लंबी-चौड़ी कृषि भूमि के अलावा बरेली व रामपुर रोड का टांडा का विशाल वन इस क्षेत्र से लगा हुआ है। अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि तभी काठगोदाम का नाम काठ को जमा करने के संदर्भ में पड़ा होगा।

• प्रतिभा अधिकारी
उत्तराखंड के कौसानी में जन्म। भारतीय प्राचीन इतिहास से एमए। नियमित ब्लॉग लेखन। विभिन्न पत्रिकाओं में कविताएं-हायकू-कहानियां प्रकाशित। सम्प्रति, प्रयागराज में निवास।

मुक्तेश्वर की पहाड़ियां।

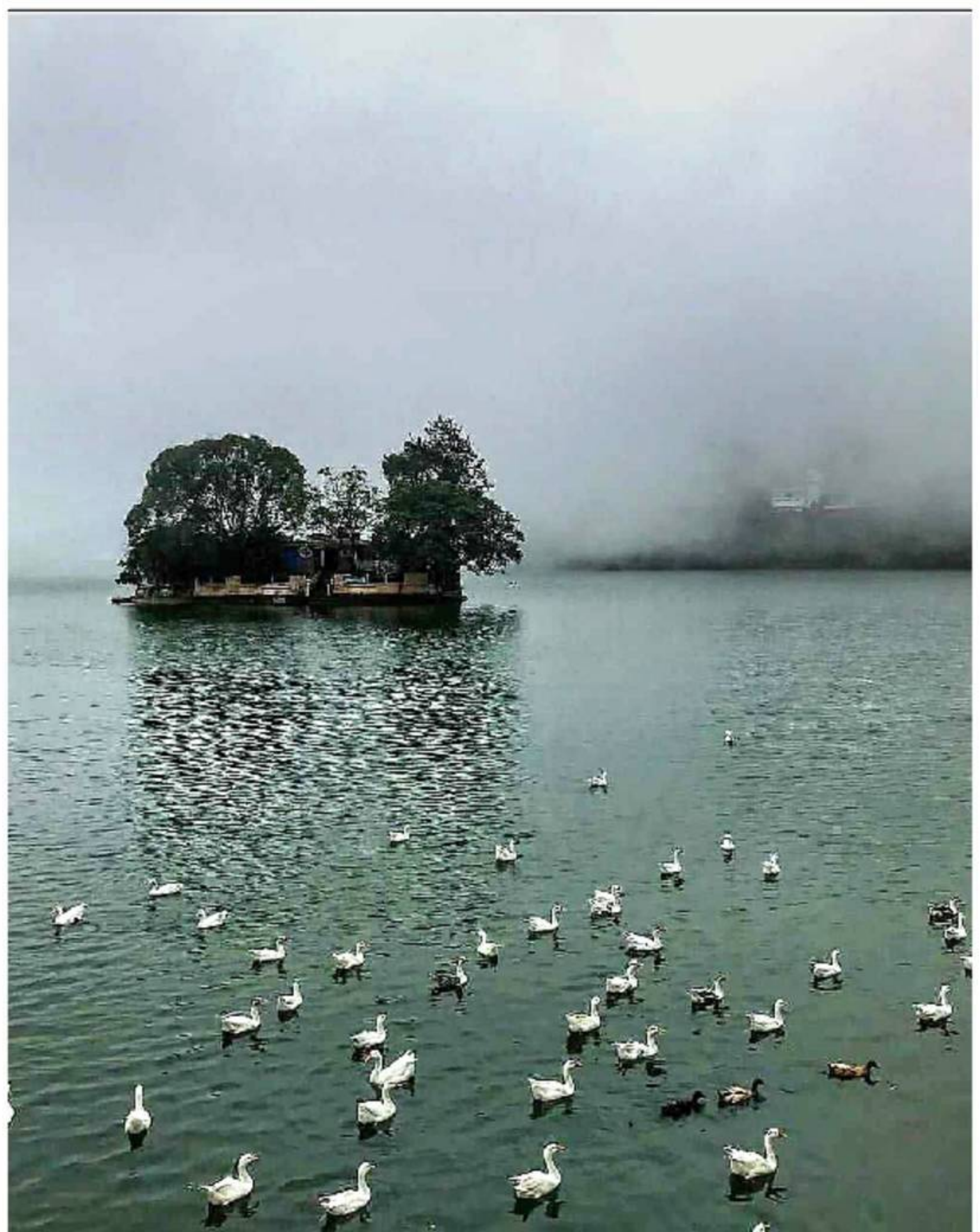

कुमाऊं का यह अंतिम स्वच्छ रेलवे स्टेशन है। यहां से कुछ मुख्य शहरों के लिए रेल सेवाएं हैं। काठगोदाम से आगे बाएं नैनीताल रोड जाती है। यह रोड भी सीधे जाने पर भवाली-अल्मोड़ा मार्ग को मिलती है पर हमने भीमताल वाला मार्ग चुना।

हमारी गाड़ी काठगोदाम पहुंचकर दाईं ओर गौला नदी पर बने छोटे-से पुल की ओर मुड़ गई। यहां से गौला नदी पथरीली और क्षीण जलधारा लिए दिखी। गौला का उद्गम उच्च क्षेत्र गागर में है। कहते हैं इस नदी का नाम गर्ग ऋषि के नाम पर गार्गी था पर कालांतर में यह स्थानीय भाषा के प्रभाव में बिगड़ते-बिगड़ते गौला कहलाने लगी। गौला हल्द्वानी निवासियों की जीविका चलाती है। पुल पार करते ही दोनों ओर घने जंगल हैं। काली मिट्टी और नमी का मेलजोल भला लगता है।

रानीबाग की घाटी

काठगोदाम के बाद रानीबाग नाम की घाटीनुमा जगह आती है जहां दो छोटी नदियों के संगम हैं, ये नदियां पुष्पभद्रा और वही गार्गी/ गौला हैं। रानीबाग़ के बारे में प्रचलित कथा है कि कत्यूरी राजवंश के राजा पृथ्वीपाल सिंह की रानी जिया यहां घूमने आई थी और उसने इन नदियों के संगम में स्नान किया। रुहेला राजा रानी पर मुग्ध था। रानी को क़ैद करने के लिए उसने सेना भेजी पर रानी अपने सती-प्रताप से विलुप्त हो गई। राजा पृथ्वीपाल ने अपनी रानी की स्मृति में यहां बाग़ लगवाया जो कालांतर में रानीबाग़ कहलाया। पहले यह स्थान चित्रशिला कहलाता था।

जैसे-जैसे गाड़ी ऊपर चढ़ती है, दोनों ओर सागौन, साल और अन्य प्रजाति के वृक्षों के जंगल साथ-साथ चलते हैं। विशाल धानी-हरे पत्रों वाले लम्बे वृक्षों को देखते रहने का लोभ बना रहता है। शीतल समीर, स्वच्छ वायु इन सुरम्य पहाड़ियों को और अधिक दर्शनीय बनाते हैं। गाड़ी उकाव पर या ऊपर जा रही होती है और ऊपर से दाहिनी ओर हुलारे/ उतार पर अन्य गाड़ियां रहती हैं। कई बार मोड़ों पर गाड़ियां एक-दूसरे को जैसे छूते हुए निकल जाती हैं। लेकिन शॉर्टकट होने से मुक्तेश्वर, रामगढ़ और अल्मोड़ा जाने वाले अधिकतर वाहन इसी रास्ते का चयन करते हैं।

यायावरी... पहाड़ों के पड़ोस में... जारी...

जारी... यायावरी... पहाड़ों के पड़ोस में...

भीमताल।

रामगढ़ के सीढ़ीनुमा खेत।

अनेक पक्षियों की तुत-तुत, कुहू-कुहू, चियां-चियां के स्वर और हरियाली के बीच इस रास्ते में कई ख़तरनाक मोड़ हैं, पर इस पर सफ़र का अपना रोमांच है। गाड़ी ऊपर पहुंचकर अब बाएं-बाएं भीमताल के उतार पर उतरने लगी।

अब भीमताल की बात

भीमताल संयोग से अपना ननिहाल भी है। यहां की झील बहुत बड़ी है, यद्यपि अब इसमें भी सिल्ट व खरपतवार जमने से इसका आकार सिकुड़ता जा रहा है, पर अपने आकार के ही कारण यह भीमा से भीमताल कहलाई है। एक अन्य जनश्रुति है कि यह तालाब पाण्डु पुत्र भीम ने बनवाया था। तालाब की ओर उन्मुख वृक्ष इस झील का सौंदर्य द्विगुणित करते हैं।

एक ओर आबादी और एक ओर वृक्ष झुरमुटों, लता-द्रुमों से आच्छादित यह झील सुंदर और गहरी काई रंग की दिखती है। इसके केंद्र में एक छोटा-सा टापू है जो झील को अतिरिक्त सौंदर्य प्रदान करता है। यहां से बाएं निकल गाड़ी फिर भवाली की ओर उन्मुख हुई, रास्ते में महरा गांव भी मिला जो सीढ़ीदार खेतों में बसा है। यहां भी फल-फूलों के मनोरम दृश्य नज़र आते हैं। सामने घाटी की ओर पर्यटकों के लिए स्थानीय और दूर शहर के लोगों ने हट्स और होटल बनाए हैं जो इस पार की सड़क से दृष्टिगोचर होते हैं। अधिकतर घरों के आगे देशी मजेंटा गुलाबों, नीलवर्णी हाईड्रेनजिया, लोकल फलों के वृक्ष हैं। इनसे होते हुए अचानक गाड़ी ने बाईं तरफ़ बड़े देवदारु की पहाड़ी को लांघते हुए नीचे उतर एक भीड़ वाली संकरी जगह में प्रवेश किया, यह भवाली है।

भवाली : फलों का रंगीन बाज़ार

कई साल पहले भवाली मुख्य रूप से टीबी सैनिटोरियम के लिए प्रसिद्ध था/ है। राजयक्ष्मा जैसी बीमारी जब असाध्य थी तब रोगियों को स्वास्थ्य-लाभ के लिए यहां भेजा जाता रहा। गौरा पंत शिवानी ने अपनी कहानियों में इस स्थान को प्रमुखता देकर उत्कृष्ट कल्पनाएं लिखी हैं।

आड़ू का बग़ीचा, रामगढ़।

भवाली को भोवाली/ भुवाली भी कहते हैं। आस-पास के गांव और रामगढ़-मुक्तेश्वर के फलों की बिक्री का यह मुख्य बाज़ार है। यहां चौराहे से एक रोड अलग नैनीताल, हल्द्वानी, एक अल्मोड़ा और एक रोड बाएं से रामगढ़-मुक्तेश्वर के लिए कट जाती है। यहीं से एक सड़क प्रसिद्ध घोड़ाखाल सैनिक स्कूल और कुमाऊं के कुलदेव ग्वाल देवता/ गोल्ज्यू थान के लिए भी जाती है। कुमाऊं बोली में ग्वल/ ग्वाल का अर्थ है रक्षक।

मै भवाली को फलों का रंगीन बाज़ार कहूंगी, सीज़न में यहां लकड़ी की पेटियों में भरे फल सभी दुकानों के आगे सजे हुए सजीव दृश्य उत्पन्न करते हैं; क़िस्म-क़िस्म के विभिन्न फल। पहाड़ी विशिष्ट फल काफलों को टोहते हुए थोड़ी देर यहां रुककर हम लोग अब बाएं रामगढ़ वाली सड़क पर थे।

भवाली से गाड़ी अपनी बाईं ओर बलूतों और देवदार के वृक्षों से आच्छादित रोड पर शनैः-शनैः ऊपर चढ़ती जाती थी। बुरांश, बांज, चीड़, देवदारु से दोनों ओर की गझिन छांह में सड़क लुका-छिपी खेलती आगे बढ़ती जाती है। कुछ बुरांश पुष्प सूखे, लुके-छिपे अपने दाता से लगे अंतिम दिनों की सांसें गिनते मिले, लेकिन कब तक!

अब सुनें गागर गाथा

गागर पहुंचकर ठंडी हवा आपका स्वागत करती है। यहां की ऊंचाई साढ़े सत्रह सौ मीटर के लगभग होगी। यूं समीर का कोई डौल नहीं होता पर हवा के डील-डौल को यहां अपने अनुभव द्वारा चीन्हा जा सकता है।

गागर का अपना पौराणिक महत्त्व है। कहते हैं यहां सिद्ध बाबा गर्गाचार्य हुए थे, ऊपर घने जंगलों में उन्होंने तपस्या की थी इसलिए इस जगह का नाम गागर पड़ा। यहां गागर नाम के बारे में यही कथा प्रचलित है।

उत्तराखंड शिव की स्थली है। शिवलिंग और शक्ति के मंदिर यहां देवभूमि में सर्वाधिक हैं।

गागर में भी ऊपर सीढ़ियां चढ़कर महादेव जी का पुराना मंदिर है। पईयां के पेड़ के नीचे महादेव की भक्ति कर हमने कुछ देर विश्राम किया और फिर रामगढ़ को चल दिए। यहां इस समय एक हल्की शाल लेने लायक़ ठंड थी।

गागर में स्थानीय वस्तुओं की एक-दो दुकानें हैं, जहां जड़ी-बूटी, हर्बल चाय, शहद और हाथ के बुने कुछ ऊनी वस्त्र भी रखे गए हैं। हर्बल चाय और शहद मुझे रुचे। हाथ के बने ऊन के वस्त्र भी सुंदर थे। ऊलेन धागों का मोहक सौंदर्य इसके एक-एक फन्दों को सलाइयों और उंगलियों में लपेटे बिन नहीं जाना जा सकता, कितनी मेहनत और प्रेमपूर्वक ध्यान लगा एक-एक ऊनी वस्त्र तैयार होता है!

अब गाड़ी उतार पर थी। यहां से सम्पूर्ण रामगढ़ का एक नयनाभिराम नज़ारा लिया जा सकता है। बाईं ओर पहाड़ी से ऊपर सड़क छूते अखरोट के हरे घने पत्तों वाले पेड़ जिनके सलेटी तनों के रंग-संयोजन प्रकृति की अनुपम शैली को परिलक्षित करते; हवा के बल से लहरा जाते। घने वृक्षों के सान्निध्य में कार रामगढ़ की सड़क पर जाने लगी।

अहा! एक दीर्घ सांस भरकर इस ताज़ी वायु को हमेशा के लिए फेफड़ों में भर लेने का जी चाहा। काश! प्रयागराज की उमसिया गर्मी में ऐसे शीतल बयार को लिफ़ाफ़े में बंद कर भेजा जा सकता!

यायावरी... पहाड़ों के पड़ोस में... जारी...

गागर।

भवाली।

मल्ला और तल्ला रामगढ़

तल्ला रामगढ़ में फलों के बग़ीचों के साथ-साथ खेती की भूमि भी है। यहां पुराने स्लेट पत्थरों से छाई हुई छतें और बड़े पत्थरों के आंगन वाले कुमाऊं के आम घरों वाले गांव हैं। यहां पथरीली भीड़े यानी सीढ़ीदार खेतों की दीवारों पर अखरोट के पत्तों की सरसराहट सुनी जा सकती थी। इन खेतों पर आड़ू, खुबानी के बग़ीचे होते हैं।

दरम्वालों के सिद्धदेव सैम जी और गंगनाथ जी के प्रसिद्ध थान भी हैं, जो प्रत्येक नवांकुरों के मौसम में शंख-घंटों की मिलीजुली ध्वनियों और हलवा-पूरी प्रसाद की चिर-परिचित सुगंधों से आबाद होते हैं। जाग/जागरण जागर की परम्परा ईश्वर का आह्वान करने को कहते हैं। कुमाऊं के क्षेत्र में अपने इष्ट की आराधना और स्वयं की कठिनाइयों के निराकरण के लिए जागरण का आह्वान किया जाता है।

हम लोग रामगढ़ में जैसे ही उतरे, नेत्र एकटक बग़ीचों के घुंघराले पत्तों वाले आड़ू के पेड़ों और फलों को ताकते रह गए। आड़ू ऐसे स्वस्थ और ललछौहे कि वृक्ष से तोड़ने के बजाय उनको देखते रहने का मन करे।

मल्ला रामगढ़ में लेखक शैलेश मटियानी के नाम का पुस्तकालय है। वहीं हिंदी की मीरा कही जाने वालीं महादेवी का भी यहां एक पुराना बंगला है। इलाहाबाद के शहरी कोलाहल से दूर अक्सर जेठ की गर्मियों में महादेवी जी यहां प्रवास पर आ जातीं और चिंतन करती थीं। शैलेश मटियानी पुस्तकालय में केवल केयर टेकर हाज़िर थे। गुरुदेव भी यहां आए थे। रामगढ़ की एक पहाड़ी अभी भी टैगोर टॉप के नाम से प्रसिद्ध है।

यहां बड़े बरामदे और ढालू छत के पुराने बंगलों का सौंदर्य भी कम नहीं! पुराने कलात्मक बंगलों की लाल-हरी छतें मन मोहती हैं। छतों के कंगूरे वाले डिज़ाइन और बारिश का पानी उतरने के लिए छतों से पतनाले लगे हैं।

यहां के जंगली फल काफल और हिसालू; जो कि एक जंगली बेरी है, पक गए थे। मल्ला रामगढ़ भी इस समय मुख्यत: आड़ू से लदा रहता था। रेड जून, तोतापरी मुख्य आड़ू हैं। बित्ते भर के वृक्ष भी आपको फलों से लदे मिलेंगे। सेबों में डेलिशियस, जोनाथन और स्वीट ग्रीन सेब के सीढ़ीदार बग़ीचे हैं।

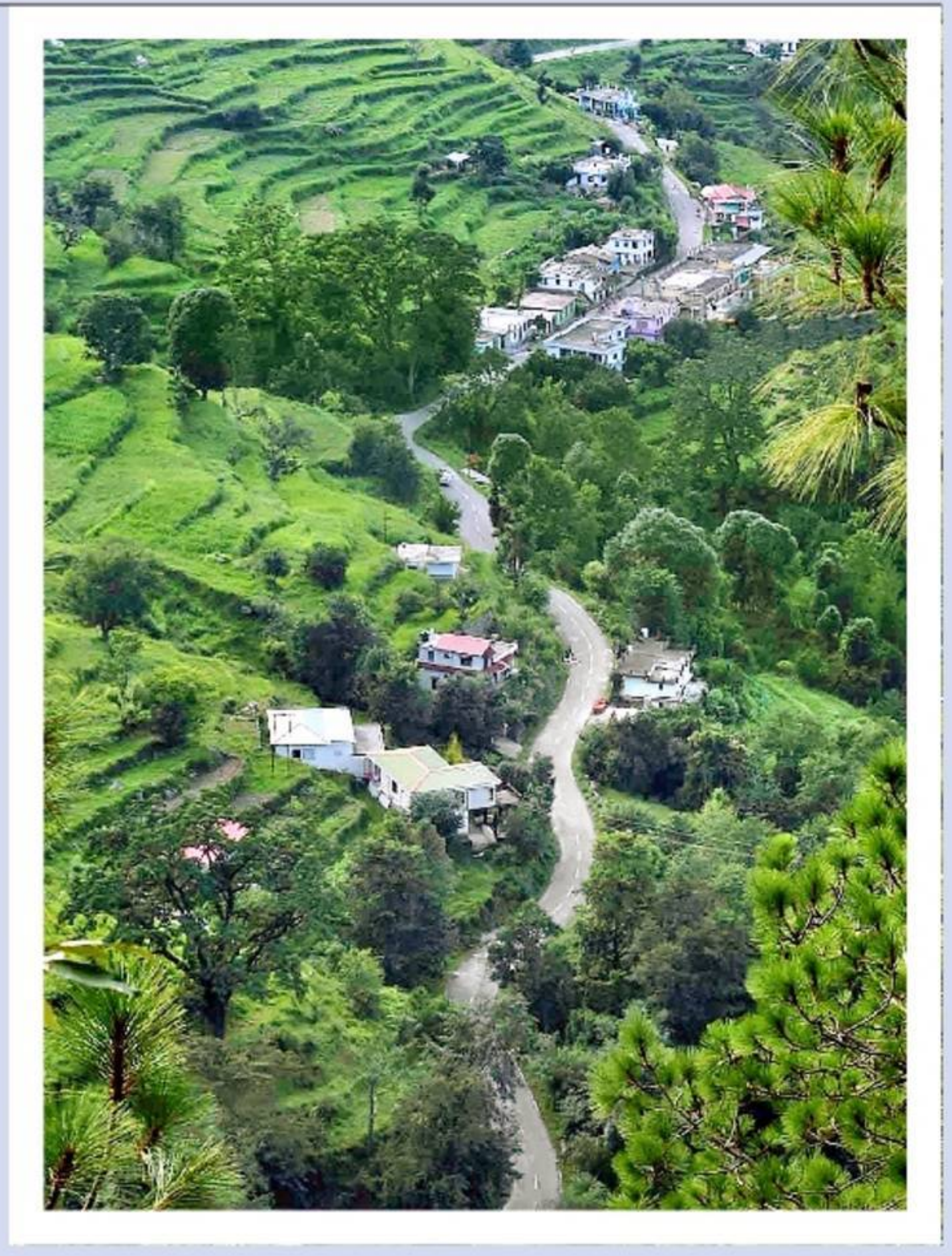

रामगढ़।

आड़ू के बग़ीचों का सौंदर्य, नीला स्वच्छ आकाश और दौड़ते बादल चिंतनशील पर्यटक को दार्शनिक बनाने को काफ़ी हैं।

होटल में गुलाबी छोटे-छोटे देशी गुलाबों की एक बेल संपूर्ण दीवार को ढके हुए थी। मन ही मन इस बेल को प्रयाग ले आने के झूठे मंसूबे बांधने लगी पर सोचकर चिंताग्रस्त हो गई कि वहां की भीषण गर्मी में इस देशी-बेल की कल्पना करना भी बेमानी है, कुम्हलाकर सूख नहीं जाएगी यह कोमलांगी पहाड़न!

और अंततः मुक्तेश्वर

मुक्तेश्वर अधिक ठंडा मनोरम हिल स्टेशन है। यह नैनीताल ज़िले में आता है; जो समुद्र तल से साढ़े सात हजार फ़ीट की ऊंचाई पर स्थित है।

हम हल्द्वानी से भीमताल रोड पर भवाली/ भोवाली होते हुए रामगढ़ आए थे। गागर पर आगे चलकर रोड मुक्तेश्वर के लिए दाहिने कट जाती है, पर हम नीचे रामगढ़ चले गए थे।

तो हम पहले मेन रोड को जॉइन करते हैं और फिर मुक्तेश्वर वाली रोड पकड़ते हैं। यहां से होता है ऊंचाइयां चढ़ने का सिलसिला शुरू। प्रॉपर मुक्तेश्वर पहुंचने के लिए आपके बाएं गहरी और डरावनी खाइयां हैं, नीचे देखने पर अहसास होता है कि आप कितने ऊंचे पहाड़ पर हैं। सड़क अच्छी है पर पतली, नीचे देखने पर सिहरन होती है- ठीक वैसे ही जैसे मुन्सियारी की ऊंचाइयां चढ़ने पर होती है। कभी-कभी हृदय बैठा-सा जाता है।

ख़्याल आया कि यदि एक बार नीचे गिरे तो मुक्ति यानी मुक्तेश्वर जगह का नाम सार्थक हो जाएगा!

मुक्तेश्वर रामगढ़ से 28-29 किलोमीटर ही दूरी पर है। मुक्तेश्वर मंदिर की ओर गाड़ी फिर चढ़ाई चढ़ती है। नीचे आगे ढलान में देवदारु का पुराना जंगल है और इसके बीच ही वन-विभाग के ऑफ़िस और डाक-बंगले हैं। यहां इंडियन वेटरनरी रिसर्च इंस्टिट्यूट और पुरानी लाइब्रेरी भी है। सामने हिमालय की भरी-पूरी रेंज हैं। यहां प्राचीन महादेव मंदिर भी है। साईं बाबा के उपासकों के लिए भी यहां एक मंदिर और आश्रम है।

यहां इस समय कच्चे पुलमों यानी आड़ू के पेड़ लदे थे। सेब भी बारिश से धुलकर नन्ही-नन्ही काया में वृक्षों से झांकते मिले। अगर आप चिंतन के लिए उपयुक्त जगह के आकांक्षी हैं तो यहां कुछ दिन रुककर ध्यान लगा सकते हैं। स्वयं को खोजने की यह अनुकूल जगह है।

यहां दूर-दूर कुछ गांव दिखते हैं। आबादी कम है। आड़ू और सेब के बग़ीचे यहां कौसानी की तर्ज़ पर हैं। कच्चे प्लम/पुलमों की गुच्छ-क़तारों ने इस समय यहां पुराने ठूंठ वृक्षों पर फिर से यौवन लिख दिया था। बुलबुल, गौरेया, लमपुछड़िया, तोता, हमिंग बर्ड, सनबर्ड देखनी हैं तो प्रातःकाल जल्दी जागकर शांत होकर अपने आस-पास इनकी क्रियाशीलता देखी जा सकती है। अब हम वापस इसी रोड पर रामगढ़ की ओर चल दिए। उसी होटल में फिर अपना ठिकाना बनाया। सादे खाने का ऑर्डर देकर बतियाने लगे, बाहर बरखा का संगीत ज़ोरों पर था।

रामगढ़ और मुक्तेश्वर में आपको अधिक पर्यटक नहीं मिलेंगे। अत: शांतिप्रिय लोग और लेखन से जुड़े व्यक्तियों के लिए यह जगह स्वर्ग है।

दो दिन रामगढ़ रुककर हम वापस अपने अड्डे हल्द्वानी लौट आए।

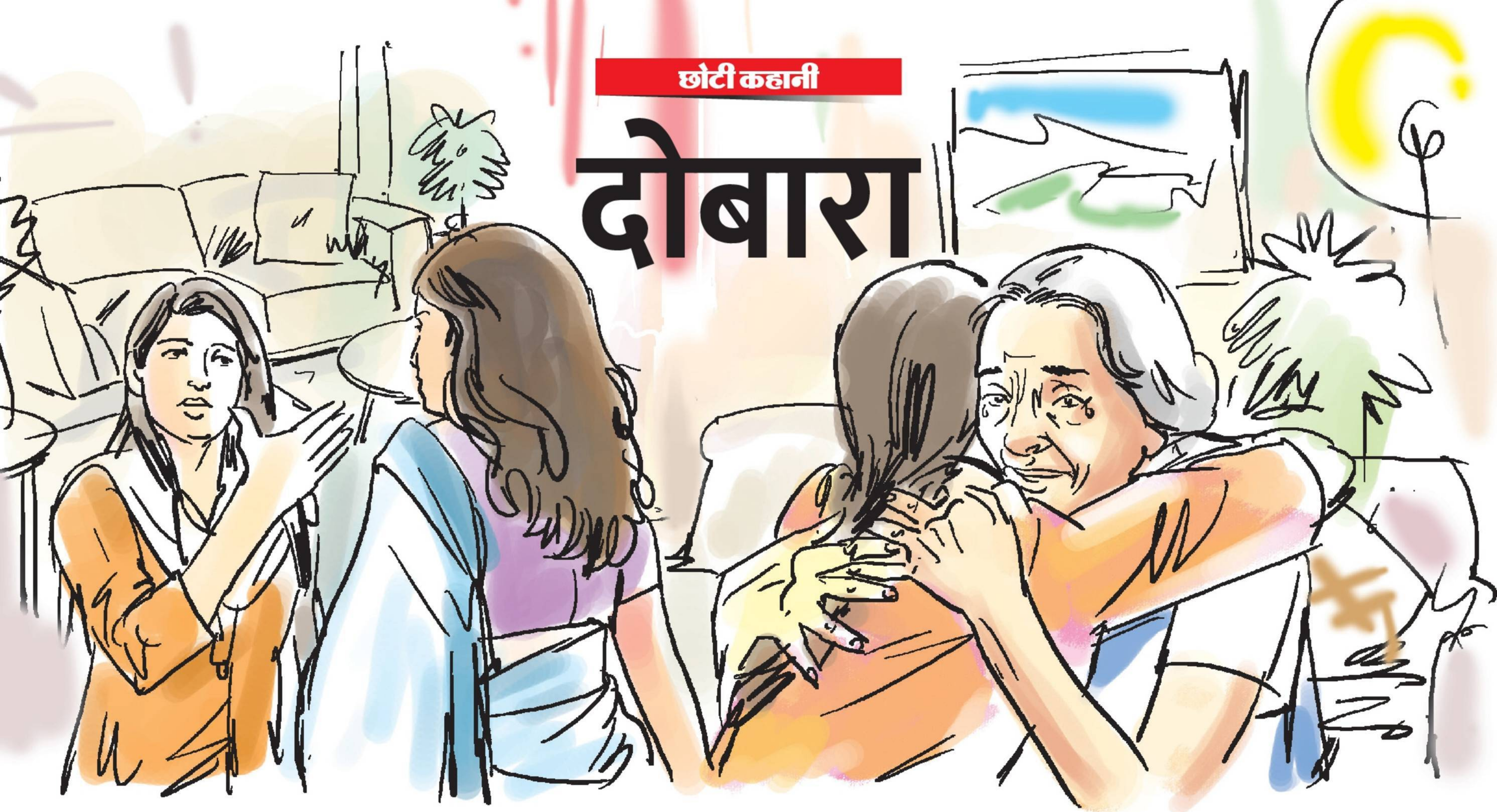

छोटी कहानी

दोबारा

जीवन की आपाधापी में, ज़िम्मेदारियों के बोझ तले, कई बार हम अपनों से दूर हो जाते हैं, पास रहकर भी उनके क़रीब नहीं रह पाते।

लेकिन

ऐसा भी नहीं है कि हमारे पास उनके लिए ज़रा भी समय नहीं होता, या हम चाहें तो समय निकाल नहीं सकते।

• अर्चना आनंद भारती

'मां कितनी अजीब हो गई हैं आजकल। बिल्कुल बच्चों की तरह ज़िद्दी, हर समय साथ रहने, आने की ज़िद, मेरे साथ खाने की ज़िद... वो समझती क्यों नहीं कि मैं नौकरीपेशा हूं, गृहिणी नहीं।

'एक तो ऑफ़िस के तमाम पचड़े, ऊपर से इनके नखरे- नौकरीपेशा स्त्रियों को दोहरी ज़िम्मेदारी निभानी पड़ती है न? वो तो अच्छा है कि मैं काम करती हूं वरना शादीशुदा बेटी के घर में रहना इतना आसान नहीं होता। मां अगर अपने आत्मसम्मान के साथ यहां रह रही हैं तो इसलिए कि मैं कमाती हूं वरना विधवा सास भला किस दामाद को सुहाती है? वो भी जिनके पास कोई चल-अचल संपत्ति नहीं! कोई कुछ भी कह ले, इस पितृसत्तात्मक समाज का यही सच है।

'वो तो ठीक है कि नरेन मेरे मामलों में हस्तक्षेप नहीं करते वरना मैं इतना सबकुछ कैसे संभाल पाती?

'पर नीता जीजी तो कुछ समझना ही नहीं चाहतीं, उन्हें लगता है कि मैं मां के साथ आजकल सही व्यवहार नहीं करती। अरे इतनी ही फ़िक्र है मां की तो उन्हें अपने साथ क्यों नहीं ले जातीं? आज जीजी आई हैं छुट्टियां मनाने, अब बस उपदेश दे-देकर मेरा सर खा जाएंगी।'

मैं न जाने क्या-क्या सोचे जा रही थी कि तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई। मैंने आगे बढ़कर दरवाज़ा खोलना चाहा, पर तब तक जीजी भीतर दाख़िल हो चुकी थीं।

'नरेन अभी तक ऑफ़िस से नहीं लौटे नीला?' जीजी ने पूछा।

'नहीं, आज उनकी ज़रूरी मीटिंग है, देर से लौटेंगे,' मैंने बेसाख़्ता कह दिया।

जीजी आराम से मेरे कमरे में बैठ गईं। थोड़ी देर चुपचाप कमरे का मुआयना करती रहीं। हर चीज़ व्यवस्थित ढंग से सजी देखकर जीजी ने फिर कुरेदा-

'इतनी व्यस्तता के बावजूद तू इतना समय निकाल लेती है नीरू?'

'नहीं दीदी, मैं कहां?' मैं हड़बड़ा-सी गई।

'तो?'

'वो मां कर देती हैं न मेरे जाने के बाद सब।'

'मां कितना ख़्याल रखती है न?' जीजी ने कहा। जाने क्यों मुझे जीजी की बातों से ईर्ष्या की बू आई।

'वो घर पर ही रहती हैं तो...' मैंने अस्फुट स्वर में कहा।

'और तू?' जीजी ने पूछा।

'मैं, मैं क्या?' मैंने हकलाए-से स्वर में पूछा था।

'तू मां का ख़्याल रखती है न?' जीजी ने पूछा था लेकिन मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना वो बोलती चली गईं-

'जानती है नीरू, तू घर में सबसे छोटी थी। दादी को पोते की आस थी पर तू आ गई थी। इसलिए उन्हें कोई ख़ास ख़ुशी नहीं हुई। पर मां-पापा ने किसी को भी तुम्हें कमतर आंकने का अवसर नहीं दिया। हर कोशिश की तुम्हें एक क़ामयाब इंसान बनाने की।'

'आप... आप कहना क्या चाहती हैं दी?' मुझे लगा जीजी गृहिणी होने की कुंठा निकाल रही हैं।

'तू ग़लत मत समझ नीरू, मैंने मां को देखा है, कितनी अकेली हो गई हैं पापा के जाने के बाद।'

'मैं मां की हर ज़रूरत का ख़्याल रखती हूं।' मैंने जैसे अपने आप को तसल्ली दी थी।

'जानती हूं कि तू उन्हें ज़रूरत का हर सामान लाकर देती है। पर समय? समय देती है क्या तू उन्हें नीरू?'

बस बात के इसी सूत्र पर मुझे न जाने क्या हुआ था कि मैं एकदम भड़क उठी थी।

'आपको क्या लगता है मैं मां का ख़्याल नहीं रखती? आप जानती भी हो कितनी ज़िम्मेदारियां हैं मुझ पर? और ऊपर से आप मुझे उपदेश दे रही हो! हां, आप जॉब नहीं करतीं न!'

जीजी हतप्रभ हो उठी थीं। कमरे में एक शून्यता व्याप्त हो गई थी। जीजी उठकर चली गई थीं। अगले ही दिन दीदी तड़के-सुबह जाने की ज़िद करने लगीं। मैंने भी उन्हें रोकने की कोशिश नहीं की।

जीजी तो चली गईं पर उनकी बातें गोल-गोल चक्र की तरह मेरे मस्तिष्क में घूमने लगीं। ऑफ़िस में भी मन नहीं लगा और जल्दी घर लौट आई। दरवाज़ा भिड़ा हुआ था, मैं अंदर चली आई। जाने क्यों आज मेरे क़दम सीधे मां के कमरे की ओर मुड़ गए।

मैंने धीरे-से झांका, मां अपने संदूक़ पर थोड़ा झुकी बैठी थीं। वही संदूक़, जो मां अपने साथ एकमात्र संपत्ति के तौर पर लाई थीं। मां के हाथ में कुछ था... अरे, ये तो वही चांदी की कटोरी और चम्मच थे, जिससे मां मुझे बचपन में खिलाया करती थीं और क्रोशिए से बुनी मेरी फ्रॉक... मां हाथ में लिए बुत बनी बैठी थीं।

जाने मेरी आंखों में बचपन से लेकर अब तक के कितने दृश्य तैर गए। मुझे स्कूल के लिए तैयार करतीं मां, मेरी क़ामयाबी पर फूले न समाती मां और पापा के देहांत पर बुत बनीं मां... और आज, आज मां की आंखों में शून्यता व्याप्त थी।

मैं स्वयं को और नहीं रोक पाई, दौड़कर मां के गले जा लगी। मां थोड़ा ठिठकीं, फिर उन्होंने भी मुझे अपने आलिंगन में भींच लिया। उनके बहते हुए आंसुओं ने मेरी गुस्ताख़ियां माफ़ कर दी थीं। और आज सालों बाद मुझे मेरी मां मिल गई थीं, दोबारा।

जीवन का सार है ध्यान

दार्शनिक **जे. कृष्णमूर्ति** ने ध्यान की कोई विशेष विधि नहीं बताई है, क्योंकि उनका मानना था कि...

ध्यान की कोई तकनीक या तरकीब नहीं होती और न ही इसे कोई सिखा सकता है।

यहां वे बता रहे हैं कि ध्यान वास्तव में क्या है।

ध्यान **जीवन की महानतम कलाओं में से एक है- बल्कि शायद यही महानतम कला है।** यह कला संभवत: दूसरे से नहीं सीखी जा सकती- और यही इसका सौंदर्य है।

ध्यान की कोई तकनीक और तरकीब नहीं होती, इसलिए इसका कोई अधिकारी और दावेदार भी नहीं होता। जब आप स्वयं का निरीक्षण करते हुए अपने बारे में सीखते हैं, अर्थात किस तरह आप खाते-पीते हैं, किस ढंग से आप चलते-फिरते हैं, क्या बातचीत और गपशप करते हैं, आपका ईर्ष्या करना, नफ़रत करना- जब आप अपने भीतर और बाहर की इन सारी चीज़ों के प्रति सजग और सचेत होते हैं, बिना किसी काट-छांट के, तो यह ध्यान का ही अंग है।

और यह ध्यान हर जगह और हर समय हो सकता है...

जब आप किसी बस में बैठे हों या जब आप धूप और छाया से परिपूर्ण किसी वनस्थली में टहल रहे हों या जब आप पक्षियों के कलरव-गान को सुन रहे हों या जब आप अपनी पत्नी या बच्चे के चेहरे को देख रहे हों।

अलगाव यानी अशांति

हम शायद ही किसी रोते हुए बच्चे या भौंकते हुए कुत्ते की आवाज़ को या निकट से गुज़रते हुए किसी व्यक्ति की ध्वनि को ध्यानपूर्वक सुनते हों। हम अपने को हर चीज़ से अलग कर लेते हैं, और इसी अलगाव से हम हर चीज़ को देखते और सुनते हैं। यह अलगाव अत्यंत विनाशकारी है, इसलिए कि यही तो द्वंद्व और अशांति की जड़ है। यदि आप पूर्ण मौन के साथ किसी घंटे के बजने की ध्वनि को सुनें तो आप उस पर सवार होकर यात्रा करने लगेंगे- बल्कि ध्वनि स्वयं आपको अपने साथ बहाकर घाटी के उस पार और पहाड़ी के ऊपर ले जाएगी। इसके सौंदर्य का अनुभव तभी होता है जब ध्वनि और आप अलग नहीं हैं- अर्थात जब आप उसी का एक हिस्सा हैं।

ध्यान पृथकता और अलगाव का अंत है- किसी संकल्प, इच्छा या क्रिया द्वारा नहीं, किसी अनचखे सुख की तलाश के ज़रिए नहीं। ध्यान वस्तुत: जीवन से कुछ अलग नहीं है। यह जीवन का सार है, प्रतिदिन के जीने का ही निचोड़ है। दूर कहीं बजती घंटियों को ध्यानपूर्वक सुनना, अपनी पत्नी के साथ राह चलते किसी किसान की उन्मुक्त हंसी को सुनना, साइकिल पर भागी जा रही एक छोटी-सी लड़की के घंटी बजाने को ध्यानपूर्वक सुनना- ध्यान जीवन का यह समस्त रूप है, इसका एक खंड मात्र नहीं। ऐसा ध्यान आपको जीवन की समग्रता के प्रति उन्मुख कर देता है।

ध्यान दैनिक जीवन से कोई भिन्न घटना नहीं है। ध्यान का अर्थ यह नहीं कि आप एक कोने में जाकर बैठ जाएं, दस मिनट ध्यान करें और बाहर आकर एक वधिक बन जाएं- लाक्षणिक रूप से भी और वास्तव में भी। पता नहीं आपने कभी ख़याल किया है या नहीं कि जब आप पूरी तरह से ध्यान देते हैं, तो पूर्ण मौन होता है। उस अवधान, उस होश में कोई सीमा नहीं होती, 'मैं' जैसा कोई केंद्र नहीं होता जो सजग या सावधान हो। वह होश, वह मौन ध्यान की ही अवस्था है।

एकांत में ध्यान

शायद आप जानते हों कि ध्यान कभी भी लोगों के सामने या किसी के साथ या एक समूह में नहीं करना चाहिए। ध्यान आपको केवल एकांत में करना चाहिए, रात्रि की निस्तब्धता में या उषाकाल की नीरवता में। जब ध्यान करें, तो आप पूर्णत: एकाकी हों- बिना किसी विधि और पद्धति का अनुसरण किए, बिना चिंतन-मनन या मंत्र-जप के, बिना किसी विचार और अपनी इच्छानुसार आकार देते हुए। इस एकांत का आगमन तभी होता है जब मन विचार से मुक्त हो जाता है। जब इच्छाएं अथवा कोई चीज़ आप पर हावी होती है जिसके पीछे भागते हुए आपका मन अतीत और भविष्य में भटकने लगता है, तो वहां एकांत नहीं होता। केवल वर्तमान की विराटता में ही इस एकाकीपन का आविर्भाव होता है।

इसलिए एकाकी होकर ध्यान करें। खो जाएं, डूब जाएं और इतना याद रखने की भी कोशिश न करें कि आप कहां थे। आप अनंत एकांत में, प्रेम के सौंदर्य में, निर्दोषता एवं नूतनता में डूबकर ध्यान करें- तब एक ऐसे आनंद का आविर्भाव होता है जो अक्षय और अविनाशी है।

आकाश अत्यंत नीला है, वह नीलिमा जो वर्षा के बाद प्रकट होती है। और यह वर्षा कई महीनों के सूखे के बाद आई है। वर्षा के बाद आकाश धुलकर साफ़ हो गया है और पहाड़ियां आनंदविभोर हो रही हैं, तथा धरती चुप है। पेड़ के पत्ते-पत्ते पर सूर्य की किरणें चमक रही हैं और धरती का एहसास आप अत्यंत निकटता से कर रहे हैं। तो आप अपने हृदय और मन के उन गुप्त स्थानों और कोनों में जाकर ध्यान करें जहां इसके पूर्व आप कभी नहीं गए हैं।

कॉफ़ी...
ऐसा अतुलनीय पेय है, जिसके साथ एक दिलचस्प अतीत जुड़ा है।

कॉफ़ी...
इसका रंग भले ही गहरा होता है लेकिन सुगंध संसार में इस तरह फैली है कि कोई भी इससे अछूता नहीं है।

इसी माह की पहली तारीख़ को कॉफ़ी दिवस मनाया जाता है, इसी अवसर पर यह विशेष प्रस्तुति।

कॉफ़ी कथा

• तेजस्वी मेहता

'यह **एक अत्यंत स्वीकार्य, प्रेरक और स्वास्थ्यवर्धक पेय है।** अक्सर यह शरीर के भीतर जाते ही उत्तेजक, ज्वरनाशक, पाचक और नींद को भगाने वाली औषधि के रूप में कार्य करता है। निद्रा श्रम की शत्रु है। यह पेय हमारे भीतर की कल्पना को परवाज़ देता है जिसके होने से ही हमें कोई स्वस्थ प्रेरणा मिल सकती है। यह पाचनक्रिया को बेहतर बनाता है, जिसके बिना जीवन का सच्चा आनंद संभव ही नहीं है। इसका सेवन उल्लास की ओर ले जाता है। यह पेय बुद्धिदात्री है, उन लोगों के लिए जो इसे पीते हैं और यह कुछ समय के लिए ही सही पर उन लोगों को भी मति देता है, जो कभी-कभी इसे ग्रहण करना पसंद करते हैं। एक छोटी-सी बेरी में इतनी सारी शुभपिपासा डालने के लिए देवलोक को धन्यवाद प्रेषित करती हूं। क्या संसार के किसी अन्य पेय की इससे तुलना की जा सकती है? एक समय यह दवा और आनंददात्री के रूप में कार्य करता है, उसी क्षण यह हमारे मन, शरीर और फ़ंतासी को पोषित कर रहा होता है। विद्वानों के लिए उकसाव, चटोरों के लिए सुपाच्य, सभी पुरुषों के लिए अमृत है कॉफ़ी। जय हो!'

एक बहुत ही पुराने फ्रेंच लेखक ने कॉफ़ी के प्रति अपनी भावनाओं को शब्दों से श्रृंगारित कर, गुणों को विवरणात्मक शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया था। कॉफ़ी के प्रति प्राकृतिक प्रेम को प्रस्तुत करने के लिए क़लम से शब्दों को इस प्रकार विमुक्त कर लेखक निश्चित ही धन्य हो गए होंगे। भला क्या कोई अन्य लेखक किसी भी पेय के प्रति इस प्रकार न्याय कर पाया होगा?

पहाड़ी काहवा बना 'कॉफ़ी'

मार्क **पेंडरग्रास्ट द्वारा लिखित पुस्तक 'अनकॉमन ग्राउंड्स' के अनुसार कॉफ़ी की खोज इथोपिया में हुई है,** जो कि वर्तमान में अफ्रीका का एक वृहत राष्ट्र है। व्यापार के माध्यम से बहुत शीघ्र कॉफ़ी अरब की ओर आ गई।

यह मान्यता है कि पहाड़ों के निकट मदिरा को अरब देशों में 'काहवा' कहा जाता था, इसी से कॉफ़ी शब्द की उत्पत्ति हुई है। कई बुद्धिजीवियों का मत इस प्रकार भी है कि इस अनुपम स्वाद वाले द्रव्य को कॉफ़ी इसलिए कहा गया है क्योंकि यह इथोपिया के 'कफ़ा' राज्य में पाया गया था। इसके अलावा अरबी शब्द 'कव्वा' से भी इसका नामकरण माना जाता है, जिसका अर्थ 'शक्ति' होता है।

सोने के बर्तन में भूनी जाती थी

सोलहवीं **शताब्दी के प्रख्यात रंगसाज़ एड्रियन वैन ओस्टेड द्वारा बनाई गई कॉफ़ी से सम्बंधित तस्वीर को सबसे आरम्भिक माना जाता है।** इसका नाम 'डच कॉफ़ी हाउस' रखा गया था। तस्वीर में पश्चिमी यूरोप के एक कॉफ़ी हाउस का चित्रण है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में कई सारे ऐसे चित्रों का निर्माण किया गया, जो कि वर्षों तक विश्व को कॉफ़ी-शिष्टाचारों और रीतियों के बारे में जानकारी देते आए हैं।

कॉफ़ी की खोज होने के बाद से ही कलाकारों और दस्तकारों ने हर सदी में कॉफ़ी बनाने के विभिन्न बर्तनों को रूप दिया। कॉफ़ी भूनने और पीसने के लिए कांसा, रजत और स्वर्ण के पात्र बनाए जाते थे। कॉफ़ी बनाने और प्रस्तुत करने के लिए जस्ता, कांसा और चीनी-मिट्टी के ख़ूबसूरत बर्तन बनाकर उन पर चांदी से डिज़ाइन की जाती थी।

चॉकलेट से अधिक गाढ़ापन

कॉफ़ी **बनाने की विधि पर तुर्की में अरब-प्रभाव नजर आता है।** वहां एक बार में एक ही कप कॉफ़ी बनाई जाती थी। अधिक मेहमान आ जाने पर भी बार-बार एक-एक कप कॉफ़ी बनती थी। एक छोटा बर्तन लिया जाता था। उसमें लगभग एक इंच तक कॉफ़ी डाली जाती थी और कुछ देर तक आंच दिखाने के बाद पानी मिलाया जाता था। लम्बे समय तक मिश्रण को उबालकर चॉकलेट से भी गाढ़ा कर दिया जाता था और फिर इसे पेश किया जाता था। कुछ समय बाद इस विधि से चीनी भी जुड़ गई और उसके बाद से कॉफ़ी के मीठे स्वाद का प्रसार समूचे विश्व में हो हुआ।

परिवर्तन के नियम को कॉफ़ी ने इतनी आसानी से स्वीकारा है, जितना कि मनुष्य के लिए कभी आसान नहीं था। यही कारण है कि कॉफ़ी का रूप और लुत्फ़ आज इतना बदल चुका है कि वह अपने मूल स्वभाव को अतीत में छोड़ भविष्य की ओर तीव्र गति से बढ़े चली जा रही है।

कॉफ़ी के सेवन के लिए अलग कक्ष

अरब **सूफ़ी महंतों ने शुरुआत में कॉफ़ी का उपयोग मध्यरात्रि की प्रार्थनाओं तक स्वयं को जाग्रत रखने के लिए किया था।** इसे दवा और धार्मिक पेय के रूप में ग्रहण किया जाता था। सोलहवीं शताब्दी तक कॉफ़ी एक लोकप्रिय पेय के रूप में अस्तित्व में आ गई। धनवान लोग अपने घरों में 'कॉफ़ी रूम' का निर्माण करवाने लगे। कुछ समय उपरांत शासकों के लिए कॉफ़ी रूम संकट बन गए क्योंकि इनमें अशिष्ट कृत्य होने लगे।

सन् 1511 में जब मक्का के गवर्नर को पता चला कि कॉफ़ी हाउस में बैठकर उनकी निंदा की जा रही है तो शराब की तरह ही कॉफ़ी को भी उन्होंने नियम विरोधी बता डाला। मक्का के सभी कॉफ़ी हाउस पर बैन लगा दिया गया।

लालित्य का एक मोती

कॉफ़ी **के संदर्भ में विश्वसनीय जानकारी को सन् 1587 में पहली बार एक अरबी हस्तलिपि में अब्द-अल-क़ादिर द्वारा दर्ज किया गया था।** इस पांडुलिपि में उन्होंने कॉफ़ी के उपयोग की वैधता के समर्थन में अपने विचारों को प्रकट किया है। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी तक फ्रांस, इटली और इंग्लैंड के नाटककार और कवि कॉफ़ी पर इतना लेखन कर चुके थे कि लोगों के लिए कॉफ़ी नावाक़िफ़ नहीं बची थी।

एक फ्रेंच कविता में कॉफ़ी के बारे में लिखा है कि- 'दुर्लभ गहनों के बक्से में कॉफ़ी लालित्य का एक मोती है।' सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में अंग्रेज़ी भाषा के प्रतिष्ठित व्यंग्यकार एवं कवि एलेक्जेंडर पोप लिखते हैं कि 'कॉफ़ी, जो राजनेताओं को बुद्धिमान बनाती है, वही दुनिया को अधखुली आंखों से उन्हें दिखाती है'।

कॉफ़ी न पिलाने पर तलाक़

किताब **'ऑल अबाउट कॉफ़ी' में लेखक विलियम एच यूकर्स लिखते हैं** कि पूर्वी देशों में 'बैड कॉफ़ी' नामक एक रीति हुआ करती थी। जिसके अनुसार किसी भी राज्य में ऐसे व्यक्ति को दंडस्वरूप 'बैड कॉफ़ी' अर्थात ज़हर मिली हुई कॉफ़ी का सेवन करवाया जाता था जिसने स्वयं के राज्य या राजा के साथ विश्वासघात अथवा अन्य कोई शर्मिंदगी से भरा कृत्य किया हो।

सोलहवीं शताब्दी के उपरांत तुर्की में कॉफ़ी के प्रति लोगों की दीवानगी का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि कॉफ़ी पीने के लिए लोग क़र्ज़ लिया करते थे। दिनभर में 20 प्याली कॉफ़ी पीना सामान्य बात थी। तुर्की में अधिकांश तलाक़ के मामलों का मुख्य कारण पत्नी को कॉफ़ी देने से किया गया इनकार हुआ करता था। उन दिनों प्रेमी प्रेमिकाओं से यह वादा करते थे कि वे विवाह के बाद उन्हें भरपूर कॉफ़ी पिलाएंगे।

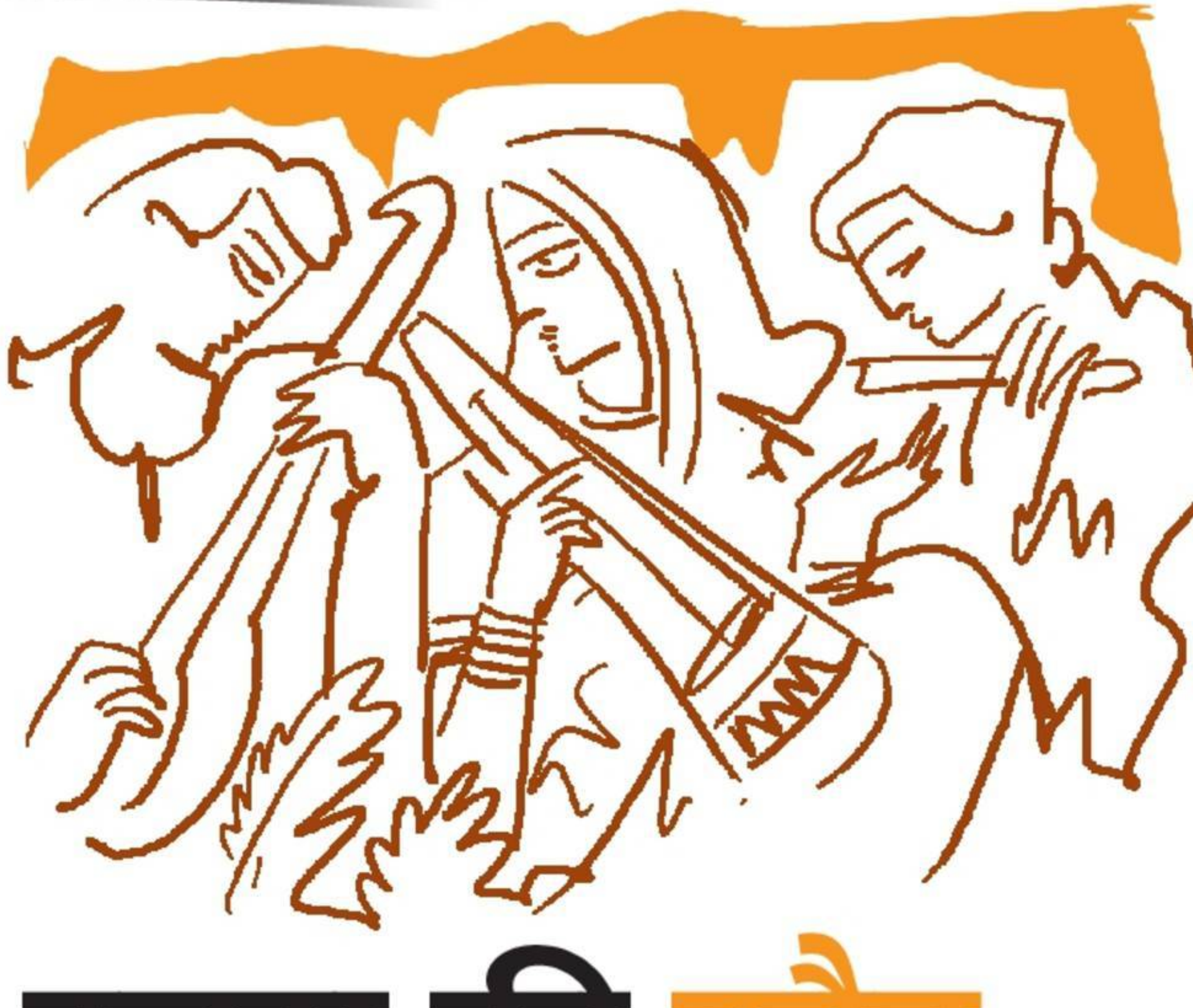

इच्छा की कौन कहे...

गीत-नवगीत का लयछंदपूर्ण दौर अभी बीता नहीं है, वह अब भी पाठकों-श्रोताओं को रस में सराबोर कर सकता है...

इसकी बानगी प्रस्तुत करता एक नवगीत पढ़ें...

• विवेक चतुर्वेदी

छतनारी गाछों की
छिन गई हैं छांह आज
छिने हुए पांखों की
घुटी आह कौन कहे

सूख रही नदियों की
पीर रही अनकही
रेतीले टीलों की
रूक्ष कथा कौन कहे

गुड़ धानी सपने थे
नींद से बिछुड़ गए
जगनारी रातों की
विकल व्यथा कौन कहे

जिन को लिखना था दुःख
सुख में वे लहालोट
होरी की धनिया की
विषम दशा कौन कहे

निर्जन देवाला था
दिया भी न जुड़ा सांझ
अभिशापित देवता से
मन का दुक्ख कौन कहे

ख़ुद ही अब मन अपना
बियाबान हो गया
बांधी हैं इच्छाएं
इच्छा की कौन कहे॥

मान्यता है कि
भारतीय प्राचीन परम्परा में यज्ञ हेतु पशुबलि का प्रचलन था।
किंतु
साक्ष्य और महाभारत की ये पंक्तियां तो किसी और ही दिशा में इस विषय को ले जा रही हैं।

• पद्मनाभ

यज्ञ और पशुबलि

भारत में यज्ञों का प्रचलन कबसे शुरू हुआ उसके बारे में एक निश्चित तिथि तो शायद ही कोई बता पाए। समय के साथ यज्ञ के तरीक़े एवं यज्ञ के उद्देश्यों में यथासम्भव परिवर्तन हुआ भी है।

वैदिककालीन यज्ञों में पशुबलि तक का ज़िक्र मिलता है लेकिन पशुबलि के संदर्भ में महाभारत का यह अंश सभी को पढ़ना चाहिए। इस अध्याय का नाम इस प्रकार है- 'राजा विचख्नु के द्वारा अहिंसा-धर्म की प्रशंसा'।

इस अध्याय में पशुहिंसा एवं बलि के संदर्भ में अहिंसा के बारे में भीष्म, युधिष्ठिर को राजा विचख्नु के प्रसंग के माध्यम से बता रहे हैं–

अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः
संशयात्मभिरव्यक्तौर्हिंसा समनुवर्णिता॥

शांतिपर्व 265.4... अर्थात...

जो धर्म की मर्यादा से भ्रष्ट हो चुके हैं, मूर्ख हैं, नास्तिक हैं तथा जिन्हें आत्मा के विषय में संदेह है एवं जिनकी कहीं प्रसिद्धि नहीं है, ऐसे लोगों ने ही हिंसा का समर्थन किया है।

सुरा मत्स्या मधु मांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम्॥

शांतिपर्व 265.9... अर्थात...

सुरा, आसव, मधु, मांस और मछली तथा तिल और चावल की खिचड़ी- इन सब वस्तुओं को धूर्तों ने यज्ञ में प्रचलित कर दिया है। वेदों में इनके उपयोग का विधान नहीं है।

मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौलरूमेतत्प्रकल्पितम्।

शांतिपर्व 9 1/2... अर्थात...

उन धूर्तों ने अभिमान, मोह और लोभ के वशीभूत होकर उन वस्तुओं के प्रति अपनी यह लोलुपता ही प्रकट की है।

विष्णुमेवाभिजानन्ति सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणाः।
पायसैः सुमनोभिश्च तस्यापि यजनं स्मृतम्॥

शांतिपर्व 265.10, 10 1/2... अर्थात...

ब्राह्मण तो सम्पूर्ण यज्ञों में भगवान विष्णु का ही आदर भाव मानते हैं और खीर तथा फूल आदि से ही उनकी पूजा करते हैं। यानी महाभारत के अनुसार, यज्ञों में धूर्त व्यक्तियों ने पशुबलि का विधान शुरू किया। यह सर्वविदित है कि वेद सबसे प्राचीन हैं और महर्षि वेदव्यास ने ही उनका सम्पादन किया था। यानी महर्षि ने जब महाभारत में इस बात का उल्लेख किया है कि धूर्तों ने मांस का प्रचलन यज्ञों में किया है तो इसका अर्थ यह है कि उस समय तक विकृतियां यज्ञों में आ चुकी थीं, लेकिन साथ ही साथ मनीषियों ने इसका विरोध भी किया।

अब मेध शब्द के संदर्भ में बात करें तो यजुर्वेद के अनुवाद की एक पुस्तक में लेखक की ओर से दी गई इस टिप्पणी पर ग़ौर करना ज़रूरी है–

वेद में मेध 'यज्ञ' का पर्याय है। निघण्टु में यज्ञ के 15 नाम दिए हैं। उनमें 'अध्वर' और 'मेध' भी सम्मिलित हैं। अध्वर का शाब्दिक अर्थ किया जाए तो होता है 'ध्वराति वधकर्मा''न ध्वरः इति अध्वरः' अर्थात् हिंसा का निषेध करने वाला कर्म। मेध शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए धातुकोश में लिखा है–

'मेधृ- मेधा, हिंसनयोः संगमे च'

अर्थात...

मेध शब्द का उपयोग तीन संदर्भों में किया जा सकता है–

1. मेधा संवर्धन **2.** हिंसा और **3.** संगम, संगतीकरण, एकीकरण, संगठन

यज्ञ जब अध्वर हैं तो उस प्रकरण में 'मेध' का अर्थ हिंसा तो हो ही नहीं सकता। 'मेधा-संवर्धन' एवं 'संगतीकरण' के संदर्भ में ही लिया जाना उचित है।

यजुर्वेद तो यज्ञपरक कहा ही गया है। दर्शपूर्णमास, सोमयज्ञ, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणि आदि यज्ञों में यजुर्मन्त्रों का विनियोग होता है।मेध सम्बोधन सहित जिन यज्ञों का प्रकरण यजुर्वेद में है, वे हैं– अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, पितृमेध।

अब यदि मेध का अर्थ वध हो तो पितृमेध किस प्रकार सम्भव है? पितरों के शरीर तो पहले ही समाप्त हो चुके हैं। सर्वमेध में आत्मा को परमात्मा में समर्पित करके मुक्ति प्राप्त करने को सर्वमेध कहा गया है। पुरुषमेध में आदर्श समाज व्यवस्था के अंतर्गत किस प्रकार के व्यक्ति को कहां नियोजित किया जाए, इसका वर्णन है।

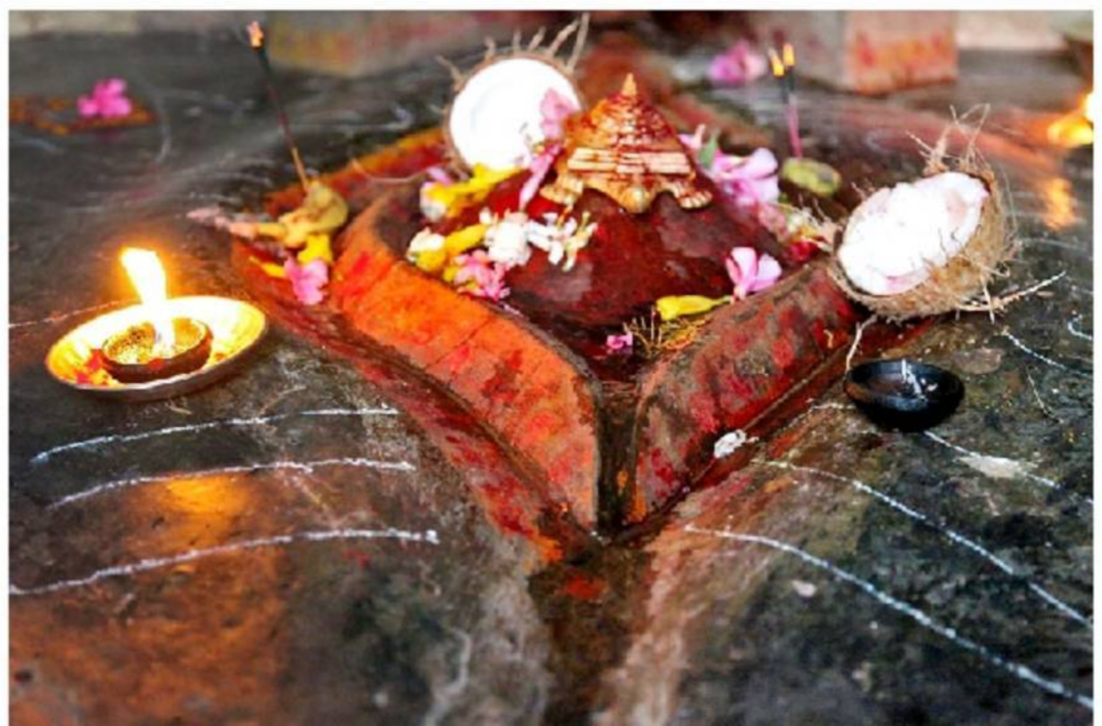

आज हर इंसान की यादों की दराज़ में एक पुराना रेडियो बजता रहता है, दूर से हमें आवाज़ देता हुआ।

दादा का रेडियो

• शिवेंद्र मिश्रा

शाम के समय जब चहचहाकर थक गए पक्षी अपने घोंसलों की ओर लौट रहे होते थे और खेतों से बैलों की घंटियों की आवाज़ वापस अपने घरों की ओर बढ़ रही होती थी, उसी वक़्त दादा का रेडियो किसी सूने-से छप्पर के नीचे गूंज उठता था। रेडियो दादा को वैसा ही प्यारा था, जैसे किसी शायर को उसकी ग़ज़ल। हम तो नौसिखिए थे, दादा के रेडियो की ओर अचकची निगाहों से ताकते रहते। लेकिन दादा उसकी मधुर ध्वनि में वैसे खो जाते, जैसे किसी बाज़ को किसी मीठी धुन पर आसमान में उड़ते-उड़ते नींद आ गई हो।

दादा का रेडियो हम बच्चों के लिए कुछ सीखने का सबक़ होता था। तरह-तरह की सूचनाओं का एक जत्था वह हमारी ओर रवाना कर देता। तब गांवों में टेलीविज़न होते ही कहां थे। अतः समस्त प्रकार के मनोरंजन से लेकर ज़िंदगी की कशमकश से रूबरू कराने का कार्य यह रेडियो ही करता था। दादा के रेडियो में स्वास्थ्य संबंधी समाचार से लेकर नवतरंगित गीतों संग सुमधुर कविताओं का वाचन भी होता था। ख़बर चाहे दिल्ली की हो या बंबई की, बात चाहे बनारस की हो या कलकत्ता की- दादा का रेडियो फर्राटे से उगल देता था।

यह रेडियो चार्ज नहीं होता था इसलिए दादा को उसके चार सेल समय-समय पर बदलने ही पड़ते थे। चार सेल में एक महीने ही चल पाता था रेडियो। एक महीने के बाद गांव की दुकान पर अपने पावर वाले चश्मे के साथ सेल ख़रीदते दादा को बख़ूबी देखा जा सकता था।

उनका रेडियो न बज पावे, ऐसा हो ही नहीं सकता था। जैसे ही रेडियो शाम को कहता- यह आकाशवाणी का लखनऊ केंद्र है, दादा ध्यानमग्न होकर सुनने लगते कि आज क्या हुआ देश में, कौन-सी घटना कहां घटी, नई योजनाएं कौन-कौन सी सरकार ने निकालीं, किसने कितना घोटाला किया, कौन अदालत के चक्कर काट रहा है इत्यादि-इत्यादि। ख़बरों संग कभी वह रेडियो आयुर्वेद के नुस्ख़े बतलाता, कभी खेती-किसानी की जुगत सिखलाता। और रात को नौ-दस बजे के आसपास रेडियो में संगीत बज उठता था।

दादा अब दिखाई नहीं देते। दादा बहुत दूर चले गए हैं- वहां जहां चांद-तारे हैं। जहां मंगल अपने कक्ष में परिक्रमा कर रहा है और शनि अपने उपग्रहों से बतिया रहा है। दादा अब इस पृथ्वी पर कहीं दिखाई नहीं पड़ते। मैं दादा को अक्सर ढूंढा करता हूं। दादा का वो रेडियो कहीं भंगार में तो नहीं बिक गया, यह सोचकर सिहर उठता हूं। आख़िर आज आकाशवाणी की आवाज़ ही कितने मकानों से आती है? लगता है जैसे उन दिनों को बीते सदियां गुज़र चुकी हैं।

फिर भी कहीं कोई रेडियो बजता मिलता है तो मेरी साइकल का पहिया रुक जाता है। मेरी ज़िंदगी कुछ देर वहीं ठहर जाना चाहती है। एक प्रतिबिम्ब उभर आता है, जिसमें दादा पावर वाला चश्मा लगाए रेडियो पर कोई उदास संगीत सुन रहे होते हैं। वह संगीत मुझे बहुत सुदूर से तब पुकारने लगता है।

डार्क मैटर का रहस्य

अंतरिक्ष का 95 फ़ीसद हिस्सा डार्क मैटर और डार्क एनर्जी से मिलकर बना है।बाक़ी का पांच प्रतिशत हिस्सा भौतिक पदार्थों से। **इनमें ग्रह, नक्षत्र, तारे वे सभी आते हैं, जिन्हें हम देख सकते हैं।**

• संकल्प सिंह

वैज्ञानिकों का मत है कि डार्क मैटर और डार्क एनर्जी ही वह कड़ी है, जिसने इस पूरे ब्रह्मांड को एक सिलसिलेवार ढंग से बांध रखा है। इन्हें देख पाना संभव नहीं है, इसलिए इनको समझ पाने का कोई ठोस आधार भी हमें अब तक नहीं मिला है। शोध से पता चला है कि ग्रैविटेशनल बाइंडिंग एनर्जी, जो कि ग्रहों, तारों और आकाशगंगा को स्थिर बनाए रखती है, अगर उसे कैलकुलेट किया जाए तो वह उतनी काफ़ी नहीं होगी कि वह आकाशगंगा को थाम सके। कुछ अज्ञात चीज़ है, जो इन्हें थाम रही है। वरना अब तक गुरुत्वाकर्षण कमज़ोर हो गया होता और सभी ग्रह, नक्षत्र तारे परिक्रमा-पथ से भटक गए होते। पर ये सभी स्थिर हैं। ऐसा क्यों है? ऐसा तभी हो सकता है जब इस ब्रह्मांड में हमारे द्वारा निरीक्षण किए गए द्रव्यमान से पांच गुना अधिक द्रव्यमान हो। यहीं से डार्क मैटर की अवधारणा सामने आई।

येल विश्विद्यालय के प्रोफ़ेसर पीटर डोककुम ने ड्रैगन फ्लाई 44 नामक आकाशगंगा का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि बड़ी आकाशगंगा होने के बावजूद ऐसा कैसे संभव हो सकता है कि इसमें कम तारे हों? कम तारों के साथ भी यह आकाशगंगा स्थिर थी। ये चौंकाने वाला था, क्योंकि तारे कम होंगे तो आकाशगंगा के भीतर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव कम होगा। कम गुरुत्वाकर्षण के चलते तारे आकाशगंगा के भीतर टिक नहीं सकते। वह पथ से भटक जाएंगे और स्ट्रेंज स्टार्स की श्रेणी में आ जाएंगे। डोककुम और उनकी टीम ने अनुमान लगाया कि हो न हो कुछ ऐसा ज़रूर है जो इस आकाशगंगा को स्थिर रख रहा है।

खगोलशास्त्रियों का मानना है कि डार्क मैटर नॉन ब्रायोनिक पदार्थों से बने होते हैं। ब्रायोनिक पदार्थ में इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रॉन आते हैं, वहीं नॉन ब्रायोनिक पदार्थ के विषय में हम कुछ भी नहीं जानते। कुछ वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि डार्क मैटर आकाशगंगाओं का ऐसा समूह हैं, जहां पर भौतिकी के दूसरे नियम काम करते हैं। पर यह एक अनुमान है। इसमें कितनी हक़ीक़त है और कितना फ़साना- यह कोई नहीं जानता।

युवा और बुज़ुर्ग दो ध्रुवों की तरह होते हैं। अब तो बच्चे भी जैसे तीसरा ध्रुव बन गए हैं...

वृद्धों के लिए हमारे परिवारों में जगह नहीं बची है, और यदि वे हैं भी तो उपेक्षित और अकेले...

उनकी अनदेखी से नई पीढ़ी भी अनुभव, संस्कार और संवेदनशीलता से वंचित हो रही है...

हर रिश्ते की तरह समस्या सामंजस्य की है, जिसके लिए मिलकर ही प्रयास करने होंगे...

अड़े न रहें बड़े

• मनोज सारस्वत

प्रेरक वक्ता, परामर्शदाता और मनोवैज्ञानिक। दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञान में परास्नातक। मन और तन पर ध्यान तकनीकों के प्रभाव को लेकर शोधरत। ग्रेटीट्यूड थैरेपी और माइंडफ़ुलनेस मेडिटेशन का प्रशिक्षण देते हैं।

आज **का माहौल देखें तो लगता है कि वृद्ध एकदम से अप्रासंगिक हो गए हैं।** घर में छोटे बच्चे तक उन्हें झिड़क देते हैं, सड़क पर कोई अनजान युवा उनसे अशिष्टता कर जाता है। कामकाजी बच्चों के पास उनसे बोलने तक का वक़्त नहीं है, सलाह लेना और राय-मशविरा तो दूर की बात है। दूसरी तरफ़, वृद्ध हैरान-परेशान हैं।

तेज़ भागते ज़माने के साथ दौड़ना तो असंभव ही है, वे ठीक से चल सकने में भी ख़ुद को असमर्थ पा रहे हैं। उन्होंने जीवनभर अनुभव की जो पूंजी संजोई, नए युग में वह निरर्थक मान ली गई है। भाषा, पोशाक, रीति-रिवाज़, साधन-संसाधन, माहौल-सबकुछ अपरिचित जैसा हो गया है। उपेक्षा और अकेलापन जैसे उनकी नियति हो गई है।

क्या हैं इसकी वजहें?

कुछ तो वही जानी-पहचानी, सदियों पुरानी हैं जो हर दौर में पीढ़ियों के बीच टकराव कराती हैं। इसके अलावा, तेज़ी से बदलते ज़माने के साथ उतनी ही तेज़ी से बदलती सोच, संस्कार, नैतिकता की परिभाषा और ज़रूरतों के चलते बुज़ुर्ग हाशिए पर खिसका दिए गए हैं।

इसका नुक़सान बच्चों और युवाओं को भी हो रहा है। वे वास्तविक जीवन-अनुभव, नैतिकता, संस्कार, संबंधों के सुख और संतुष्टि से वंचित हो चले हैं।

बच्चों-युवाओं और बुज़ुर्गों के बीच बेहतर, सुखद संबंध हों, इसके लिए मनोवैज्ञानिक, पारिवारिक और सामाजिक पहलुओं की पड़ताल करनी होगी। यह एक व्यापक प्रक्रिया है और सकारात्मक बदलाव के सूत्र भी इसी से निकलेंगे।

इस टकराव की जड़ें बचपन में हैं

बच्चा जब छोटा होता है तो चाहे कोई भी चीज़ खानी हो, कुछ भी करना हो या पहनना हो, वह दूसरों पर निर्भर होता है। तब उसके मन में इस निर्भरता से निकलने की ख़्वाहिश बनती है।

जो चीज़ें उसे नहीं मिल पाती हैं, उनके सपने देखने लगता है। धीरे-धीरे उसमें यह धारणा बलवती हो जाती है कि उसकी किशोरवय और जवानी की ऊर्जा सिर्फ़ उसके सपनों को पाने और वह सबकुछ करने के लिए है जो वह बचपन से चाहता था। ऐसे में उसका टकराव अपने माता-पिता या घर के बड़े-बुज़ुर्गों से होना स्वाभाविक है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बच्चा 'आइडेंटिटी क्राइसिस' यानी पहचान के संकट से भी जूझ रहा होता है। वह अपनी स्वतंत्र पहचान चाहता है। इन दोनों मानसिक प्रक्रियाओं के कारण उसमें एक ज़िद, जुनून पैदा होता है, जिसके परिणाम में उसे वह करना है जिसे वो सही मानता है। इस दौर में वह किसी की नहीं सुनता है। कई बार माता-पिता या बुज़ुर्गों की बात उचित व सही होती है पर वह उसे नहीं मानता है और उनके विरोध में खड़ा हो जाता है। इस दौर में जन्मा रिश्तों की कड़वाहट का बीज, समय के साथ वटवृक्ष बन जाता है।

क्या करें

अभिभावकों के लिए आवश्यक है कि वे इस विरोध को उम्र का तकाज़ा मानें। माता-पिता से स्वतंत्र विचार और व्यक्तित्व की चाह रखना विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया है। अतः महत्वपूर्ण विषयों पर आगे बढ़कर मार्गदर्शन दें, कभी-कभार कड़ाई भी करें, हर मामले में माइक्रो-मैनेजमेंट का प्रयास न करें। उन्हें सीखने, प्रयोग करने और समस्या सुलझाने के मौक़े दें। उपलब्धियों के लिए तारीफ़ करें। इससे टकराव पूरी तरह ख़त्म तो नहीं होगा, परंतु संबंध हमेशा के लिए बिगड़ेंगे नहीं।

…

पीढ़ियों का अंतर बड़ी वजह है

जिस प्रकार एक अंतराल पर फ़ैशन बदलता है, वैसे ही विचार, व्यवहार, तकनीक, ढंग और परिवेश भी बदलता है। पहले की तुलना में यह बदलाव अब तेज़ी से हो रहा है। इस कारण दो पीढ़ियों में न चाहते हुए भी अधिक संघर्ष देखने को मिल रहा है।

नई पीढ़ी पुराने ढंग को बदलना चाहती है- स्वाभाविक है कि पुरानी विचारधाराओं, परम्पराओं को तोड़कर- जबकि पिछली पीढ़ी उसे बचाना चाहती है क्योंकि वह बदलाव स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है और मानसिक रूप से समर्थ भी नहीं है। यह एक ही घर में रह रही दो पीढ़ियों के रिश्तों में टकराव की स्थिति को जन्म देता है। नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी को उपेक्षा की नज़र से देखती है जबकि पुरानी पीढ़ी, नई को बिगड़ैल और अनैतिक मानने लगती है। इस संघर्ष में अंततः वृद्ध ही उपेक्षित होते हैं।

क्या करें

इस मामले में एक बार फिर, दोनों पक्षों को सामंजस्य की दरकार होती है। पुराना सबकुछ अच्छा नहीं होता और नया सबकुछ ख़राब नहीं होता, यह दोनों को समझना होगा। बुज़ुर्गों को यह मान लेना होगा कि पुराना दौर जितना भी सुनहरा रहा हो, अब लौटकर नहीं आएगा। इससे उन्हें बदलावों को स्वीकार करने में मदद मिलेगी।

मानसिकता, वास्तविकता से अलग है

हमारा मस्तिष्क चित्र बनाता है लेकिन वह वास्तविकता और उसके संबंध में हमारी सोच के बीच फ़र्क नहीं कर सकता है, ऐसा हम नहीं, न्यूरोसाइंस कहता है।

अगर आप विचार कर रहे हैं कि आप दौड़ रहे हैं तो ब्रेन यही मानता है कि आप दौड़ रहे हैं और उसी हिसाब से प्रतिक्रिया करता है। इसी तरह, लोगों के संबंध में हम अपने अनुभवों के आधार पर धारणा या चित्र बना लेते हैं और उम्र भर उसी के हिसाब से व्यवहार करते हैं। युवा बहुत से कारणों से अपने माता-पिता या बुज़ुर्गों के प्रति विरोधस्वरूप एक चित्र बना लेते हैं, जैसे ये मुझे कुछ करने नहीं देते हैं, मुझे प्यार नहीं करते हैं, मुझ पर विश्वास नहीं करते हैं। माता-पिता भी बच्चों के संबंध में सोच लेते हैं कि हमारा बच्चा तो नालायक़ है, कोई काम नहीं करता है, अपनी मर्ज़ी से चलता है, किसी काम का नहीं है। ऐसे धारणा प्रधान चित्रों के कारण जीवन भर व्यवहार चलता रहता है। दोनों तरफ़ एक-दूसरे की ग़लती निकालने की प्रवृत्ति रहती है। जब माता-पिता वृद्ध हो जाते हैं, युवा परिपक्व हो जाते हैं तब भी उन्हीं पुरानी धारणाओं के कारण व्यवहार चलता है, उस व्यवहार में कोई दया, करुणा, सहानुभूति नहीं दिखाई देती है।

क्या करें

ज़रूरत है कि ऐसी धारणाओं से जितनी जल्दी हो सके, छुटकारा पा लें। यह दोनों पीढ़ियों के लिए आवश्यक है। अभिभावक और संतान किसी भी उम्र में हों, उनके बीच भरोसा होना चाहिए, यह कि 'वे मेरा हित ही चाहते हैं'। इससे कमियां और ग़लतियां निकालने की प्रवृत्ति कम होगी और प्यार व परवाह को महसूस कर पाएंगे। ख़ुद को उपेक्षा या अवहेलना से पीड़ित मानने का भाव भी घटेगा।

…

स्वाभाविक व्यवहार खिझा देता है

जब भी वृद्ध किसी बात को बार-बार पूछते हैं। यह बीमारी के कारण न हो तो इसके पीछे कारण घर के सदस्यों से संवाद स्थापित करना होता है।

छोटी-छोटी बातें उनके लिए महत्वपूर्ण हो जाती हैं। इस चक्कर में उनकी बार-बार की सलाह टोका-टाकी लगने लगती है। पूछताछ उनके लिए बातचीत का माध्यम है। कई बार वे अपेक्षा करते हैं कि कहते ही कार्य हो जाए। ऐसे में वे बार-बार पूछते रहते हैं। इससे युवाओं में खीझ पैदा होती है। इसके अलावा, एक बार बताई गई किसी भी प्रक्रिया को वे सीखते नहीं हैं। कोई भी बदलाव उन्हें अपनी उपेक्षा, अनदेखी या अत्याचार भी लगने लगता है।

क्या करें

यहां बच्चों और युवाओं को खीझने के बजाय वृद्धों की स्वाभाविक चाह को समझना होगा। ठीक है कि व्यस्त जीवन में उनके पास साथ बैठकर गप्पें लड़ाने का समय नहीं है, लेकिन वे छोटी-छोटी बातों से संवाद बनाए रख सकते हैं। जैसे, बच्चे स्कूल या नौजवान ऑफ़िस जाएं तो बुज़ुर्ग को बता दें। बाज़ार से कोई नया सामान लाएं तो घर के बड़ों को दिखा दें। बीच-बीच में उनकी तबियत, नींद आदि के बारे में पूछते रहें। कभी उनसे पूछकर उनकी पसंद का पकवान बना दें।

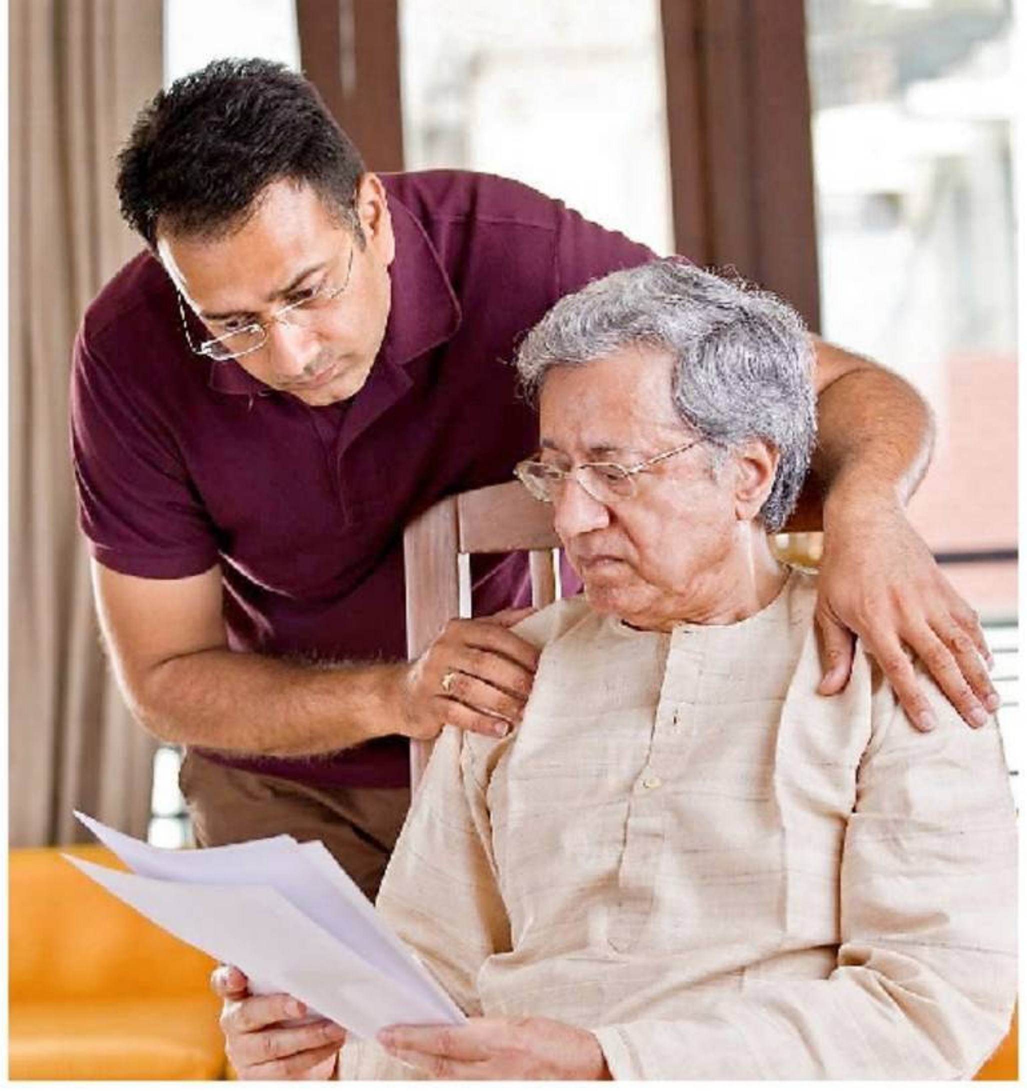

ये कर सकते हैं युवा...

- बिना ठोकर खाए सीखने की प्रवृत्ति पैदा करें और यह तभी संभव है, जब हम बुज़ुर्गों को साथ लेकर चलेंगे, उनसे भी सीखेंगे। युवा यह ख़याल में ज़रूर रखें कि बड़े–बुज़ुर्गों के पास उनसे अधिक जानकारी है, अनुभव है।
- अपने फ़ैसलों में बड़े–बुज़ुर्गों को शामिल ज़रूर करें, साथ ही उनसे सुझाव भी लें।
- ख़रीदारी के लिए जाते समय उनकी ज़रूरतें पूछें और कभी-कभार उन्हें भी अपने साथ लेकर जाएं।
- यदि युवा या दंपती को बाहर कहीं जाना पड़ रहा है तो घर की देखरेख का ज़िम्मा वृद्धों को सौंपें, ताकि उन्हें भी अपनी उपयोगिता का एहसास हो और आत्मविश्वास बने।
- वृद्ध पढ़े-लिखें हो, बीमार न हों तो बिजली–पानी के बिल व पास-पड़ोस के अन्य छोटे-मोटे काम उन्हें ही करने दें, ताकि उनमें सहभागिता का एहसास प्रबल हो।
- पति-पत्नी दोनों कामकाजी हों तो छोटे बच्चे की देखरेख वृद्धों के ज़िम्मे रखें। यह काम उनसे बेहतर कोई नहीं कर सकता। बच्चों को भी उनके आदर-सत्कार की शिक्षा दें।

…

ये कर सकते हैं वृद्ध...

- उनके मामलों में रोकटोक न करें, उन्हें कुछ करके सीखने दें। उनके विचारों की क़द्र करें और उन्हें प्रोत्साहित करें। उन्हें छोटे-छोटे कामों को बार-बार ध्यान न दिलाएं।
- नई चीज़ें सीखने की कोशिश करें। नाती-पोतों के सामने सीखने की उत्सुकता ज़ाहिर करें।
- बुढ़ापे के लिए धन संचय करें। ताकि ज़रूरत बच्चों के आगे हाथ फैलाना न पड़े। त्योहार व ख़ुशियों के अवसर पर सदैव देने की स्थिति में बने रहें।
- दवाइयां समय पर लें, साफ़-सफ़ाई का ध्यान रखें। यदि स्वास्थ्य ठीक हो तो बचत का उपयोग तीर्थयात्रा और पर्यटन के लिए करें। आजकल इसके लिए पैकेज उपलब्ध हैं, जिनमें तमाम सुविधाएं उपलब्ध रहती हैं।

राधेश्याम कथावाचक

भारत के कथावाचक

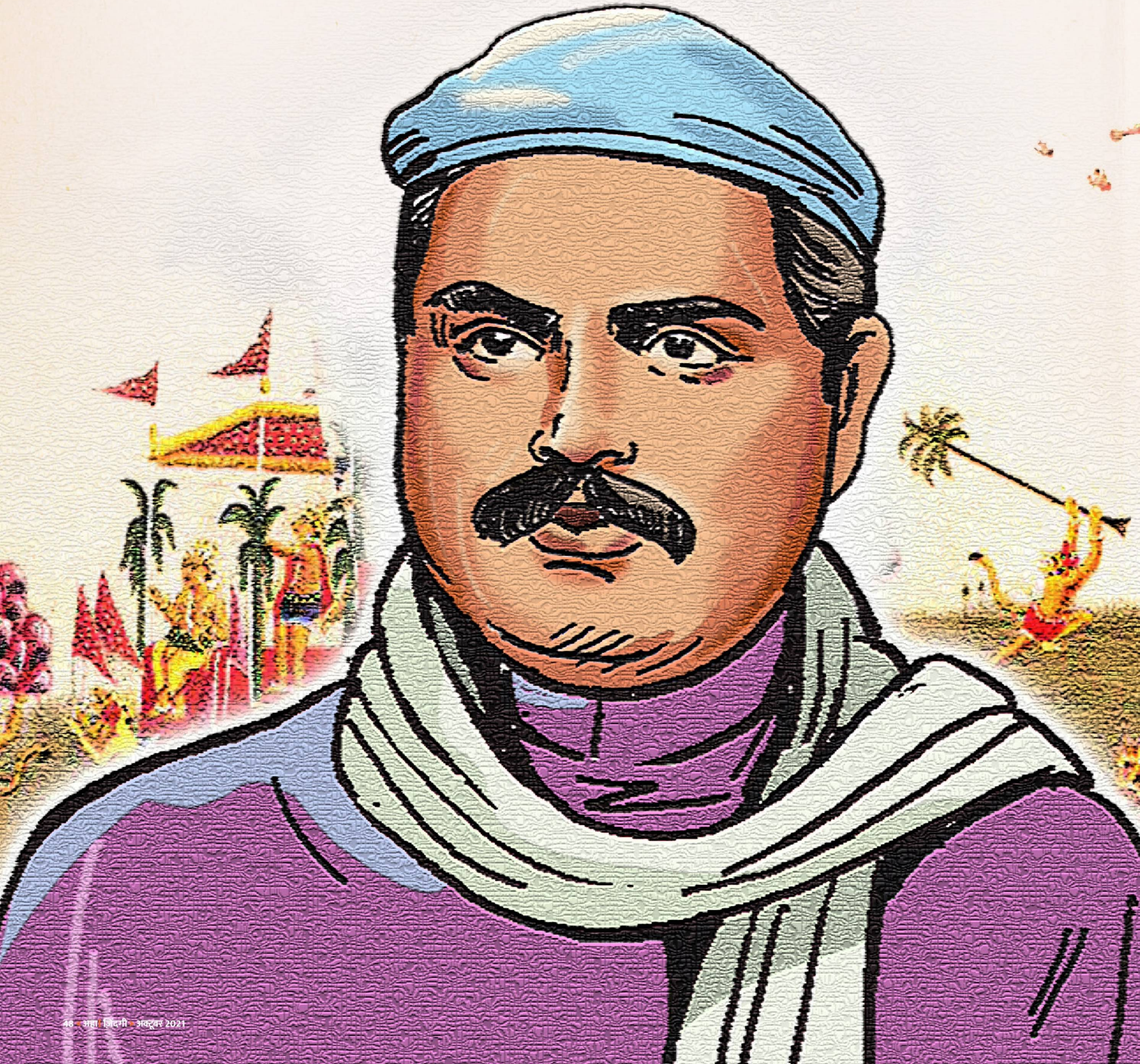

थे तो वे तीसरा दर्जा पास लेकिन उनकी लिखी किताबें विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में लगीं। पुस्तकें छापने के लिए उन्होंने 'राधेश्याम प्रेस' लगाया, जिसमें मुद्रित किताबों की इतनी मांग थी कि उनके घर के परिसर में उनके नाम से ही डाक विभाग को विशेष डाकख़ाना खोलना पड़ा। उनकी लिखी रामायण 'राधेश्याम रामायण' के नाम से संपूर्ण भारत में ही नहीं बल्कि बर्मा, भूटान, नेपाल में भी लोकप्रिय थी।

प्रेमचंद सहित कई प्रख्यात लेखक उनके मित्र थे। राजनीति से जुड़े महात्मा गांधी, मोतीलाल नेहरू, मदनमोहन मालवीय तो सिनेमा से जुड़े पृथ्वीराज कपूर, वी. शांताराम, सोहराब मोदी, पत्रकारिता से जुड़े गणेश शंकर विद्यार्थी, सत्यदेव विद्यालंकार आदि उनके परिचय की परिधि में रहे। वे उस समय के प्रमुख लोकप्रिय जनमाध्यमों यथा- पारसी थिएटर, सिनेमा और पत्रकारिता से संबद्ध रहे और उनमें शीर्ष पर पहुंचे।

ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व राधेश्याम कथावाचक पर इस बार की हमारी यह ज़िंदगी की किताब एकाग्र है।

•अजय कुमार शर्मा

भारतीय जनसंचार संस्थान, दिल्ली से हिन्दी पत्रकारिता में पीजी डिप्लोमा। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता से निरंतर जुड़ाव। वृत्तचित्रों और टेली सीरियल के लिए पटकथा लेखन और निर्देशन सहयोग। दिल्ली स्थित साहित्यिक संस्थान में सम्पादन कार्य।

ज़िंदगी की किताब... जारी...

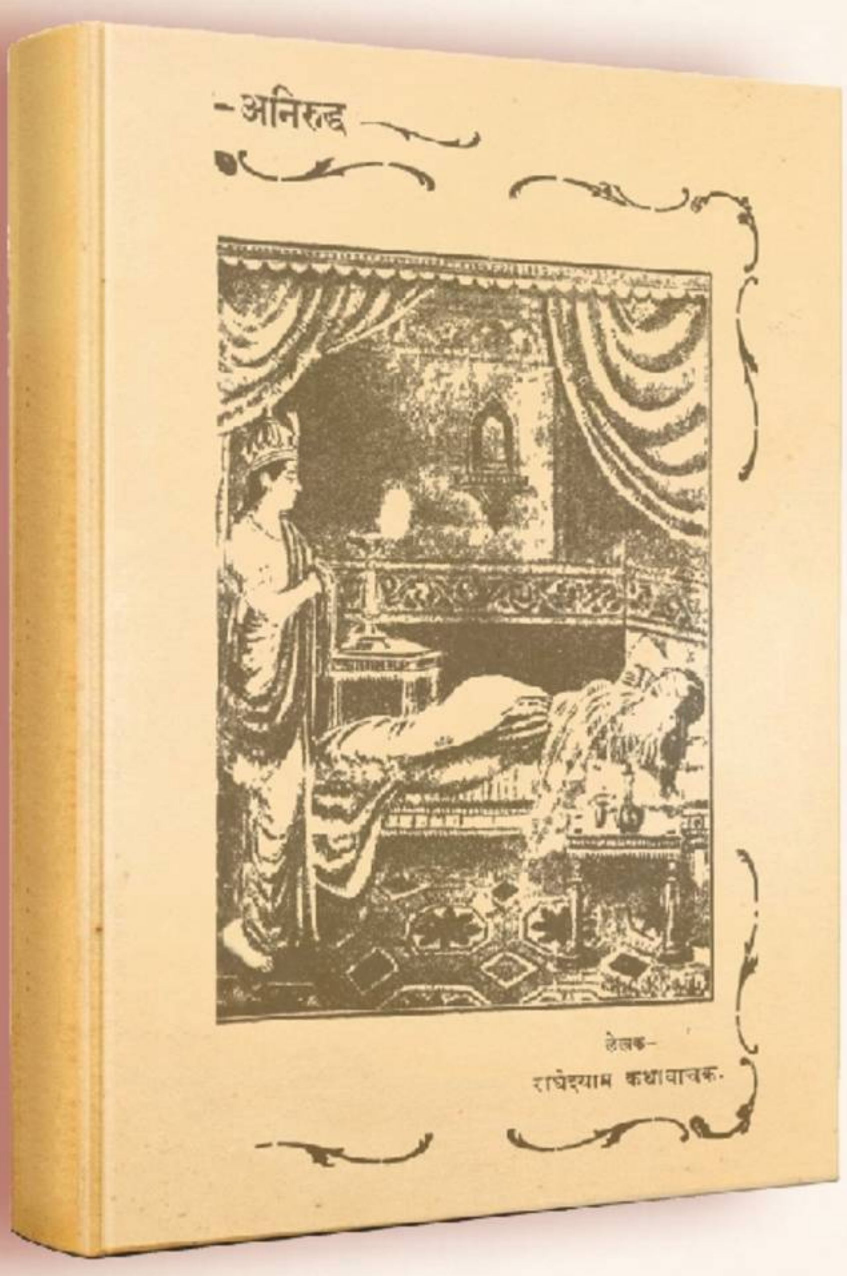

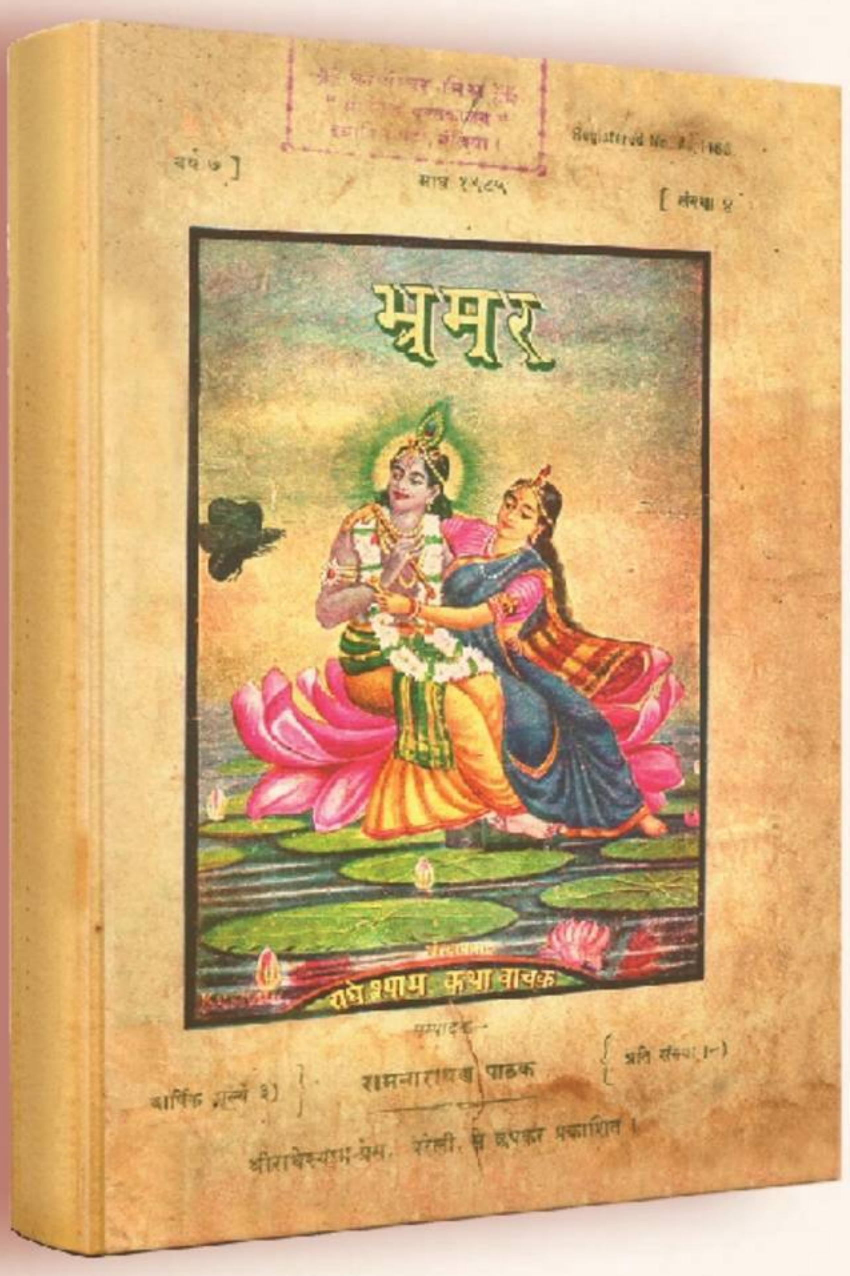

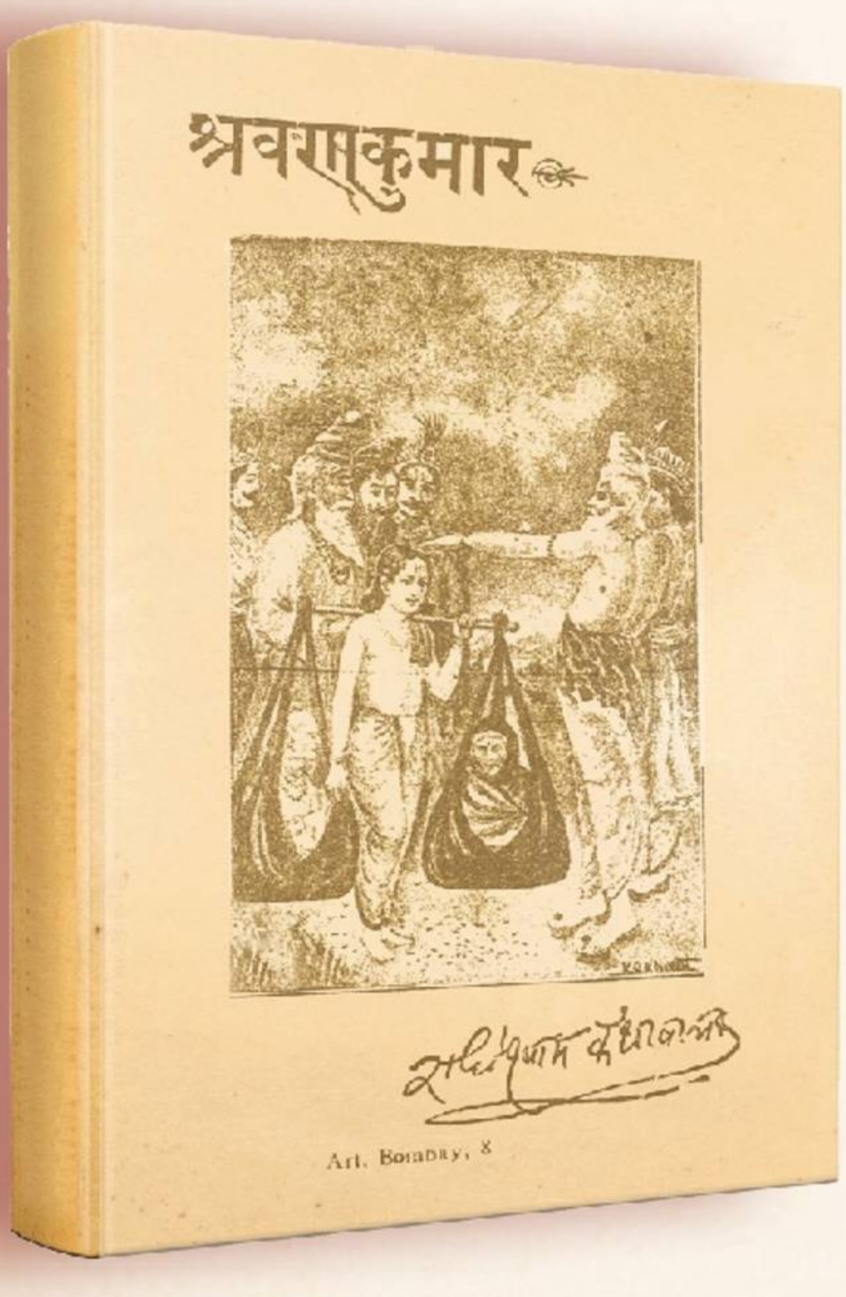

सन् 1890...

रामगंगा के तट पर बसा उत्तर भारत का एक शहर बरेली...

एक तरफ़ मस्जिदें, पीर-खानकाहे तो कई प्राचीन मंदिर भी। शहर की जनता धर्मप्राण थी और एक-दूसरों के धर्मों और त्योहारों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती। दौलतमंद हिंदू ताजियों के जुलूस में जलेबियां बंटवाते, शर्बतों की प्याऊ लगवाते तो होली में मुसलमान रंग खेलते... मनोरंजन के लिए पूरे शहर में जगह-जगह कथाएं-रामलीला, स्वांग-नाटक, नाच-मुजरे होते, लेकिन पूरे शहर को इंतज़ार रहता पारसी थिएटर कंपनी 'न्यू अल्फ्रेड' का। बरेली के लोग दीवाने थे इस कंपनी के। हाल यह था कि भिश्ती अपनी मशक़ें बेचकर भी इसके नाटक देखते। 'अलादीन', 'अलीबाबा' और 'चंद्रावली' नाटक तब ख़ूब देखे जाते थे। चार आने से लेकर तीन रुपए तक के दर्जे ठसाठस भरे रहते। इन्हीं नाटकों के गाने गली-गली में लोग कई दिनों तक गाते फिरते थे। इन गीतों की किताबें भी ख़ूब बिका करती थीं।

न्यू अल्फ्रेड कंपनी या शहर में आने वाली अन्य नाटक कंपनियां तब बरेली के बिहारीपुर मोहल्ले में स्थित 'राजा चित्रकूट के महल' में ठहरा करती थीं। नाटकों की रिहर्सलें भी इसी महल में हुआ करती थीं, जिसकी आवाज़ें इसी मोहल्ले की गली कामारथियान में एक छप्पर के घर में रहने वाले चार-पांच साल के बच्चे 'लल्लू' के कानों तक भी पहुंचतीं, जो उन्हें बड़े चाव और ध्यान से सुनता। उसके पिता नाटक प्रेमी तो नहीं थे किंतु गाने के शौक़ीन थे। रामलीला में जब वे अपनी पाटदार आवाज़ में चौपाइयां गाते तो धूम मच जाती। पिताजी के साथ 'लल्लू' ने भी हारमोनियम बजाना और गाना सीख लिया था।

एक दिन 'लल्लू' को लेकर उसके पिता राजा चित्रकूट के महल में ठहरी न्यू अल्फ्रेड कंपनी में उसे भर्ती कराने के इरादे से पहुंच गए। कंपनी के डायरेक्टर सोराबजी फ्रामजी ओग्रा ने बच्चे का गाना सुना। वे ख़ुश हुए और कहा, 'रख लेंगे इसे कंपनी में। रात को थिएटर देखने आइए।' पिता-पुत्र ख़ुशी-ख़ुशी रात में नाटक देखने गए। 'चंद्रावली' नाटक था वह। लल्लू का नाटक देखने का यह पहला अवसर था। लल्लू रात में घर लौटने के बाद भी उसी के सपनों में खोया रहा। भर्ती के लिए कंपनी बच्चे के पिता से एक एग्रीमेंट साइन कराती थी, जो अंग्रेज़ी में था। पिता अंग्रेज़ी नहीं जानते थे अतः एग्रीमेंट को किसी से समझकर साइन करूंगा, कहकर अपने साथ ले आए।

लल्लू की रिश्ते की बुआ, जो बाल विधवा थीं और उन्हीं के साथ रहती थीं, को यह बहुत बुरा लगा। उन्होंने पिता को डांटा और कहा, इसे 'कथाबांचने वाला बनाओ, नाटक का एक्टर नहीं।' पिता उनकी बात न काट सके- इस तरह लल्लू यानी राधेश्याम की कथावाचक बनने की यात्रा शुरू हो गई। कथाओं में राधेश्याम, महाभारत की विभिन्न कथाओं के गीत गाते और पिता उसका अर्थ बताते। लेकिन राधेश्याम जो अब आठ वर्ष के हो चले थे, अभी भी न्यू अल्फ्रेड कंपनी के गीतों की तर्ज़ भूले न थे। उन्होंने उन्हीं तर्ज़ों पर उपदेशप्रद श्रीराम या श्रीकृष्ण संबंधी बोल बना-बनाकर गानों का एक विशाल संग्रह तैयार कर लिया। इस बीच राधेश्याम का विवाह भी हो गया। वे मात्र 13 वर्ष के थे और उनकी पत्नी 11 वर्ष की।

राधेश्याम का कथावाचक होना

इस बीच एक मुक़दमे के संबंध में बरेली के प्रसिद्ध वकील रामस्वरूप खत्री से मिलने मोतीलाल नेहरू बरेली आए। उन्होंने खत्री जी से तुलसी रामायण को अच्छी आवाज़ में सुनाने वाले किसी कथावाचक का नाम बताने को कहा। उस समय उनकी पत्नी स्वरूपरानी नेहरू बीमार थीं और डॉक्टर ने उन्हें ऐसा करने को कहा था। खत्री जी राधेश्याम जी के पिता को जानते थे। उन्होंने इसके लिए पिता-पुत्र का नाम सुझाया और इस तरह राधेश्याम पहुंच गए आनंद भवन, इलाहाबाद। उनकी मुलाक़ात वहां विजयलक्ष्मी पंडित और जवाहरलाल नेहरू से भी हुई, जो उनसे मात्र एक वर्ष बड़े थे।

उन दिनों इलाहाबाद में महबूब की नाटक कंपनी 'करोनेशन' आई हुई थी। मोतीलाल जी नाटक प्रेमी भी थे। वे जब नाटक देखने जाते तो इन कथावाचक पिता-पुत्र को भी अपने साथ ले जाते। जिस नाटक-संसार से राधेश्याम को दूर रखने की कोशिश की जा रही थी वह मानो स्वयं उनके पास चलकर आने को बेताब था। लेकिन वे अभी भी अपने पिताजी को दिए वचन 'कथा ही कहनी है' पर क़ायम थे। किशोर अवस्था में पहुंच चुके राधेश्याम अब अपने नाम के आगे 'कथावाचक' लिखने लगे थे। उनकी कथाएं चलती रहतीं कभी मुरादाबाद, कानपुर तो कभी लखनऊ, जयपुर। इन दिनों आग़ा हश्र कश्मीरी के नाटक 'ख़ूबसूरत बला' की चर्चा चारों तरफ़ थी। राधेश्याम ने भी जब यह नाटक देखा तो वे भी इसमें बह-से गए। नाटकों में न जाने का संकल्प डगमगाने-सा लगा। हां नाटकों की भाषा उर्दू और उनके लेखकों के उपनाम (तख़ल्लुस) बेकल, जेबा, शैदा, हज़रत, जौहर उन्हें ज़रूर परेशान करते। उनका मन 'हिंदी' के ही नाटक लिखकर इस मैदान को फ़तह करने का होता था।

सन् 1910-11 की बात है।

पंजाब की नाटक कंपनी 'न्यू अल्बर्ट' बरेली आई। मालिक थे बाबू नानकचंद खत्री। एक दिन खत्री साहब अपने एक-दो कलाकारों के साथ उनके उसी छप्पर-खपरैल वाले मकान में मिलने आए। उनके मिलने आने का कारण था कि वे अपने 'रामायण नाटक' की कमियों को सुधरवाना चाहते थे। उनका नाम जयपुर-महाराज सवाई माधो सिंह के प्राइवेट सेक्रेटरी अविनाश बाबू ने सुझाया था। राधेश्याम तो इसके ही इंतज़ार में थे। अपनी पूरी समझ और अनुभव के साथ दिन-रात एक महीने लगकर उन्होंने न केवल नाटक और उसकी भाषा संभाली बल्कि उसके गीतों का निर्देशन भी किया। इसमें उन्होंने नारद का पार्ट विशेष रूप से जोड़ा और उन्हें एक गाना दिया- 'अवध में है आनंद छाया, पुत्र कौशल्या ने जाया'। पंजाबी गायक जब 'पुत्र' का उच्चारण 'पुत्तर' ही करता रहा तब उन्होंने 'पुत्र' की जगह 'लाल' कर दिया। यह गाना इतना हिट हुआ कि बरेली के घर-घर में गूंज उठा। इस गाने की तीन-चार वन्स मोर हुआ करती थीं। अन्य गाने भी पसंद किए गए। राधेश्याम की शोहरत पूरे शहर में फैल गई। कल तक जो दूसरों के गीत से प्रभावित थे आज गली-गली उनके गीतों की चर्चा थी। नाटककार के रूप में उनकी सफलता की यह पहली सीढ़ी थी... बाद में तो वे लंबे समय तक इसके शिखर पर रहने वाले थे।

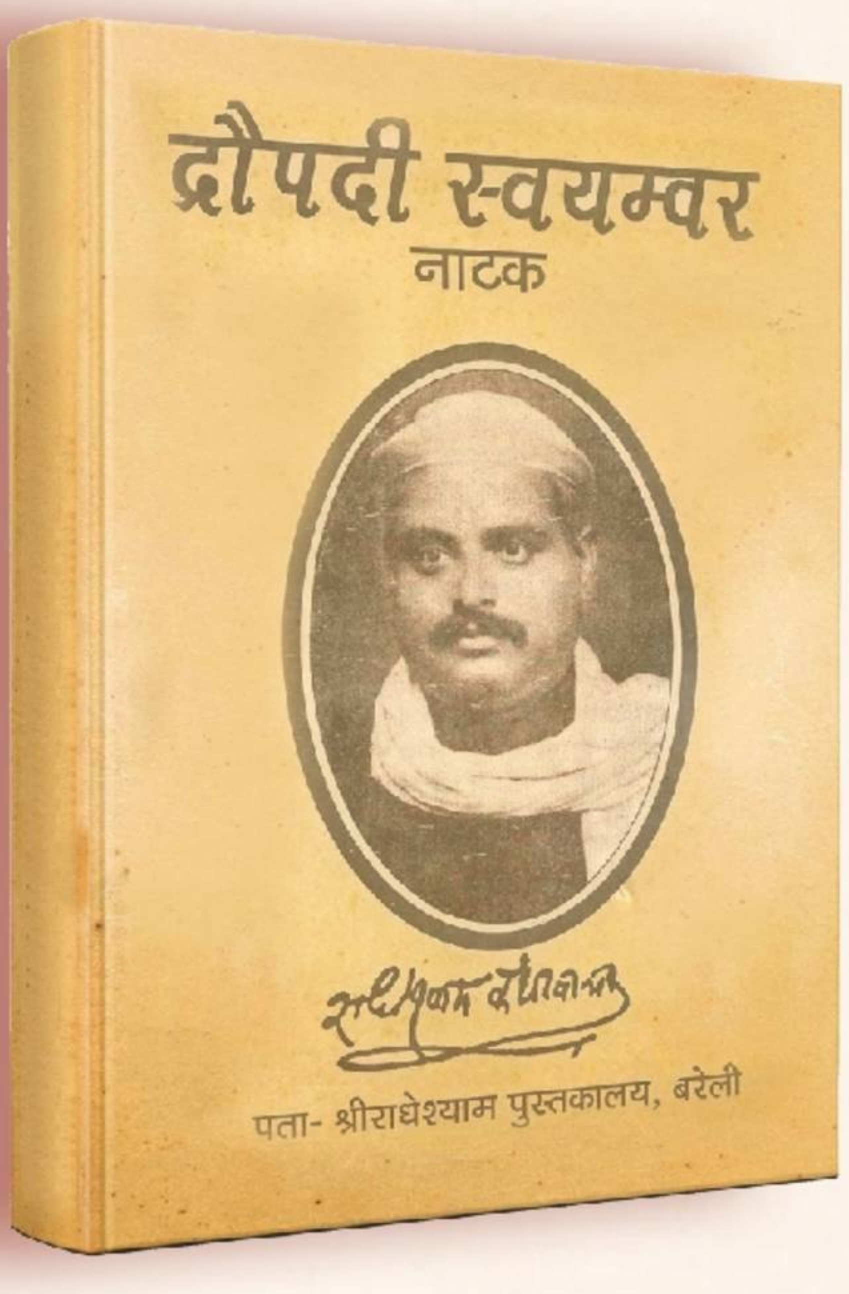

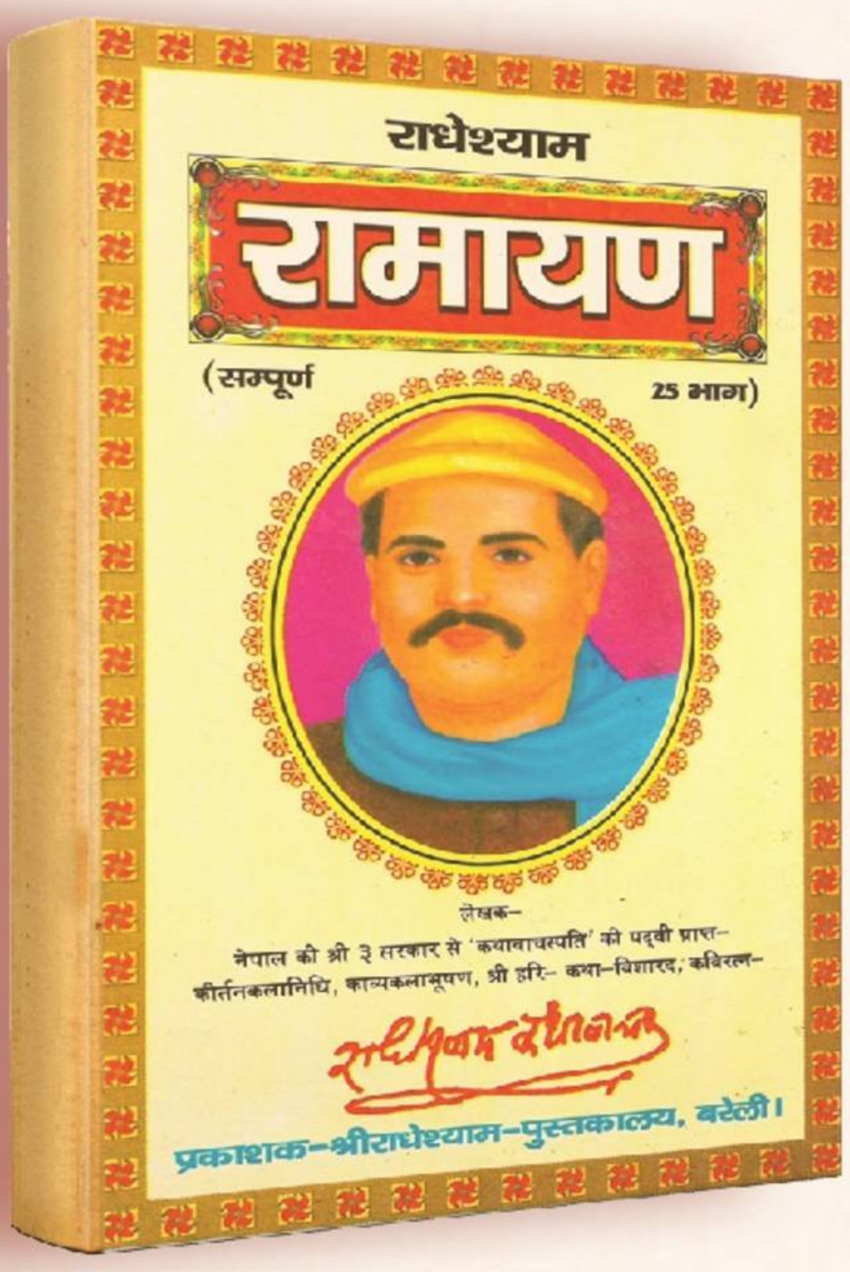

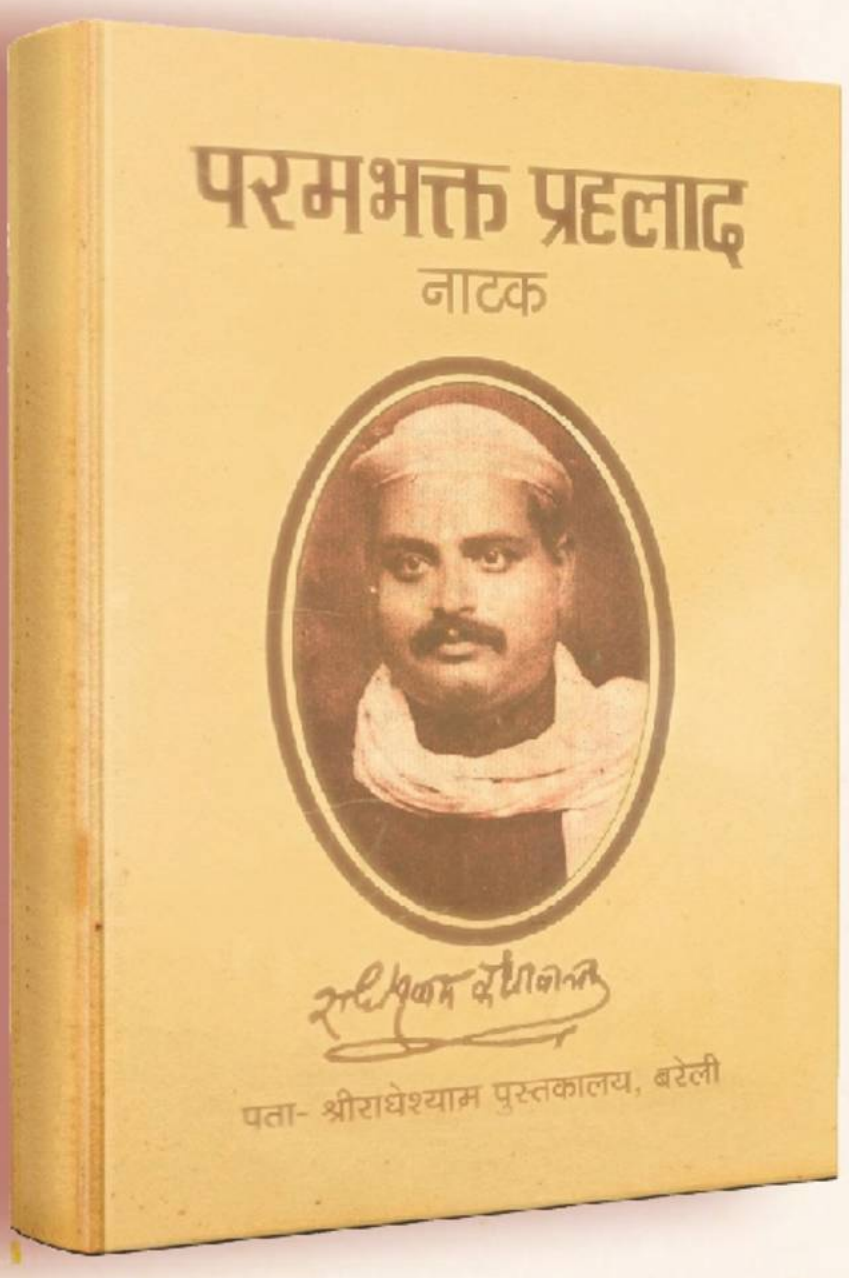

जन्म वीर अभिमन्यु का

इस बीच शहर-दर-शहर उनके कथावाचन का सिलसिला जारी रहा। कथाओं से जब भी समय मिलता, वे न्यू अल्बर्ट के लिए अपने दूसरे नाटक 'वीर अभिमन्यु' को लिखते रहते। 1912 में राधेश्याम पहली बार बंबई गए, जहां उन्होंने मराठी/गुजराती कंपनियों के साथ पारसी कंपनियों के भी नाटक देखे। उस समय वहां लेखक नारायण प्रसाद 'बेताब' के नाटक 'ज़हरी सांप' की धूम थी। इन नाटकों को देखने के बाद उन्होंने नाटकों की लोकप्रियता के कई ज़रूरी तत्वों को जाना-समझा और बरेली लौटकर अपने लिखे जा रहे नाटक 'वीर अभिमन्यु' के पहले अंक के जितने भी सीन लिखे थे, उन्हें काट-छांट कर पूरे नाटक को नए सिरे से लिखना प्रारंभ कर दिया। नाटक के कई दृश्य उन्होंने अपने मित्रों को सुनाए तो ख़ूब वाहवाही मिली। अब वे अपनी कथाओं में भी इसके कुछ प्रसंग सुनाने लगे।

इसी दौरान काशी हिंदू विश्वविद्यालय के निर्माण हेतु धन इकट्ठा करने के लिए पं. मदन मोहन मालवीय बरेली पधारे। उनके साथ दरभंगा नरेश और अन्य गणमान्य नागरिक भी थे। बरेली में एक विशाल जुलूस निकला। इसके बाद हुए जलसे में राधेश्याम जी से भी गाना-गाने को कहा गया। उन्होंने तत्काल ही गीत बनाए और गाए। उनके द्वारा बनाए गए 8-10 गीतों की पुस्तिका भी छपी और ख़ूब बिकी। उसकी सारी राशि उन्होंने विश्वविद्यालय के लिए दान में दे दी। पं. मदन मोहन मालवीय से उनका यह पहला परिचय था जो कालांतर में प्रगाढ़ होता चला गया। इसी दौरान उन्होंने उन्हें 'वीर अभिमन्यु' का एक सीन भी सुनाया, जिसे सुनकर मालवीय जी बहुत प्रभावित हुए और कहा कि जब भी तुम्हारा यह नाटक खोला जाए, मुझे ज़रूर दिखाना।

नवम्बर, 1913 में न्यू अल्फ्रेड कंपनी फिर बरेली आई, जो उन दिनों आग़ा हश्र कश्मीरी का नाटक 'अछूता दामन' खेल रही थी। तब तक धार्मिक नाटक बंबई की 'वालीवाला विक्टोरिया' कंपनी ही कर रही थी। न्यू अल्फ्रेड भी धार्मिक नाटक करना चाहती थी लेकिन उसके लिए उसे हिंदी मुंशी (लेखक) नहीं मिल रहा था। 'रामायण' की लोकप्रियता से राधेश्याम जी का नाम भी लोग जानने लगे थे। तब न्यू अल्फ्रेड के डायरेक्टर सोराबजी ने उन्हें मिलने के लिए बुलाया।

राधेश्याम जी ने उन्हें वीर अभिमन्यु के कुछ 'सीन' ख़ूब जोश के साथ पढ़कर सुनाए जो उन्हें बेहद पसंद आए। उन्होंने जब यह नाटक न्यू अल्फ्रेड के लिए ख़रीदने की बात की तो उन्होंने 'मैं यह नाटक न्यू अल्बर्ट के लिए लिख रहा हूं' कहकर संकोच जाहिर किया। सोराबजी ने कहा कि उसके मालिक नानकचंद बीमार हैं और कंपनी कभी भी टूट सकती है। राधेश्याम जी मौन रह गए, लेकिन कहीं यह कोई विश्वासघात तो न होगा के संशय में अम्बाला नानकचंद से मिलने चले गए। वे सचमुच सख़्त बीमार थे। उन्होंने वीर अभिमन्यु को न्यू अल्फ्रेड को देने के लिए सहर्ष अनुमति दे दी। अततः न्यू अल्फ्रेंड ने इसे 300 रु. में ख़रीद लिया। नाटक तब तक पूरा नहीं लिखा गया था। इस बीच एक ट्रेन यात्रा में 24 मई, 1913 को राधेश्याम जी का पैर टूट गया जिसको ठीक होने में एक वर्ष से ज़्यादा का समय लग गया।

1915 के जाड़ों में राधेश्याम जी ने कानपुर में सोराबजी को नाटक का चक्रव्यूह वाला सीन दिया। वहीं पहली बार वे पारसी थिएटर के सरताज लेखक आग़ा हश्र कश्मीरी से मिले, जो न्यू अल्फ्रेड को अपना नाटक 'सूरदास' बेचने आए थे 1,000 रुपए में। राधेश्याम जी को लगा अब तो 'सूरदास' पहले खेला जाएगा... लेकिन उन्हें पता चला कि सोराबजी ने 'सूरदास' को 'वीर अभिमन्यु' खेलने के बाद लेने का मन बनाया है। दीवाली के बाद कंपनी ने दिल्ली में डेरा डाला 'वीर अभिमन्यु' खेलने के इरादे से। राधेश्याम जी को गाने के बोल बनाने के लिए दिल्ली बुलाया गया। उन दिनों अमूमन पहले कंपनी के मास्टर (संगीतकार) तर्ज़ बनाते थे और फिर उन पर लेखक बोल लिखते थे। राधेश्याम जी ने इस परंपरा को बदला। उनका तर्क था कि 'अच्छे बोल' ही जनता पर प्रभाव डालते हैं न कि अच्छी 'तर्ज़'। एक महीने में गाने तैयार हुए। इस बीच पूरे नाटक की नई ड्रेस और सीनरी (बड़े-बड़े पर्दों पर बने राजमहल, जंगल आदि के रंगीन दृश्य) बनाए गए।

नाटक खेलने का दिन चुना गया 4 फ़रवरी, 1916 (इसी दिन काशी हिंदू विश्वविद्यालय का भी शिलान्यास हुआ था)। 2 फरवरी को ग्रांड रिहर्सल रखी गई, जो रात 9:30 बजे से शुरू होकर सुबह 3 बजे तक चली। राधेश्याम जी ने समझ लिया कि नाटक लंबा है इसे छोटा करना होगा। उधर कंपनी के मालिक माणिक जी जीवन जी मास्टर रिहर्सल देखकर निराश लगे। उनके हिसाब से खेल टोटली फ़ेल हुआ। पैसा बर्बाद हुआ। एक फ़िकरा और भी उन्होंने 'सोराबजी' से कहा, 'इतना ज़्यादा हिंदी का नाटक समझ सकेगी पब्लिक!'

4 फ़रवरी की शाम को थिएटर में बड़ी चहल-पहल थी। टिकट इतने बिके थे कि नई कुर्सियां डालने के बाद भी खड़े रहने तक की जगह नहीं थी। ठीक पौने दस बजे 'ड्रॉप' (परदा) उठा। पहले ही गाने 'भारत वीरों की याद में' की तीन वंस मोर हुईं। नाटक के ख़त्म होते-होते राधेश्याम जी और सोराब जी समझ चुके थे कि नाटक हिट हो चुका है। अगले दिन रविवार 5 फ़रवरी को यह हाल था कि दिल्ली के सभी रईस यह नाटक देखना चाहते थे, लेकिन बुकिंग तो बंद हो चुकी थी। आख़िरकार अगले हफ़्ते के रिज़र्वेशन उसी दिन शुरू किए गए। आगे के शो को छोटा किया गया तब भी नाटक की लोकप्रियता पर कोई असर न पड़ा।

पहली बार 'वीर अभिमन्यु' की 2,000 प्रतियां छपी, फिर 5,000, फिर 8,000... फिर तो यह छपता रहा... राधेश्याम जी के सामने ही इसकी एक लाख प्रतियां बिक चुकी थीं। संपूर्ण भारत में ऐसा कोई क्लब नहीं था, जहां यह न खेला गया हो। पंजाब यूनिवर्सिटी के 'एफ़.ए' कोर्स में इसे पढ़ाया जाने लगा। पारसी थिएटर के हज़ारों नाटकों में से केवल 'वीर अभिमन्यु' को ही यह गौरव प्राप्त हुआ। पूरे देश की साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में नाटक की जमकर तारीफ़ हुई। उस समय की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'सरस्वती' (संपादक - महावीर प्रसाद द्विवेदी) ने भी नाटक को अच्छा कहा तो मानो राधेश्याम जी का सपना साकार हुआ।

ज़िंदगी की किताब... राधेश्याम कथावाचक... जारी...

अठारह नाटकों का शिखर

वे पारसी थिएटर में हिंदी भाषा को प्रतिष्ठा दिलाना चाहते थे और ऐसा उनके पहले ही नाटक ने कर दिखाया था। वीर अभिमन्यु की सफलता ने हिंदी लेखकों को मानो जगा-सा दिया था। राधेश्याम जी देशव्यापी नाटककार की पदवी पा चुके थे। नाटक की सफलता से आर्थिक हालात भी बदले।

25 सितम्बर, 1917 को उन्होंने वही 'राजा चित्रकूट का महल' वाला मकान ख़रीद लिया, जहां कभी सभी नाटक कंपनियां आकर ठहरा करती थीं। बाद में यहीं उन्होंने राधेश्याम प्रेस की स्थापना कर राधेश्याम पुस्तकालय खोला, जिसने सैकड़ों किताबें छापीं और उनकी लाखों प्रतियां देश में ही नहीं पड़ोसी देशों में भेजी गईं। डाक विभाग को इसके लिए विशेष डाकख़ाना उनके परिसर में ही खोलना पड़ा।

वीर अभिमन्यु की सफलता से पारसी थिएटर में हिंदी के धार्मिक नाटकों का युग शुरू हुआ। फिर तो नाटकों का सिलसिला चल पड़ा। राधेश्याम जी ने 'वीर अभिमन्यु' को मिलाकर कुल अठारह नाटक लिखे, जिनमें प्रमुख थे —

श्रवण कुमार (1916), **परमभक्त प्रह्लाद** (1917), **परिवर्तन** (1917), **उषा-अनिरुद्ध** (1924), **श्रीकृष्ण अवतार** (1926), **मशरिक़ी हूर** (1926), **रुक्मणी-मंगल** (1927), **ईश्वर भक्ति** (1929), **द्रोपदी स्वयंवर** (1929), **महर्षि वाल्मीकि** (1932), **सती-पार्वती** (1939), **देवर्षि नारद** (1961) आदि।

यहां दो नाटकों 'परिवर्तन' (1917) और 'मशरिक़ी हूर' (1926) का विशेष उल्लेख इसलिए ज़रूरी है कि परिवर्तन नाम का सामाजिक नाटक उन्होंने न्यू अल्फ्रेड के निर्देशक सोराबजी की इस चुनौती कि, 'कथावाचक होने के नाते धार्मिक नाटक लिख लेना कोई कठिन काम नहीं- सामाजिक नाटक लिखकर नाम कमाओ तो जानें और मानें' के जवाब में लिखा था। इस सफल नाटक में समाज-सुधार के साथ-साथ राष्ट्र प्रेम की अनुगूंजें भी महसूस की जा सकती हैं। उस समय स्त्री-शिक्षा और वेश्या सुधार जैसे मुद्दों की बात इस नाटक को महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय बनाती है।

वहीं मशरिक़ी हूर (1926) लिखकर एक तरह से उन्होंने 'स्टेज के हिंदीकरण' वाले आरोप का रचनात्मक जवाब दिया था। मुस्लिम परिवेश को प्रस्तुत करने के साथ उनके सामने एक चुनौती इस्लामी आदर्शों के प्रति सजग रहने और संवादों में उर्दू पर महारत भी सिद्ध करने की थी जिसमें वे सफल रहे।

स्वयं आग़ा हश्र 'कश्मीरी' ने परिवर्तन की 'चंदा' और 'मशरिक़ी हूर' की 'हमीदा' की प्रशंसा करते हुए टिप्पणी की थी, 'चंदा का संन्यासिनी बनना और हमीदा का शादी न करके मदीने जाना- हम नहीं लिख सकते थे- हमारे ख़ून में यह 'तपस्या' और 'त्याग' है ही नहीं। श्री गांधी जी के अनुयायी ही ऐसा 'प्लाट' स्टेज पर ला सकते हैं।'

परम भक्त प्रह्लाद नाटक 1921 में अहमदाबाद में खेला गया। राधेश्याम जी गांधी को यह नाटक दिखाना चाहते थे किंतु ऐसा न हो सका। नाटक के पात्र 'प्रह्लाद' और 'प्रमोद' के संवादों में 'हुकूमत का विरोध' है सिद्ध करने के लिए ख़ुफ़िया पुलिस का एक बड़ा अफ़सर दो बार नाटक देखने इस उद्देश्य से आया कि इसे बंद कराऊं लेकिन फ़ेल रहा। आगे चलकर पं. मदन मोहन मालवीय ने इस नाटक को दो बार देखा। कानपुर में गणेश शंकर विद्यार्थी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने भी देखा और प्रशंसा की।

महर्षि वाल्मीकि (1932) पारसी थिएटर के लिए लिखा जाने पर भी एक प्रयोगधर्मी नाटक है, जिसे गद्य-पद्य की मिली-जुली शैली में न लिखकर पूरी तरह से गद्य में लिखा गया है। राधेश्याम जी के अंतिम नाटक 'देवर्षि नारद' का प्रकाशन उनके निधन के दो वर्ष पूर्व 1961 में हुआ था।

इन नाटकों की पूरे देश में व्यापक चर्चा हुई। राधेश्याम कथावाचक ने इन नाटकों को लिखा ही नहीं बल्कि निर्देशित भी किया था और इनका गीत-संगीत भी उन्हीं के निर्देशन में बना था। इतना ही नहीं इन नाटकों की सीनरी भी उन्होंने ही तैयार करवाई थी। इन नाटकों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि इन्होंने पारसी रंगमंच को राष्ट्रीय और सामाजिक सवालों के बीच लाकर खड़ा कर दिया।

देश की सभी महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं ने इन नाटकों के बारे में लिखा। काशी के दैनिक 'आज' के संपादक श्रीबाबू राव पराड़कर श्रीकृष्णवतार नाटक देखकर इतने प्रभावित हुए कि डेढ़ कॉलम का प्रशंसा लेख लिखा। प्रेमचंद जी ने अपनी पत्रिका 'माधुरी' में श्रीकृष्णावतार और रुक्मिणी मंगल के कई फोटो खिंचवाकर एक सचित्र लेख लिखा। 'चित्रपट' व 'चांद' में भी प्रशंसा हुई। ईश्वरभक्ति नाटक का उद्घाटन मोतीलाल नेहरू ने दिल्ली में किया, तब वे कांग्रेस अध्यक्ष थे। उनके साथ सरोजिनी नायडू भी गईं। कहां तो उन्होंने आधे घंटे की हामी भरी थी, लेकिन बैठे रहे रात दो बजे तक।

सिनेमा की पुकार

अक्टूबर, 1931 में वे कलकत्ते गए रामायण की कथा कहने। इसमें मदान थिएटर के भी कुछ एक्टर आते थे। तब तक सिनेमा भी बोलने लगा था। मैडन थिएटर के जहांगीर जी शेठ ने 'शंकुतला' फ़िल्म को श्रीयुत भवनानी की फ़िल्म से पहले बनाने का निर्णय लिया और फ़िल्म के गीत और संवाद का ज़िम्मा राधेश्याम जी को सौंपा। राधेश्याम जी रातभर गीत-संवाद लिखते और फिर टालीगंज स्टूडियो जाकर रिहर्सल कराते। कम समय में फ़िल्म पूरी करने का दबाव इतना था कि एक गीत को पूरा करने के लिए वे एक शाम ट्राम से उतरकर सड़क पर ही खड़े होकर गीत लिखने लगे। उसी समय वहां से फ़िल्म की नायिका कज्जन अपनी कार से गुज़री और उन्हें बीच सड़क पर खड़ा देखकर पूछ बैठी, 'यहां चौराहे पर इतनी भीड़ में क्या कर रहे हैं?' तब उनका सीधा-सा जवाब था, 'तुम्हारे लिए गीत लिख रहा हूं।'

कलकत्ता में तब तक 'न्यू थिएटर्स' भी शुरू हो चुका था। मदान स्टूडियो से ज़रा आगे ही उनका स्टूडियो था। बहुत-से कलाकार उनसे मिलने आते, ख़ासकर सहगल और जद्दनबाई (नरगिस की मां)। शकुंतला-फ़िल्म बनते ही अचानक जहांगीर शेठ ने इसे नाटक के रूप में भी खेलने की घोषणा कर दी। 'करेंथियन थिएटर' में रमणियों के बीच बैठकर उच्चारण आदि सिखाते समय उन्हें बेहद लज्जा आती थी। आख़िरकार 7 जनवरी, 1932 को यह नाटक खेला गया। नाटक को हिट करने के लिए लाहौर की प्रसिद्ध गायिका मिस मुख़्तार को रखा गया। पालतू चीते के बच्चे के साथ दुष्यंत पुत्र की कुश्ती भी रखी गई थी। लेकिन फिर भी नाटक चला नहीं। राधेश्याम जी का यह एकमात्र नाटक है जो असफल हुआ और इसका कारण था समयाभाव। इसीलिए उन्होंने अपने इस नाटक को राधेश्याम प्रेस से प्रकाशित भी नहीं किया।

इस बीच महर्षि वाल्मीकि नाटक की रिहर्सल के दौरान राधेश्याम जी की पत्नी बीमार पड़ीं। उनका पत्र जिसमें लिखा था, 'पंडितजी को मेरी जान से ज़्यादा नाटक प्यारा है', पढ़कर वे भावुक हो उठे और उसी दिन बरेली वापस लौट आए। यह अप्रैल, 1932 की बात थी। 28 मई, 1932 को 'महर्षि वाल्मीकि' प्रदर्शित करने का प्रोग्राम बना और उन्हें तुरंत कलकत्ता पहुंचने को कहा गया। लेकिन वे न जा सके और फिर उसे कभी मंचित होते हुए न देख सके... हां यह नाटक लिखने के बाद उन्हें इतना तो संतोष हुआ कि 'इन्द्रसभा' से शुरू पारसी थिएटर अब 'महर्षि वाल्मीकि' तक आ गया है।

इस तरह कलकत्ता उनसे छूटा तो फिर छूट ही गया। फ़िल्मों के बढ़ते प्रभाव के कारण कई लोग समय-समय पर उनसे फ़िल्म लेखन के लिए संपर्क करते रहे लेकिन वे तैयार नहीं हुए। फिर भी पूर्व परिचित मोतीलाल जी मिस्त्री के कहने पर उन्होंने 'श्रीसत्यनारायण' फ़िल्म की स्टोरी लिख दी। बंबई निवास के दौरान उनकी कई मुलाकातें बाम्बे टॉकीज के सर्वे-सर्वा हिमांशु राय से भी हुईं। वे उन्हें वहां लेखक के रूप में रखना चाहते थे लेकिन राधेश्याम जी सफल नाटककार की तरह सफल फ़िल्म लेखक न हो सके।

राधेश्याम रामायण और राधेश्याम प्रेस

सफल नाटककार से पहले राधेश्याम सफल कथावाचक थे। उन्होंने रामचरितमानस को अपनी अलग तर्ज़ में खड़ी बोली में लिखा था, जो 'राधेश्याम रामायण' के नाम से लोकप्रिय हुई। यह रामायण 1910 में रामायण नाटक सुधारने के दौरान लिखी गई थी। बढ़ती बिक्री को देखते हुए तथा अपने नाटकों को छापने के उद्देश्य से उन्होंने 1917 में राधेश्याम पुस्तकालय खोलकर अपनी प्रेस लगाई थी।

राधेश्याम रामायण आज़ादी के बाद तक हिंदी-उर्दू में प्रकाशित होती रही। इसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि 1960 तक इसकी सवा करोड़ प्रतियां बिक चुकी थीं। इसकी प्रतियां नेपाल, भूटान, बर्मा तक भेजी जाती थीं। नेपाल सरकार ने इस किताब के लिए उन्हें कथावाचस्पति सम्मान से सम्मानित किया था। राधेश्याम रामायण का उत्तर भारत के एक बड़े इलाक़े में इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि वहां खेली जाने वाली रामलीलाओं के लिए यह आधार ग्रंथ बन गई। रामानंद सागर ने जब रामायण सीरियल बनाया तो आधार ग्रंथों में इसका उल्लेख भी किया। बाद में उनके परिवार के साथ हुए विवाद के बाद उनका नाम नहीं दिया गया।

राधेश्याम रामायण के ग्रामोफोन रिकॉर्ड भी तैयार किए गए। इसकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर अमेरिका स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ़ नॉर्थ कैरोलिना की असिस्टेंट प्रोफ़ेसर पामेला लोथस्पिच लंबे समय से राधेश्याम रामायण पर काम कर रही हैं। उन्होंने अपने शोध 'द राधेश्याम रामायण एंड संस्कृतटाइज़ेशन ऑफ खड़ी बोली' में 1939 से 1959 के बीच आए राधेश्याम रामायण के संस्करणों में हिंदी-उर्दू ज़बान को शुद्ध हिंदी की ओर ले जाने की प्रक्रिया को प्रस्तुत किया है।

राधेश्याम प्रेस से 1932 में साहित्यक पत्रिका 'भ्रमर' का प्रकाशन किया गया। प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य तीन रुपए था और यह 1929 तक प्रकाशित होती रही। उस समय इसके ग्राहकों की संख्या 25 हज़ार से अधिक थी। इसमें प्रकाशित होने वाले लेखकों की सूची में प्रेमचंद, निराला, रामप्रसाद विस्मित, रामधारी सिंह 'दिनकर', श्याम नारायण पांडे और परिपूर्णानंद वर्मा जैसे नाम थे। प्रेमचंद की 'होली' सहित तीन कहानियां भ्रमर मासिक में प्रकाशित हुई थी। राधेश्याम पुस्तकालय (प्रेस) से लगभग 171 से ज़्यादा पुस्तकें प्रकाशित की गईं, जिनमें से ज़्यादातर राधेश्याम जी द्वारा लिखी गई थीं।

रामायण पर फ़िल्म का सपना

रांची में एक कथा के दौरान वहां के सेठ राधाबाबू ने उन्हें रामायण कथा को कई भागों में फ़िल्म के रूप में बनाने का प्रस्ताव रखा। माया-मोह से विरक्त हो चुके राधेश्याम जी ने इसके लिए काफ़ी मना किया तब राधाबाबू के इस प्रस्ताव पर कि दोनों लाभ की राशि धर्मार्थ कार्यों के लिए ख़र्च कर देंगे, वे इसके लिए तैयार हो गए। 'रामजन्म' शीर्षक से पहले भाग की तैयारी शुरू हुई। बंबई आकर राधेश्याम जी ने ख़र्च की पड़ताल की। इस बीच राधाबाबू से विमर्श के बाद एक बार कलकत्ते में भी ख़र्च का हिसाब लेने की बात तय हुई। यह 1946 का समय था। बंबई यात्रा के दौरान ही उनके बड़े पुत्र घनश्याम फिर बीमार पड़े। इस कारण उन्होंने कलकत्ते की यात्रा स्थगित कर दी।

1947 के प्रारंभ में उन्होंने गढ़मुक्तेश्वर में गंगा किनारे रहकर रामजन्म की कथा लिखना प्रारंभ किया। अप्रैल, 1947 में कथा-संवाद लिखकर कलकत्ता रवाना हुए। कलकत्ता प्रवास में ही राधेश्याम जी को खांसी के कई दौरे पड़े। वे पुत्र बलराम के साथ बरेली लौट आए। पुत्र घनश्याम फिर गहरे बीमार पड़े। 3 अक्टूबर, 1947 को घनश्याम नहीं रहे, जो उस समय मात्र 37 वर्ष के थे। कमज़ोर दिल के कारण पुत्र की मृत्योपरांत हुई रस्मों में राधेश्याम जी शामिल नहीं हुए। पत्नी पुत्र वियोग में अंधी हो गईं। राधाबाबू और रामेश्वर शर्मा भी परलोक सिधार गए और रामायण पर धारावाहिक फ़िल्म बनाने की योजना अधूरी ही रह गई।

अंतिम समय

पुत्र वियोग से निजात पाने के लिए वे एक बार फिर बंबई गए और सीधे सोहराब मोदी से मिले। मोदी साहब उन दिनों 'झांसी की रानी' फ़िल्म बना रहे थे। वे फ़िल्म में गीत नहीं रखना चाहते थे किंतु राधेश्यामजी की सहायता के लिए उन्होंने उनसे कई गीत लिखवाए और उन्हें फ़िल्म के 'बैक ग्राउंड' में प्रयुक्त किया। इसके बदले में उन्होंने मोदीजी से एक पैसा भी नहीं लिया। इस बीच उनकी धर्मपत्नी बीमार हुईं और अंत में वे भी नहीं रहीं। वे अकेले पड़ गए। 'राधेश्याम भवन' का सूनापन उन्हें काटने लगा। नाटक संसार की तरह से ही 'सिनेमा संसार' को कुछ सुधारने की उनकी ख़्वाहिश अधूरी ही रह गई। उनका समय अब कीर्तन/कथाओं में बीतने लगा।

इधर स्वास्थ्य भी बिगड़ने लगा और अंततः 26 अगस्त, 1963 को उन्होंने इस संसार से विदा ली। अपने 73 साल के जीवन (जन्म- 25 नवंबर, 1890) में अपनी प्रतिभा से उन्होंने शहर बरेली को एक नई पहचान दी। लेकिन खेद का विषय है कि जिस बरेली को उन्होंने पहचान दी, उनकी कोई भी पहचान को बचाए रखने में शहर ने कोई रुचि नहीं दिखाई है। पूरे शहर में उनके नाम पर न कोई स्मृति द्वार है, न उनकी कोई आदमक़द प्रतिमा, न किसी मार्ग का नामकरण न कोई सभागार।

और अंत में डायरी...

राधेश्याम कथावाचक ने अपने समय में जो प्रतिष्ठा और सम्मान पाया उसके बारे में अब तक जो जानकारी उपलब्ध है वह उनके द्वारा 1959 में लिखी गई आत्मकथा 'मेरा नाटक-काल' से ही प्राप्त होती है। इससे हम मुख्यतः उनके पारसी थिएटर के लिए किए गए महत्वपूर्ण कार्य की जानकारी विस्तार से पाते हैं। लेकिन इसके अलावा भी उनकी एक सामाजिक और पारिवारिक दुनिया रही होगी, उसकी जानकारी के कोई साधन हमारे पास न थे। लेकिन राधेश्याम कथावाचक पर काफ़ी लंबे समय से कार्य कर रहे हरिशंकर शर्मा ने अपने अथक प्रयासों से उनकी डायरियां खोजकर उसी पर हाल ही में 'डायरी का व्याकरण' शीर्षक से महत्वपूर्ण किताब लिखी है। इससे उनके लेखन, उनकी व्यक्तिगत दुनिया जैसे उनकी पसंद-नापसंद, मित्र-परिवार-कुटुंब, शौक़-व्यापार, स्वास्थ्य, देश-दुनिया के विभिन्न मुद्दों पर उनकी राय, बरेली के तत्कालीन वातावरण और उनके जीवन के अंतिम समय में चल रही कशमकश के बारे में जाना जा सकता है। इन डायरियों में देश के नेताओं, सरकारी कर्मचारियों की घूस, पत्रकारिता के गिरते स्तर, नाजायज़ धन के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम और द्वितीय विश्व युद्ध पर भी उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए हैं। महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, संपूर्णानंद, जवाहरलाल नेहरू और विनोबा भावे पर भी रोचक टिप्पणियां हैं।

डायरियों से कुछ निम्न रोचक और सारगर्भित जानकारियां मिलती हैं —

— 24 दिसंबर 1960 के दिन लिखी डायरी से ज्ञात होता है कि उनके तीन नाटक 'उद्धार' (1944), 'आज़ादी' (1951) एवं 'धना भक्त' (1961) अप्रकाशित हैं। उनके मन में 'रावण राज्य' शीर्षक से एक नाटक लिखने की कल्पना भी थी, जो राजनीति पर केंद्रित होता।

— राधेश्याम जी के बचपन का नाम 'लल्लू' एवं 'रामगोपाल' था। किंतु एक छद्म नाम 'अधीर' भी था। उन्होंने इस नाम से 1920 से 1929 के बीच पत्रिका 'भ्रमर' में सैकड़ों कविताएं लिखीं।

— मदनमोहन मालवीय को वे इतना आदर देते थे कि उनका एक पत्र फ्रेम में लगवा कर हॉल में टांगा हुआ था।

— 1939 में उनके टेलीफ़ोन का नंबर 204 था।

राधेश्याम कथावाचक

साक्षात्कार

चुन्नू सॉफ्टवेयर कम्पनी में साक्षात्कार देने गया।
साक्षात्कारकर्ता– 'Java' के चार वर्शन बताइए।
चुन्नू– मर जावा, मिट जावा, लुट जावा और सदके जावा।
साक्षात्कारकर्ता– शाबाश, अब तुम सीधे घर जावा।

...

तपस्या का फल

एक बार पप्पू ने बहुत तपस्या की। उसकी तपस्या से भगवान बहुत प्रसन्न हुए और प्रकट होकर उससे बोले– कोई वर मांगो वत्स।
पप्पू तुरंत बोला– हे भगवान। वो पुराना सिस्टम ख़त्म हो गया क्या जिसमें तपस्या भंग करने के लिए अप्सराएं आती थीं?

...

कार की टक्कर

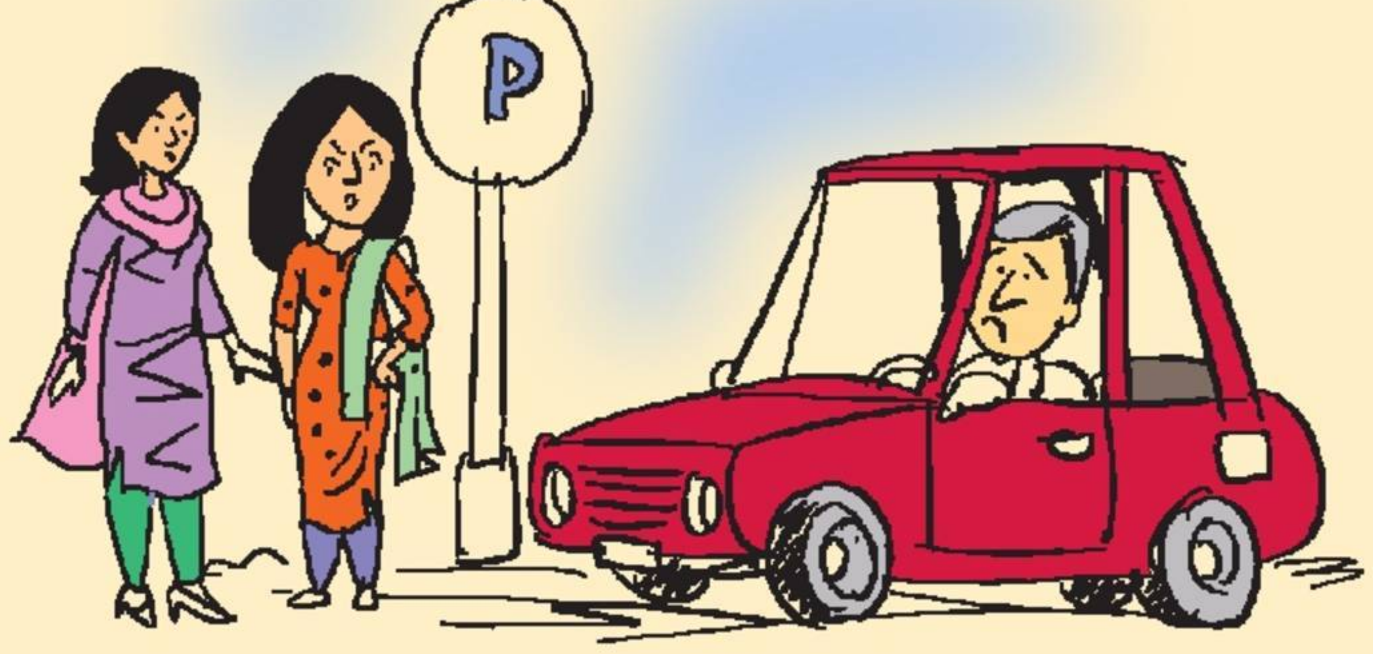

दो लड़कियां आपस में बातें करती हुईं चलते-चलते मेरी कार से टकरा गईं।
टकराने के बाद बोलीं– भइया, देखकर गाड़ी चलाओ। इतना बोलकर वो दोनों चली गईं।
पर सोचने वाली बात तो यह है कि– मेरी गाड़ी बंद थी; और तो और वो पार्किंग एरिया में खड़ी थी।

...

बात करने के तरीक़े

भगवान से– हाथ जोड़कर
गुरुदेव से– नज़र झुकाकर
मां से– खुलकर
पिता से– आदर से
भाई से– दिल खोलकर
बहन से– प्यार से
बच्चों से– लाड़-दुलार से
दोस्तों से– हंसी-मज़ाक़ से और
पत्नी से– ??? पत्नी से बात करने के तरीक़े की खोज अभी चालू है।

...

प्रिय व्यंजन

पत्नियों द्वारा पतियों को खिलाया जाने वाला उनका सबसे प्रिय व्यंजन–
खाओ मेरी क़सम।

...

बेरोज़गार दोस्त

मैं जब भी अपने दोस्तों को ऑनलाइन देखता हूं, तो दिल को बहुत सुकून मिलता है कि मैं अकेला ही फ़ुर्सत में नहीं बैठा हूं, काम-धंधा तो इनके पास भी नहीं है।

...

न्यूटन का नियम

शिक्षक– न्यूटन का नियम बताओ।
लड़का– सर, पूरी लाइन तो याद नहीं आख़िरी का याद है।
शिक्षक– चलो आख़िरी का ही सुनाओ।
लड़का– और इसे ही न्यूटन का नियम कहते हैं।

...

भूलने की बीमारी

राजू– सर मुझे कुछ याद नहीं रहता है।
टीचर– अच्छा बताओ क्लास में तुम्हारी पिटाई कब हुई थी?
राजू– सोमवार को।
टीचर– यह कैसे याद रह गया?
राजू– सर प्रैक्टिकल में नहीं थ्योरी में समस्या है।

...

हरफ़नमौला

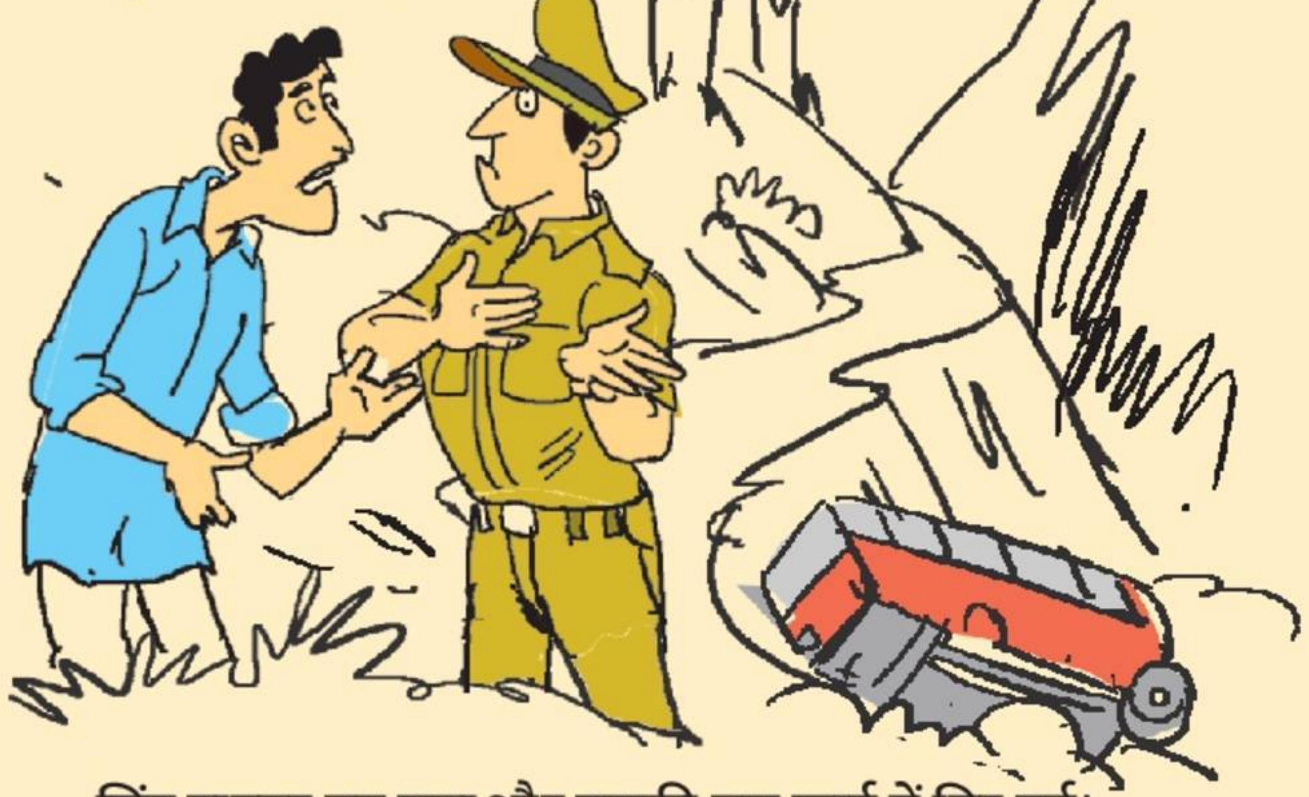

चिंटू ड्राइवर बन गया और उसकी बस खाई में गिर गई।
पुलिस– बस खाई में कैसे गिरी?
चिंटू– साहब, मुझे नहीं पता।
पुलिस– क्या? पर गाड़ी तो तुम चला रहे थे।
चिंटू– हां, पर उस दिन कंडक्टर नहीं आया था, तो मैं टिकट बनाने पीछे चला गया था।

...

वादा

पत्नी– मैं मायके तभी जाऊंगी जब आप मुझे छोड़ने जाओगे।
पति– मंज़ूर है, पर वादा करो कि घर भी तुम तभी आओगी जब मैं तुम्हें लेने आऊंगा।

...

दुश्मन

दुश्मन-सा ही लगता है वह इंसान भी जो कहता है– थोड़ी देर मोबाइल रख दिया करो।

...

मोटापा

शादीशुदा लोगों का पेट बढ़ने का कारण– पहले बाहर दोस्तों के साथ पार्टी करो, और फिर घर आकर बीवी के डर से दोबारा खाओ।

...

बहाना

पत्नी– बताओ, आज खाना कैसा बना है?
पति– तुम भी लड़ने के बहाने ढूंढती रहती हो।

...

चटनी की रेसिपी

पतिबीवी– इतनी अच्छी चटनी कैसे बना लेती हो?
पत्नी– कुछ खास नहीं बस, बनाते वक़्त आपका ध्यान कर लेती हूं, कूटने में आसानी होती है।

...

आज का ज्ञान

यदि दो लोग लड़ रहे हों तो आपका फ़र्ज़ बनता है कि– नीचे बैठ जाओ ताकि पीछे वालों को भी दिखे।

...

मूर्ख इंसान

संजू अपनी गर्लफ्रेंड के पिता से मिलने गया।
लड़की के पिता– मैं नहीं चाहता कि मेरी बेटी अपनी पूरी ज़िंदगी एक मूर्ख इंसान के साथ गुज़ारे।
संजू– बस अंकल इसीलिए तो मैं उसे यहां से ले जाने आया हूं।

खाने की बुराई

भले ही आपके ख़ुद के घर में लौकी, करेला, टिंडे बनते हों, पर किसी भी शादी में जाकर खाने की बुराई कई लोग ऐसे करते हैं जैसे घर में ख़ुद के लिए खाना संजीव कपूर से बनवाते हों।

बीवियों के प्रकार

भविष्य वाचक बीवी– सात जन्मों तक मेरे जैसी नहीं मिलेगी।
इतिहास वाचक बीवी– जानती हूं, तुम्हारा ख़ानदान कैसा है।
धार्मिक बीवी– शुक्र करो भगवान का जो मेरे जैसी बीवी मिली।
भ्रमित बीवी– तुम आदमी हो या पाजामा?
आपकी कौन-सी है देख लो।

चौथी पास किसान वैज्ञानिक मदनलाल कुमावत की ग्रामीण तकनीक को देश-विदेश में सराहा गया है। उनकी कहानी, उनकी ज़ुबानी।

ट्रैक्टर पर ग्रामीण तकनीक

• **डॉ. महेंद्र मधुप**

वरिष्ठ कृषि पत्रकार। किसान वैज्ञानिकों के जीवन, संघर्ष और शोध पर चार पुस्तकें 'खेतों के वैज्ञानिक', 'वैज्ञानिक किसान', 'प्रयोगधर्मी किसान' और 'अन्वेषक किसान' प्रकाशित।
मिशन फ़ार्मर साइंटिस्ट परिवार और मिशन पर्यावरण योद्धा परिवार के प्रणेता। जयपुर में निवास।

कोविड19 के संकटकाल में ख़ुद के द्वारा विकसित ट्रैक्टर-लोडर पर विशेष ध्यान दिया। इससे मिट्टी व खाद भरने, खेतों में खाद बिखेरने के कार्य बख़ूबी होते हैं। इसके दो मॉडल बिक भी रहे हैं, पर किसानों की ज़रूरत और है।

लोडर से मिट्टी भरने में तो आसानी है, पर खोदने के लिए जेसीबी जैसी मशीन मंगवानी पड़ती है। निरंतर कोशिशें रंग लाईं। लोडर और बेकहो का आविष्कार करके एक वैकल्पिक हल किसान साथियों को उपलब्ध करवाया। अब ट्रैक्टरों पर बेकहो का निर्माण हो रहा है। 35 एचपी का बिक्री मूल्य साढ़े पांच लाख रुपए और 65 एचपी का 9 लाख रुपए है।

2013 में किसानों की ज़रूरतों के अनुरूप बनाया डोज़र 1.68 लाख रुपए में उपलब्ध है। यह मिट्टी फैलाने, बांध की दीवार बनाने आदि के काम आता है।

बहुफ़सल थ्रेशर

वर्कशॉप में जिन दिनों दैनिक मज़दूरी करता था, तब थ्रेशर की कार्यप्रणाली को समझा। अनाज तुड़ाई, तुड़ा महीन या मोटा करने आदि के लिए थ्रेशर बाज़ार में उपलब्ध नहीं था। 1997 में बहुफ़सल थ्रेशर बनाया। इससे सभी फ़सलों की गहाई संभव है। पेटेंट मिल चुका है। दाम साढ़े चार लाख रुपए है।

जीवन सफ़र

1965 की 10 फ़रवरी को जयपुर के पास बालमुकुंदपुरा गांव में जन्म हुआ। पिताजी हनुमान सहाय के पास तीन एकड़ ज़मीन थी। खेती के बाद समय बचता तो वे बढ़ईगीरी करते। इन परिस्थितियों में चौथी तक ही पढ़ सका। पंद्रह वर्ष की उम्र में दर्ज़ी का काम किया। फिर बढ़ईगीरी। मन खेती में नवाचार की ओर था। इसलिए 22 वर्ष का हुआ तो बंटाई पर खेती के लिए बगरू चला गया।

1997 में सपनों में रंग भरने गांव दांता को कर्मभूमि बनाकर वहां वर्कशॉप शिवशंकर मदनलाल कृषि यंत्र उद्योग का श्रीगणेश किया।

1986 में प्रेमदेवी से विवाह हुआ। बच्चे हुए तो संकल्प लिया कि ख़ुद तो नहीं पढ़ सका पर बच्चों की शिक्षा में कमी नहीं आने दूंगा।

संशोधित हैंड पंप - मान
और पशु दोनों के लिए
पानी निकालने का उपाय

कोविड19 में साथी किसान वैज्ञानिकों की तरह मैंने भी कोविड मरीज़ों की सार-संभाल की। एक नेटवर्क के कार्यकर्ता के रूप में कोविड मरीज़ों के लिए आठ ऑक्सीजन सिलेंडर उपलब्ध करवाए।

साथी किसानों से कहना चाहता हूं कि मस्तिष्क में आए नवाचारों को नज़रअंदाज़ न करें। उन्हें पनपने का मौक़ा दें।

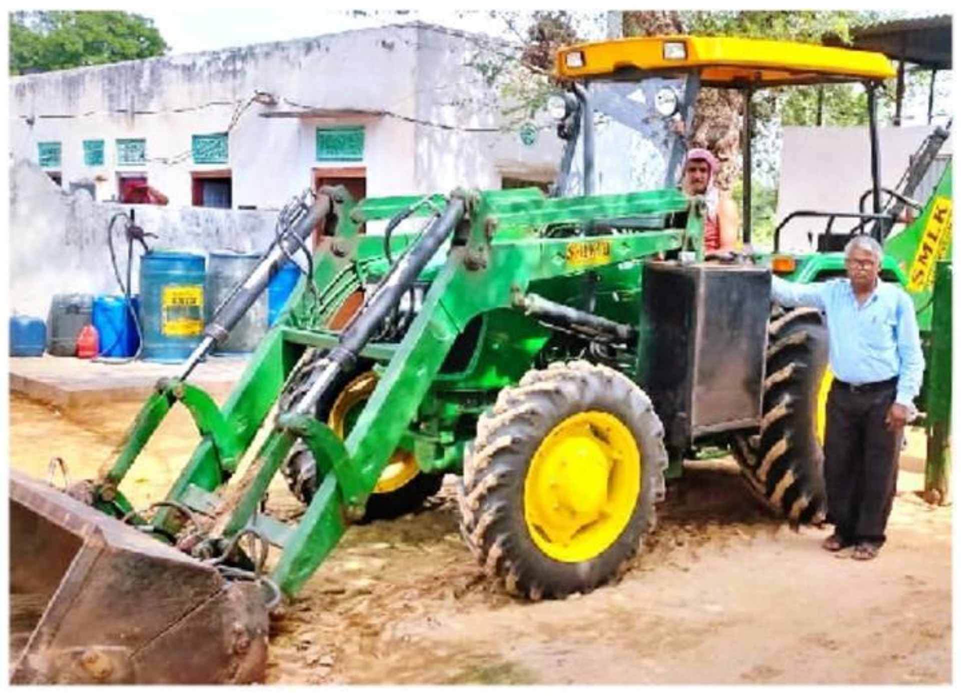

सम्मान और संपर्क

2001 एनआईएफ़ द्वारा थ्रेशर के लिए राष्ट्रपति भवन में सम्मानित।

2003 राजस्थान सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग का प्रथम पुरस्कार।

2010 'सिटा' द्वारा दिल्ली में 'खेतों के वैज्ञानिक' सम्मान।

2017 **1.** एनआईएफ़ द्वारा 'ट्रैक्टर में डोज़र ब्लेड जोड़ने वाले संशोधित फ़िक्सर' के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित। **2.** मौलाना आज़ाद विश्वविद्यालय द्वारा जोधपुर में 'खेतों के वैज्ञानिक' सम्मान।

2018 पेसिफ़िक विश्वविद्यालय और भाकिसं द्वारा 'खेतों के वैज्ञानिक' सम्मान।

2019 किसान वैज्ञानिक के रूप में राष्ट्रपति भवन में मेहमान।

सम्पर्क कर सकते हैं – मदनलाल कुमावत,
गोपाल गोशाला के पास, पुराने वर्कशॉप के सामने वाली गली गांव दांता-332702, ज़िला सीकर (राजस्थान)
ईमेल – smlkyudanta@gmail.com
मोबाइल – 9413162395

■

अहा! ज़िंदगी में पाठकीय सहभागिता बढ़ाने की दृष्टि से 'दिमाग़ की बत्ती' स्तम्भ आरम्भ किया गया है। **इसमें प्रस्तुत सामग्री पाठकों की सहज-बुद्धि को चुनौती देकर उन्हें इन गुत्थियों को सुलझाने के लिए प्रेरित करेंगी। देखें, इस अंक में प्रस्तुत की जा रही सामग्री में से पाठक कितनी गुत्थियां हल कर पाते हैं।**

मग़ज़ पर भारी

1

सोमवार समेत दो दिन बाद आने वाले दिन के ठीक बाद वाले दिन के दो दिन बाद आने वाले दिन के तीन दिन बाद आने वाले दिन के एक दिन पहले वाला वार **कौन-सा होगा?**

2

यदि
1= 2, 2= 1, 3= 2,
4= 2 है,
तब **9=** कितना
होगा?

3

एक लड़की के पास 56 सेमी लम्बा कपड़े का टुकड़ा है। वह एक सेकंड में एक सेमी कपड़ा काट सकती है। **पूरे कपड़े को काटने में लड़की को कितना समय लगेगा। वह उसे मोड़कर या घड़ीकर नहीं काट सकती?**

पासे का खेल

यदि यह पासा नीचे दिए गए चित्र के अनुसार चलें **तो सबसे ऊपर कौन-सी संख्या आएगी?**

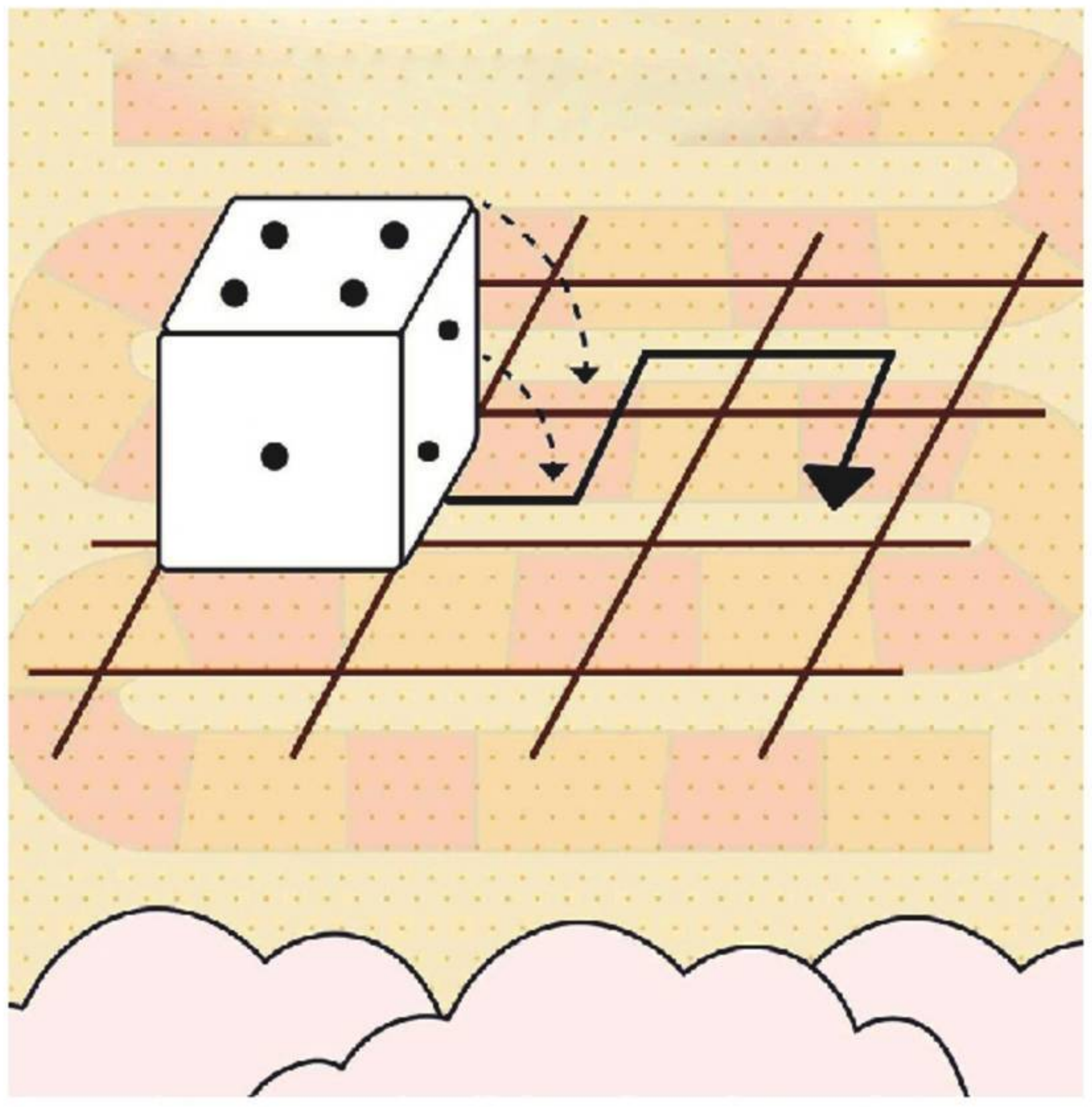

माथापच्ची

1

इस चित्र में दिखाई दे रहे गुब्बारों में से **कौन-सा ग़ुब्बारा छत से सबसे दूरी पर है?**

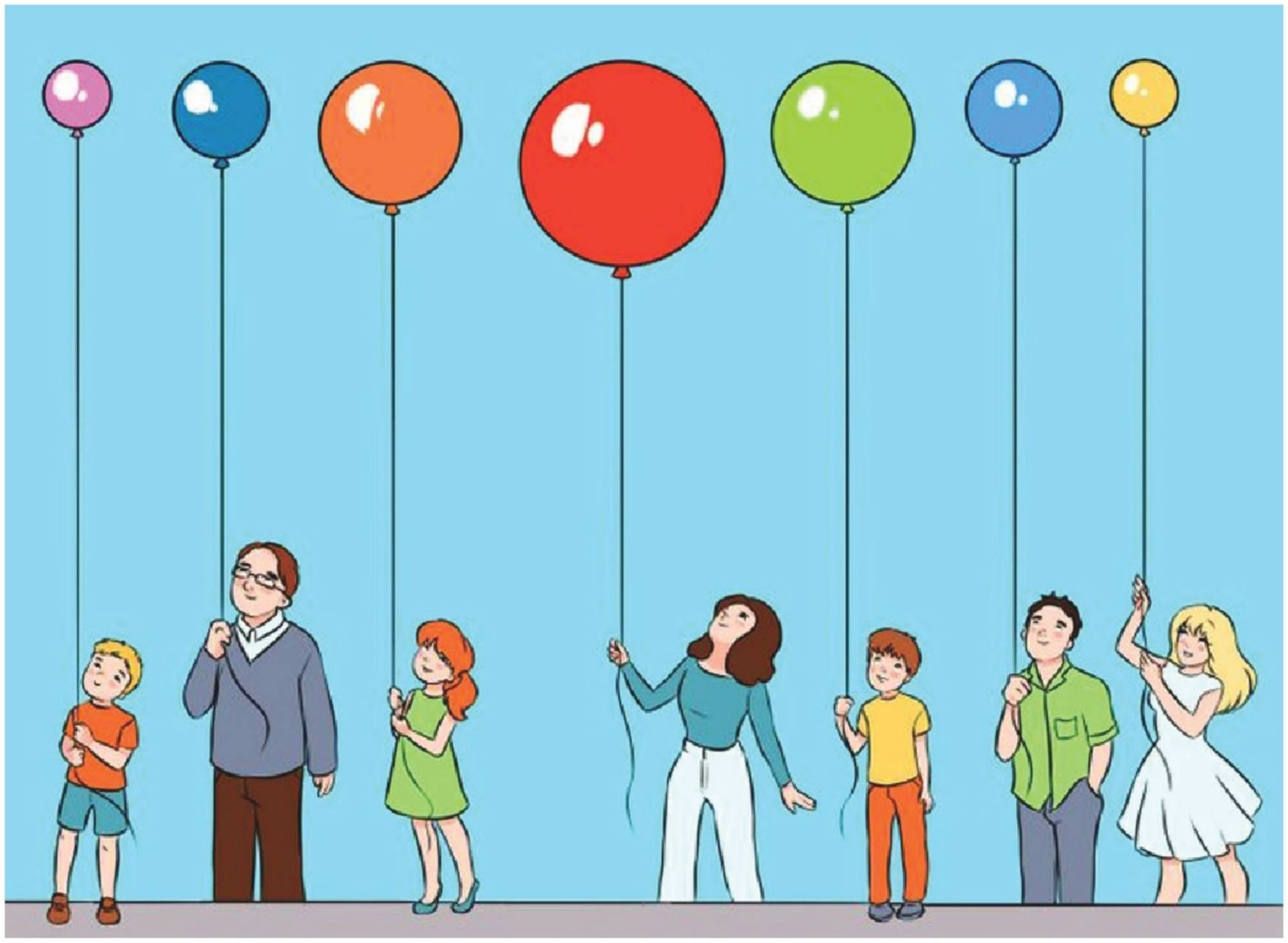

2

इस चित्र में हाथ की कुछ मुद्राएं दी गई हैं। इन चारों मुद्राओं में से आपको यह ज्ञात करना है कि इनमें से कौन-सी बाक़ी तीन से सर्वथा भिन्न है?

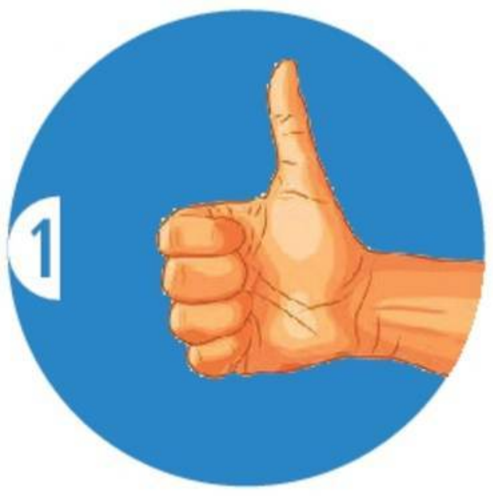

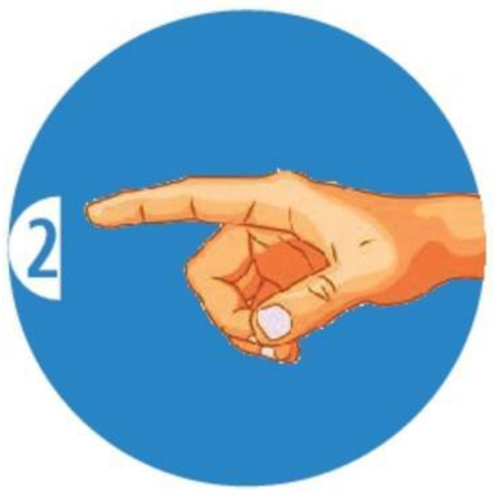

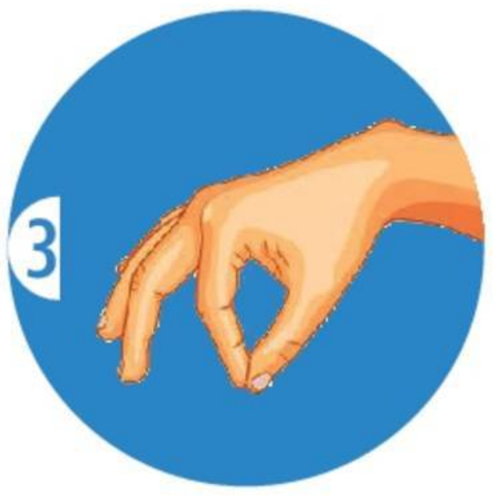

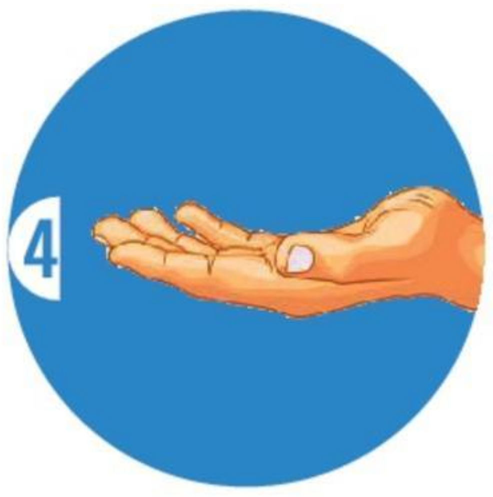

3

माचिस की तीलियों से एक समीकरण तैयार किया है। **लेकिन यह अभी गणित के नियमानुसार ठीक नहीं है। आपको इसमें सिर्फ़ दो तीलियों को जोड़कर इसे सही समीकरण बनाना है।**

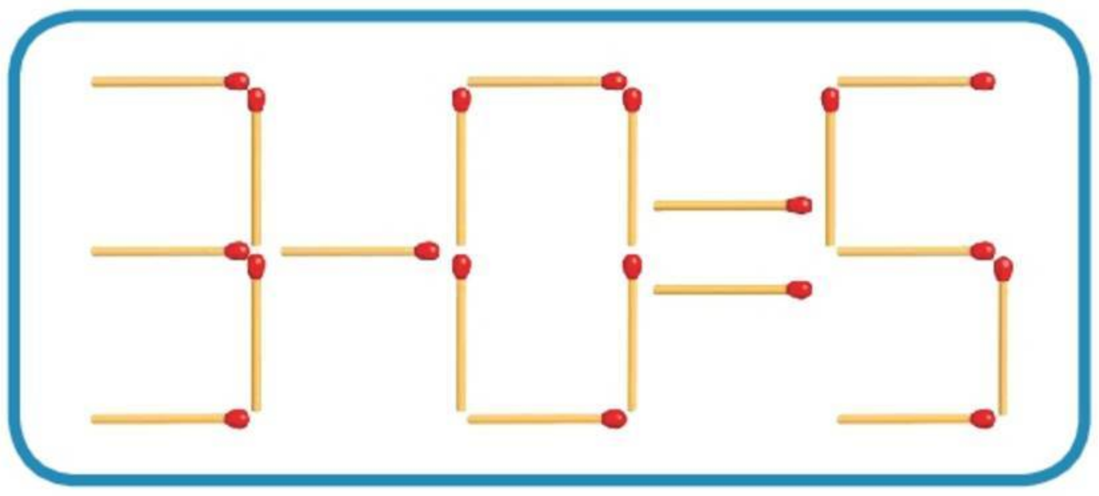

अंतर पहचानो

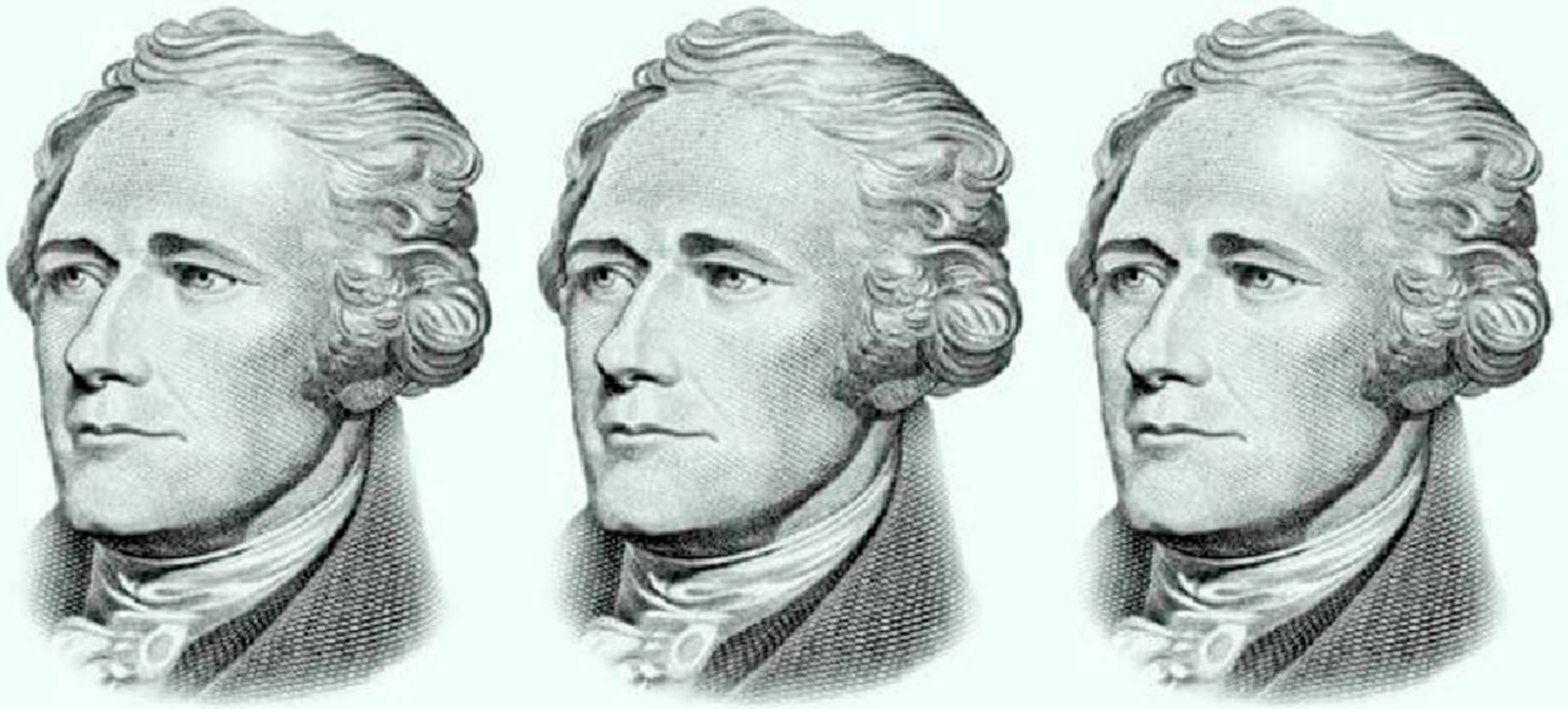

यहां नीचे 3 चेहरे दिए गए हैं जो कि देखने में तो एक जैसे ही हैं लेकिन वास्तव में इन तीनों में से कोई एक अन्य दो से भिन्न है। **क्या आप वह अंतर पहचानकर बता सकते हैं कि इनमें से कौन-सा चेहरा भिन्न है?**

आज़माइश

1

नीचे दिए गए विकल्पों में से आपको चुनकर बताना है **कि यह पिरामिड ऊपर से देखने पर इनमें से किसकी तरह दिखाई देगा।**

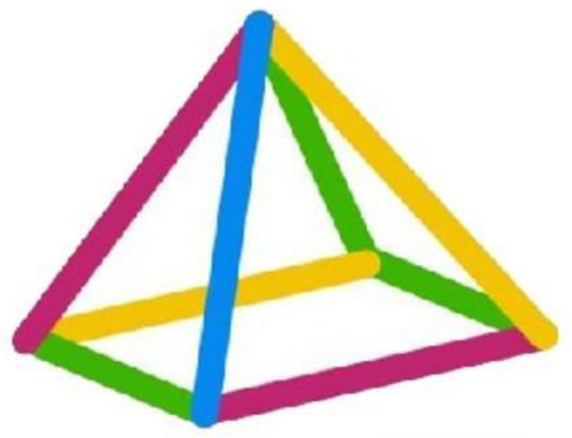

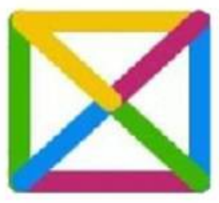

1

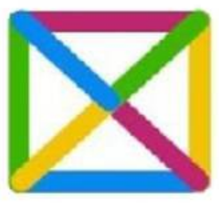

2

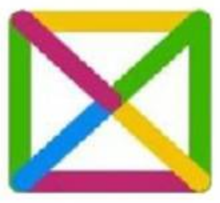

3

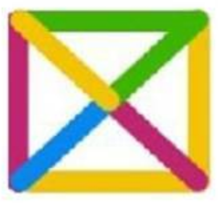

4

2

यहां दिखाई दे रहे 4 बिंदुओं को आपको सिर्फ़ तीन सीधी रेखाएं खींचकर जोड़ना है। ध्यान दें कि सिर्फ़ तीन रेखाएं ही खींची जा सकती हैं।

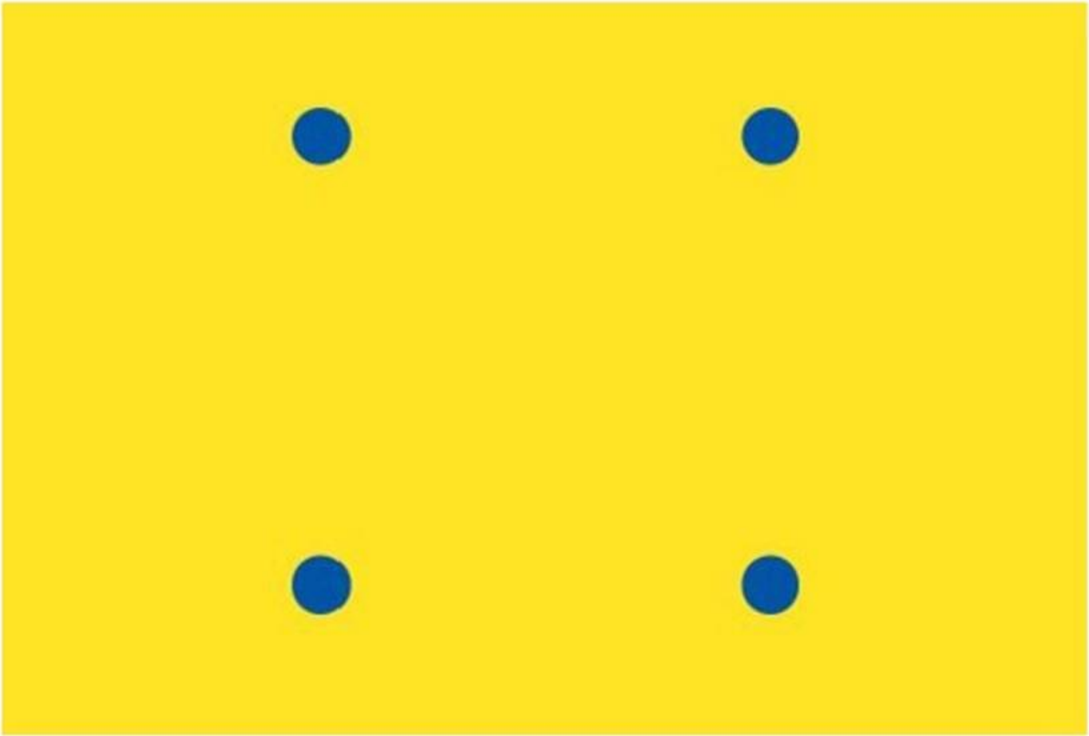

मांइडफुल

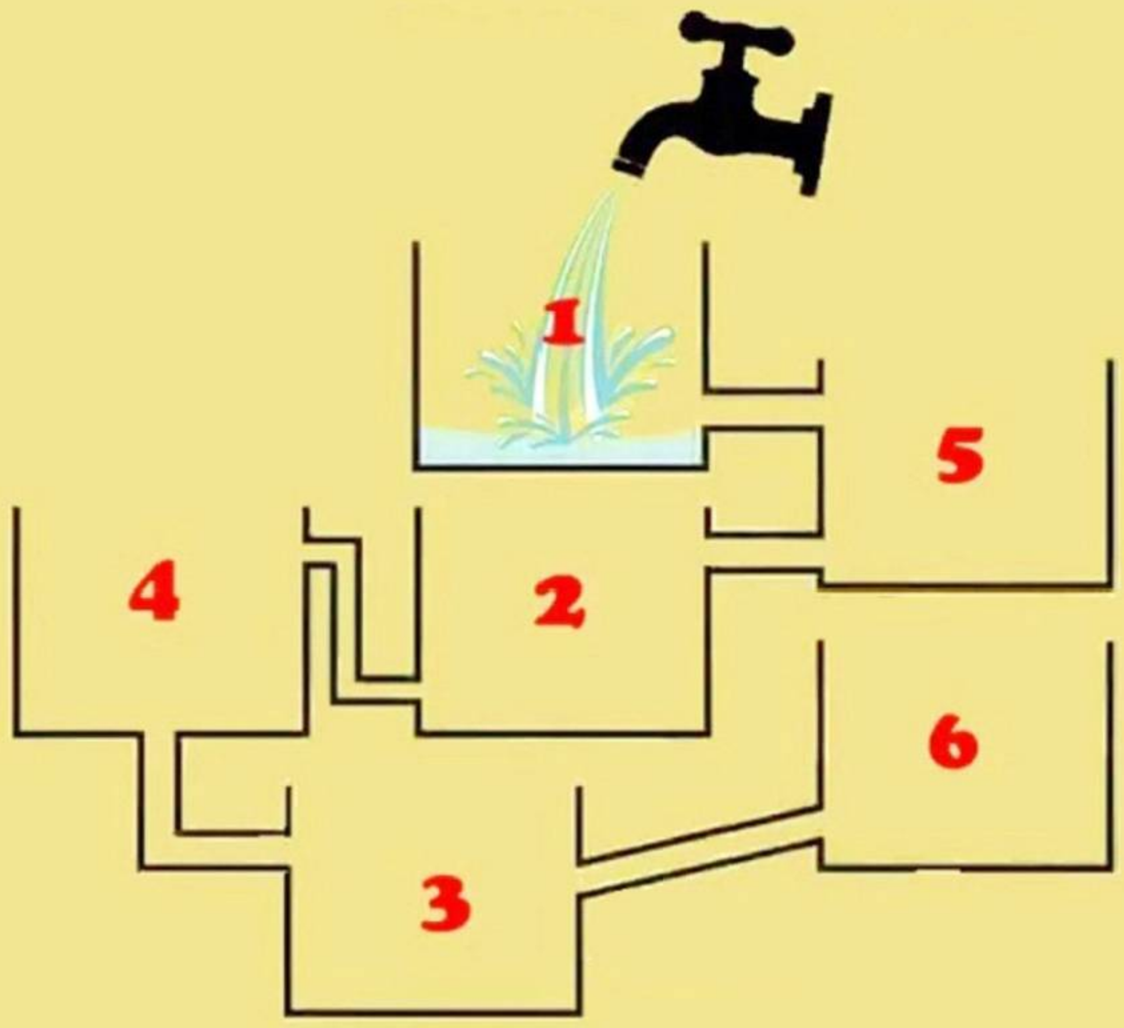

कौन-सा बर्तन सबसे पहले भरेगा?

इस चित्र के देखकर आपको यह बताना है कि इन 6 बर्तनों में से सबसे पहले कौन-सा बर्तन पानी से भरेगा?

उत्तर... दिमाग़ की बत्ती

मग़ज़ पर भारी...

(1.) सोमवार (क्योंकि... सोमवार के दो दिन बाद बुधवार, बुधवार का ठीक अगला दिन गुरुवार, गुरुवार के दो दिन बाद शनिवार और शनिवार के तीन दिन बाद मंगलवार और मंगल से एक दिन पहले सोमवार होगा।)

(2.) 1 (क्योंकि... 9 (नौ) शब्द में एक अक्षर होता है। उसी प्रकार एक में 2, दो में 1, तीन में 2 और चार में 2 अक्षर होते हैं।)

(3.) 55 सेकंड (क्योंकि... 55 वां भाग काटते ही स्वत: 56 वां भाग कट जाएगा।)

पासे का खेल...

5 (क्योंकि... प्रत्येक पासे में आमने-सामने की संख्याओं का जोड़ 7 होता है। इस प्रकार पहले ख़ाने में 5 ऊपर आएगा। दूसरे ख़ाने में 1 ऊपर आएगा। तीसरे ख़ाने में 3 और सबसे अंतिम ख़ाने में 5)

माथापच्ची...

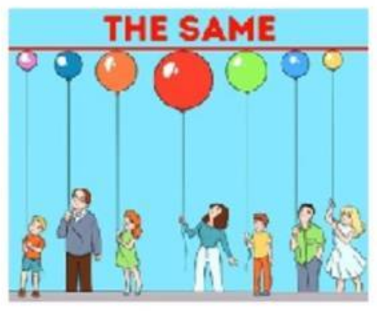

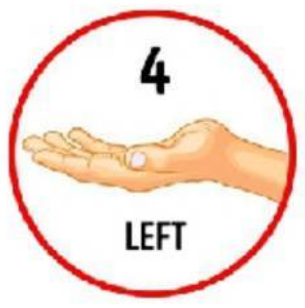

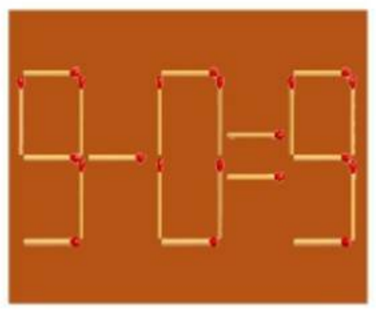

(1. सभी समान दूरी पर हैं **(2.** चौथी मुद्रा बाएं हाथ से बनाई गई है, बाक़ी दाएं हाथ से। **(3.** 9 - 0 = 9

अंतर पहचानो...

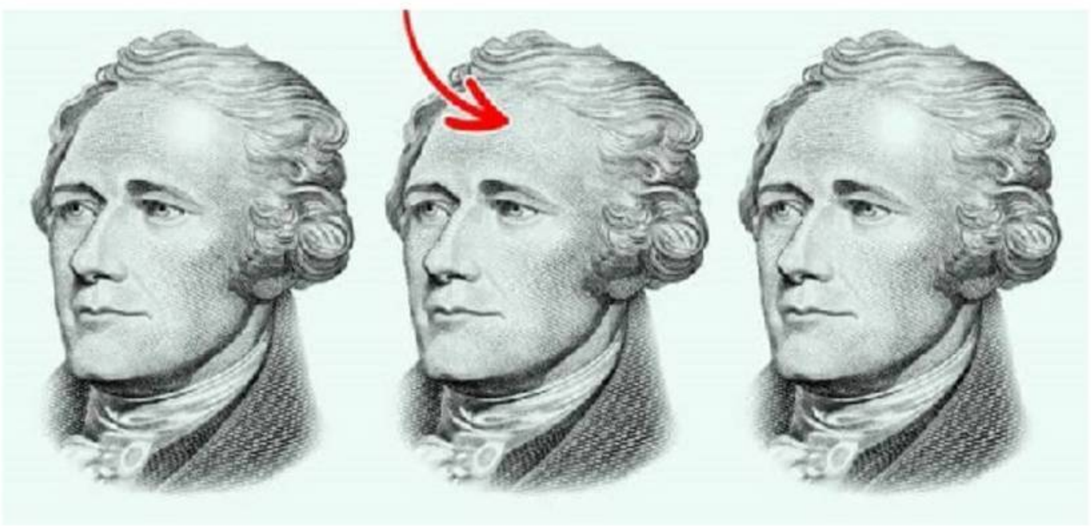

बीच वाले चेहरे में माथे पर सफ़ेद धब्बा ग़ायब है।

आज़माइश...

(1.) 3

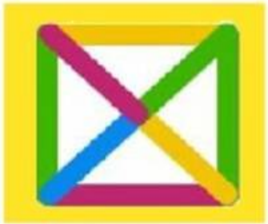

(2.)

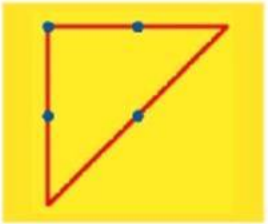

मांइडफुल...

3

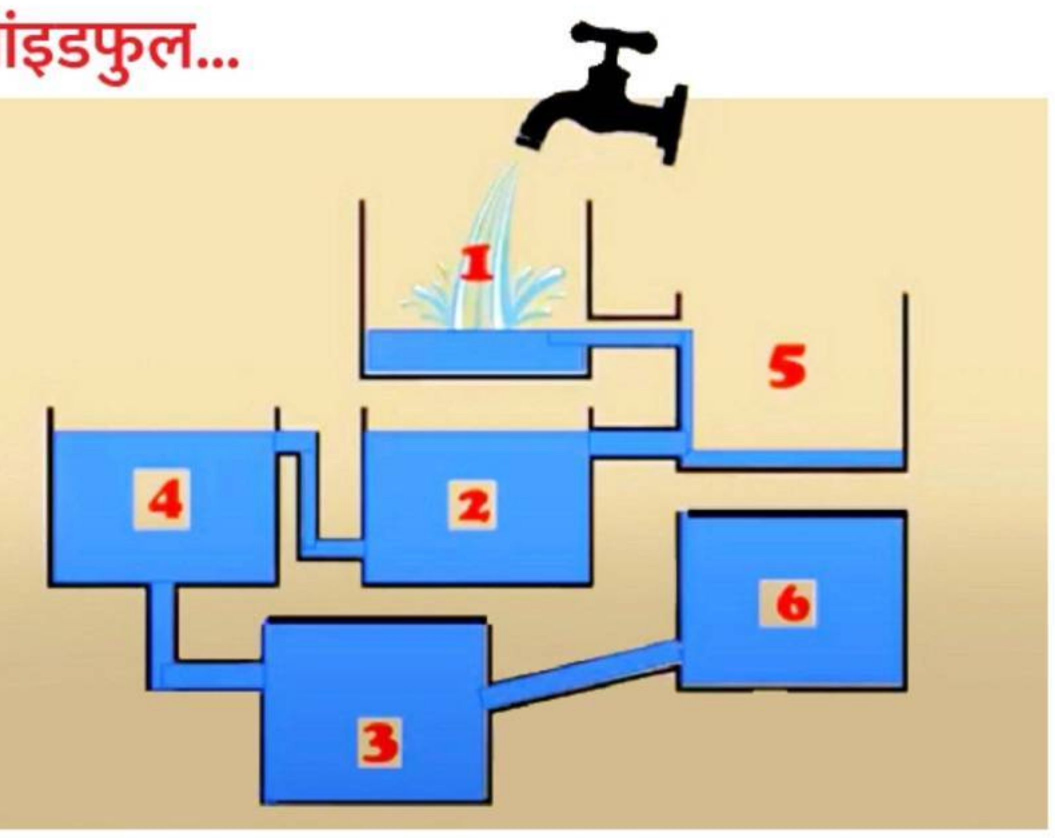

किताबों की अनंत दुनिया

मार्क्स और उनके दर्शन की सरल-सुगम प्रस्तुति

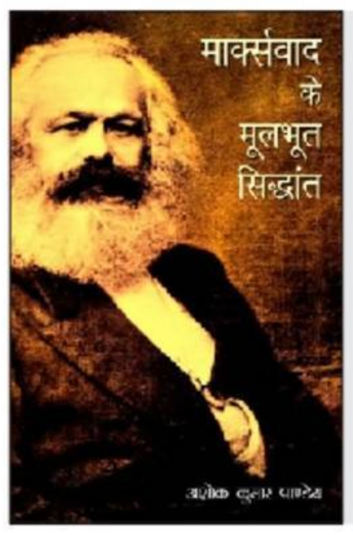

कविता, कथा और कथेतर विधाओं में सक्रिय अशोक कुमार पांडेय हिंदी के चर्चित लेखकों में से एक हैं। उनकी किताबें कश्मीरनामा, कश्मीरी पंडित और उसने गांधी को क्यों मारा बहुत पढ़ी गई हैं। अब मार्क्सवाद पर उनकी यह नई किताब आई है।

बीसवीं सदी मार्क्सवाद की अनुगूंजों से भरी थी। एक वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में इसने अपनी जगह बनाई थी। आज भी मार्क्सवाद निरंतर बहसतलब बना हुआ है। लेकिन खेद की बात यह है कि बहुतेरे लोगों को इसके बुनियादी सिद्धांतों की अच्छी समझ आज भी नहीं है। वैसे में यह पुस्तक उनके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसमें मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धांतों को बहुत सुलझे तरीक़े से और बड़ी सहज-सुगम भाषा में सामान्य पाठकों के लिए प्रस्तुत किया गया है। भारतीय दर्शन का संक्षिप्त परिचय देते हुए यह मार्क्सवाद की एक देशज परिप्रेक्ष्य में व्याख्या तो करती ही है, साथ ही मार्क्स की एक जीवनी भी प्रस्तुत करती है। पुस्तक का एक मक़सद यह भी है कि भारत में मार्क्सवादी आंदोलन के इतिहास और भविष्य का आकलन किया जाए। आज जब पूंजीवाद दुनिया की सर्वस्वीकृत व्यवस्था बन चुकी है, वहीं बराबरी के सवाल भी उतनी ही प्रासंगिकता से उठ खड़े हुए हैं। मार्क्स के दर्शन का आधार ही बराबरी पर आधारित व्यवस्था है, किंतु किताब पूछती है कि क्या वामपंथी होने का दावा करने वाले स्वयं इन भावनाओं से संचालित हैं? 20 अध्यायों व 3 परिशिष्टों में विभक्त 190 पृष्ठों की यह पुस्तक राजनीति-अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी है।

राजपाल प्रकाशन / **मार्क्सवाद के मूलभूत सिद्धांत /**
अशोक कुमार पांडेय/ 295 रुपए ▪

महाकवि के जीवन और युग पर उपन्यास

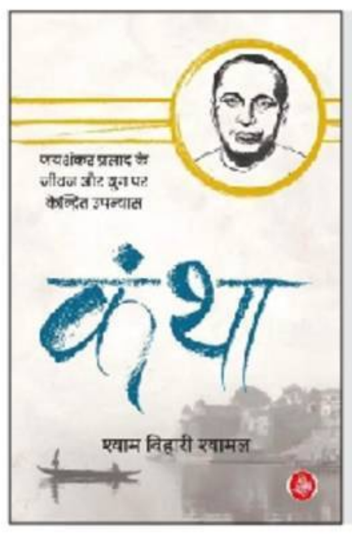

मूर्धन्य साहित्यकार और छायावाद के आधार-स्तम्भ जयशंकर प्रसाद की रचनाओं से तो सभी परिचित हैं, किंतु क्या हम उनके जीवन के बारे में भी उतना ही जानते हैं? शायद नहीं। इसी अभाव की पूर्ति उनके जीवन पर लिखा गया यह उपन्यास करता है।

जयशंकर प्रसाद का नाम हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकारों में अग्रगण्य है। उन्हें उनके महाकाव्य कामायनी, उनके ऐतिहासिक नाटकों, मार्मिक कहानियों और विचारोत्तेजेक उपन्यासों के लिए जाना जाता है, साथ ही वे छायावाद के आधार-स्तम्भ के रूप में पंत, निराला और महादेवी के साथ प्रतिष्ठित हैं, किंतु उनके तुमुल कोलाहल भरे जीवन की कहानी से दुनिया अब तक प्राय: अपरिचित रही है। अब प्रसाद के महाप्रयाण के पूरे आठ दशक बाद उनकी जीवन-कथा पहली बार पूरे विस्तार से प्रस्तुत की जा रही है और वह भी उपन्यास के स्वरूप में। यह हिंदी के निष्ठावान पाठकों के लिए निश्चय ही रोमांच का अवसर है। सुपरिचित कथाकार श्याम बिहारी श्यामल ने इस कृति में प्रसाद का जीवन-चित्र तो आंका ही है, बीसवीं सदी के आरम्भिक दौर को उसके सम्पूर्ण रूप-गुण, राग-रंग, घात-प्रतिघातों के साथ साकार कर दिया है, जिसमें प्रसाद का व्यक्तित्व विकसित हुआ था। पुस्तक में प्रसाद के साथ ही उनके युग की दूसरी विभूतियों के सजीव-चित्र भी उभरे हैं। प्रसाद के युग को रचने के लिए लेखक ने उपन्यास में जैसी तत्समनिष्ठ भाषा और क्लासिकी दृश्यशैली को गढ़ा है, वह एक विरल अनुभव है। 550 पन्नों का यह ग्रंथ हिंदी भाषा-साहित्य के हर अनुरागी को पढ़ना चाहिए।

राजकमल पेपरबैक्स / **कंथा /**
श्याम बिहारी श्यामल / 599 रुपए ▪

सोशल मीडिया का अनसोशल होना

अन
सोशल
नेटवर्क
दिलीप मंडल
गीता यादव

किताब 'अनसोशल नेटवर्क' भारत के विशिष्ट संदर्भों में सोशल मीडिया का विस्तृत एवं सम्यक आकलन पेश करती है। सोशल मीडिया के सकारात्मक पहलुओं के साथ-साथ यह इसके संभावित ख़तरों की ओर भी इशारा करती है।

बीते कुछ सालों के दौरान सोशल मीडिया विषय पर कई पुस्तकें आई हैं। दिलीप मंडल और गीता यादव द्वारा लिखी 'अनसोशल नेटवर्क' को इसी कड़ी की अगली पुस्तक माना जा सकता है। हालांकि यह इस मायने में दूसरी तमाम पुस्तकों से अलग है कि यह सोशल मीडिया की पड़ताल भारतीय संदर्भों में करती है। और जब भारतीय संदर्भ आते हैं तो जातिवाद, साम्प्रदायिकता, मॉब लिंचिंग जैसे कारक अपने आप नत्थी हो जाते हैं और फिर इनके साथ सोशल मीडिया को देखना रोचक व विशिष्ट बन जाता है। सोशल मीडिया "अनसोशल' क्यों है, इस प्रश्न का बारीकी से विश्लेषण करते हुए पुस्तक कहती है, 'यह बात अब साबित हो चुकी है कि सोशल मीडिया कहने को तो आपको दुनिया के किसी भी सोशल मीडिया यूज़र से मिला सकता है, लेकिन वास्तविकता में फ़ेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, लिंक्डइन या व्हाट्सएप जैसी जगहों पर लोग हर समय अपने ही जैसे कुछ लोगों के बीच घिरे रहते हैं।' यह बयान इस बात की तस्दीक़ करने के लिए पर्याप्त है कि सोशल मीडिया के ज़रिए सोशल होने के तर्क छलावे से ज़्यादा कुछ नहीं हैं। फ़ेक न्यूज़, जेंडर विमर्श, सोशल मीडिया पर अफ़वाहें, वायरल कंटेंट की तकनीक जैसे मुद्दों को भी पुस्तक में शामिल किया गया है।

राजकमल प्रकाशन / अनसोशल नेटवर्क
दिलीप मंडल एवं गीता यादव / मूल्य - 199 रुपए ▪

पिछड़े और वंचित वर्ग की सच्चाई का बयान

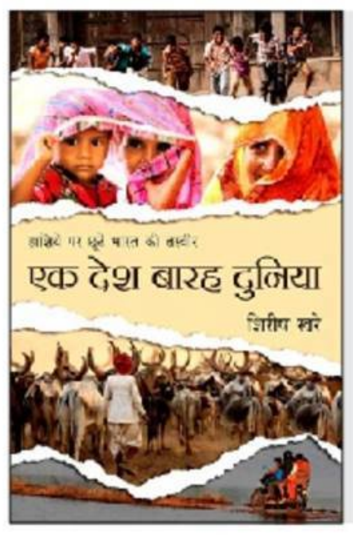

शिरीष लम्बे समय से वंचित समुदाय की आवाज़ बनकर उनकी समस्याएं सामने ला रहे हैं। यह पुस्तक भी उनके इसी नेक प्रयास का एक अन्य सोपान है। 12 रिपोर्ताजों से तैयार हुई यह पुस्तक हमारे राष्ट्र के अलग ही परिदृश्य को पाठकों के सामने उघाड़कर रख देती है।

इस पुस्तक का शीर्षक है 'एक देश बारह दुनिया', किंतु जब आप पृष्ठ-दर-पृष्ठ यात्रा करते हुए आगे बढ़ते हैं तो उन बारह दुनियाओं के भीतर अनेकानेक दुनियाओं से रूबरू होते हैं। यह एक रिपोर्ताज है जो आंखों पर आधुनिकता का ऐनक चढ़ाए महानगरों से कोसों दूर अंचलों के जीवन को उघाड़ कर हमारी आंखों के सामने ला रख देता है। बारह रिपोर्ताजों में से अधिकतर महाराष्ट्र के ग्रामीण क्षेत्रों के हैं। कुछ मध्यप्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ के भी हैं। इसमें ग्राम्य जीवन की सुंदर और सुखद अंत वाली कहानियां नहीं हैं, बल्कि सच्ची घटनाएं हैं, सच्चे पात्र हैं, ग्राम, नदी, पर्वत, घाटी सब कुछ वास्तविक है। मेलघाट की कुपोषण से दम तोड़ते शिशुओं की दारुण वास्तविकता हो, छत्तीसगढ़ के जंगलों की वेदना या नर्मदा पर बांधी जा रही सीमेंट की मोटी दीवारें हों, ये सब वृत्तांत आपको विचार करने पर मजबूर कर देते हैं। सिर्फ़ ग्राम्य और आंचलिक जीवन ही नहीं, पुस्तक में वर्णित कमाठीपुरा की तंग गलियों की स्त्रियों की जीवन कथाएं भी अत्यंत मार्मिक हैं। शिरीष लम्बे समय से वंचित और पीड़ित समुदाय की आवाज़ बन रहे हैं और यह पुस्तक उनकी इसी पुरज़ोर कोशिश का सुखद परिणाम है। ज़मीनी सच्चाई की गहन विवेचना करता यह रिपोर्ताज एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है। विशेषकर सामाजिक क्षेत्र में काम करने वाले बौद्धिकों, कार्यकर्ताओं को इस पुस्तक का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

राजपाल एंड संज़ / **एक देश बारह दुनिया /** शिरीष खरे / 295 रुपए ▪

अक्षरों के संसार की तरह अनंत है किताबों की दुनिया...।

'अहा! ज़िंदगी' के इस स्तम्भ में हम लाए हैं हाल ही में प्रकाशित ऐसी किताबों का ब्योरा, जो पाठकीय रुचि के दृष्टिकोण से आपके लिए उपयोगी, मनोरंजक, मार्मिक और सुरुचिपूर्ण साबित हो सकती हैं...

कामकाज और प्रगति में सहायक है यह धर्म-ज्ञान

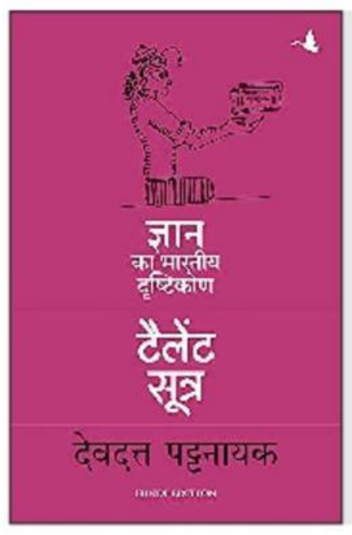

देवदत्त के अनुसार, ज्ञान की देवी सरस्वती का नाम सरस यानी कल्पना के प्रवाह से निकला है। कल्पना ही हमें खोज और नई राह के निर्माण में सक्षम बनाती है। इस तरह की जानकारियों की बदौलत यह किताब बेहतर कामकाज और प्रगति में मददगार हो सकती है।

भारतीय पौराणिक ग्रंथों को आध्यात्मिक और व्यावहारिक, दोनों तरह के ज्ञान-भंडार के रूप में देखा जाता है। देवदत्त पट्टनायक ने बौद्धिक नज़रिए से उनमें से प्रतिभा के सूत्र ढूंढ निकाले हैं। ज़ाहिर है, यह प्रतिभा रोज़मर्रा के जीवन, ख़ासतौर पर दफ़्तरी और कारोबारी कामकाज में काम आने वाली है- जहां टीम गेम की दरकार होती है और सदस्यों के योगदान से प्रोजेक्ट की सफलता सुनिश्चित होती है। इस प्रक्रिया में देवी-देवताओं के नाम, स्वरूप और कथाओं की अनूठी व्याख्या करते हुए देवदत्त पाठकों को एक नवीन दृष्टि देते हैं। डेढ़-दो पृष्ठों के छोटे-छोटे अध्यायों के अंत में उन्होंने आज की परिस्थितियों के कुछ काल्पनिक उदाहरण दिए हैं कि प्राचीन ज्ञान-सूत्र कैसे आधुनिक कार्यस्थलों के लिए भी अत्यावश्यक और कारगर हैं। मिसाल के लिए, गोपियां कृष्ण के पास खिंची चली आती हैं, क्योंकि कृष्ण उनमें से हर एक के लिए एक अलग रूप बना लेते हैं और उस पर पूरा ध्यान केंद्रित करते हैं। देवदत्त कहते हैं कि हर कोई ध्यान रखने वाली दृष्टि चाहता है। वे एक दफ़्तर के उदाहरण से बताते हैं कि आत्मकेंद्रित बॉस अपनी टीम से ताक़त छीनकर उसे शक्तिहीन बनाता है। इस तरह पुस्तक धर्म के ज्ञान को असल जीवन में उतारने के लिए प्रेरित करती है।

मंजुल पब्लिशिंग हाउस / **टैलेंट सूत्र /**
देवदत्त पट्टनायक / 250 रुपए ▪

बस्तर की उथल-पुथल की जीती-जागती तस्वीर

लोकबाबू
बस्तर बस्तर
यह अरण्य तो दण्ड का है महाराज!

उपन्यास का उपशीर्षक है : यह अरण्य तो दंड का है महाराज! यहां दंड शब्द अभिधा और व्यंजना, दोनों अर्थों में है। इक्ष्वाकु-पुत्र दंड के नाम पर दंडकारण्य हुआ बस्तर कई दशकों से त्रासदी झेलते स्थानीय निवासियों के लिए सज़ा की भूमि बना हुआ है।

कोई बेहतरीन कथा सिर्फ़ घटनाओं और संवादों का समुच्चय नहीं होती, बल्कि इतिहास, भूगोल, भाषा और संस्कृति को भी समाए होती है। अनगिनत कथाओं को समेटे बस्तर, जो ख़ुद जीते-जागते महाकाव्य की तरह है, के विविध पक्षों को लोकबाबू ने अपने उपन्यास में बड़ी कुशलता से दर्ज किया है। 331 पृष्ठों की इस गाथा में बस्तर का पौराणिक इतिहास है तो उसकी वर्तमान त्रासदी भी। आदिवासियों की जीवनशैली का परिचय देते हुए किताब उनकी दुश्वारियों, उनके साथ होने वाले अन्याय और अत्याचार को सामने रखती है। इस दरम्यान बस्तर की स्थानीय बोली, उसकी लोक परंपराओं, जनश्रुतियों, खानपान, शिकार आदि के चित्र खिंचते चले जाते हैं- सबकुछ कथाओं को गूंथने वाले तंतुओं की तरह एकदम सहज-स्वाभाविक ढंग से! छत्तीसगढ़ के लोकजीवन को संवेदनशील ढंग से चित्रित करने वाले लोकबाबू ने उस बस्तर की मार्मिक गाथा कही है, जो कभी प्राकृतिक संसाधनों के लिहाज़ से भारत का सबसे समृद्ध इलाक़ा था, लेकिन लंबे समय से एक युद्धक्षेत्र बना हुआ है। साहित्यकार ज्ञानरंजन के अनुसार, यह कथानक दीर्घ, सघन और महाकाव्यात्मक है। उपन्यास के व्यापक कैनवास को देखते हुए इस टिप्पणी में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

राजपाल एंड संज़ / **बस्तर बस्तर /**
लोकबाबू / 450 रुपए ▪

वीर जवानों की रोमांचक और प्रेरक गाथाएं

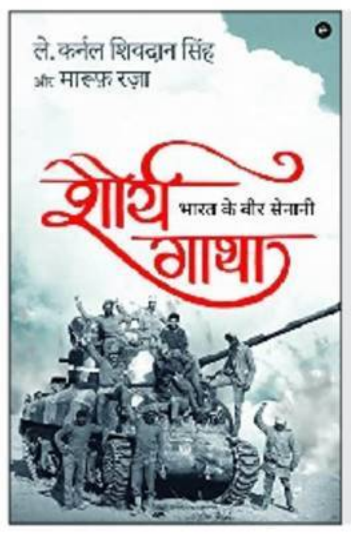

यह पुस्तक वास्तविक घटनाओं और देश की सुरक्षा से संबंधित विषयों पर लिखी गई है। इसके कथानक को एकत्र करने के लिए युद्धों में हिस्सा ले चुके सेवानिवृत्त अधिकारियों और सैनिकों से संवाद किया गया है। पुस्तक में अनेक ज़रूरी सूचनाएं संकलित की गई हैं।

विभाजन के बाद से ही भारत की हर सीमा पर घुसपैठ की कोशिशें होती रही हैं, पर भारतीय सशस्त्र बल के जांबाज़ों ने हर उस कोशिश को नाकाम कर दिखाया है। लोगों के ज़ेहन में युद्धों की यादें तो रह जाती हैं, पर जिन निडर-वीरों ने इन्हें लड़ा और हमें सुरक्षित रखा, अकसर हम उन्हीं को भूल जाते हैं। मिसाल के तौर पर हमें याद नहीं होगा कि 1947 में आज़ादी के बाद कश्मीर में लड़ी गई पहली लड़ाई में मेजर सोमनाथ शर्मा ने देश के लिए जान न्योछावर कर भारत का सर्वोच्च शौर्य सैन्य अलंकरण परमवीर चक्र पाया था। 1962 और 1965 के युद्धों में यही सम्मान पाने वाले मेजर शैतान सिंह और हवलदार अब्दुल हमीद भारत के महान शहीदों में शुमार हैं। 1971 में बांग्लादेश में लड़े गए युद्ध में कर्नल शमशेर सिंह, लेफ़्टिनेंट अरुण खेत्रपाल, 1987 की सियाचिन लड़ाई में हवलदार बाना सिंह और मेजर गणपति, 1999 के करगिल युद्ध में कैप्टन विक्रम बत्रा की वीरता के क़िस्से अब किंवदंतियां बन चुके हैं। इस किताब में ऐसे वीर जवानों की गाथाओं को बहुत शोध और लगन से सूचनाएं संकलित कर वर्णित किया गया है। पुस्तक में रणकौशल संबंधी ब्योरे और युद्धों की समीचीन विवेचना भी है। एक पठनीय दस्तावेज़।

एका / शौर्यगाथा : भारत के वीर सेनानी /
ले. कर्नल शिवदान सिंह और मारूफ़ रज़ा / 199 रुपए ▪

महिला खिलाड़ियों के जज़्बे की कहानियां

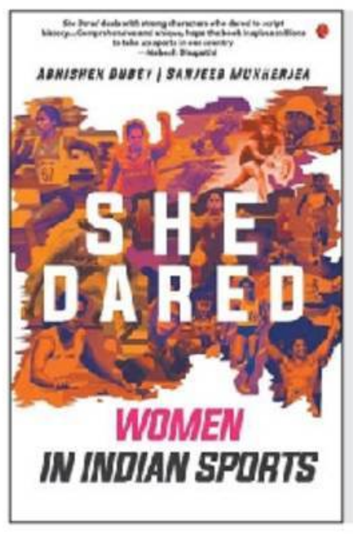

भले ही टोक्यो ओलिम्पिक्स में कई महिला खिलाड़ियों के अविस्मरणीय प्रदर्शन की मीडिया में भूरि-भूरि प्रशंसा हुई हो, उन्हें पलक-पावड़ों पर बैठाया गया हो। लेकिन क्या महिलाओं का खेल के मैदान में उतरना इतना ही आसान रहा है?

हाल के वर्षों में महिला खिलाड़ियों के प्रति जनमानस में बदलाव आया है, लेकिन खेल के मैदानों में अस्मिता की तलाश अब भी जारी है। इसलिए वरिष्ठ खेल पत्रकार अभिषेक दुबे और संजीब मुखेरजा जब "शी डेयर्ड : वुमन इन इंडियन स्पोर्ट्स' लिखते हैं तो वे महिला खिलाड़ियों के उसी जज़्बे को सलाम कर रहे होते हैं। यह किताब एमडी वालसम्मा, पीटी ऊषा, अश्विनी नाचप्पा, कर्णम मल्लेश्वरी से लेकर पीवी सिंधु, साक्षी मलिक, दूती चंद और दीपा कर्माकर सहित 14 महिला खिलाड़ियों के संघर्ष की कहानियों को समेटे है। यहां केवल इन महिला खिलाड़ियों की सतही प्रोफ़ाइल भर नहीं है, बल्कि लेखकद्वय ने स्वयं इन महिला खिलाड़ियों, उनके परिवार के सदस्यों, उनके प्रशिक्षकों और सपोर्ट स्टॉफ़ तक पहुंचकर फ़र्स्ट हैंड सूचनाएं एकत्र कीं और उन्हें अपनी स्टोरीज़ का आकार दिया। इस किताब के लिए महिला खिलाड़ियों का चयन खेल के मैदान में प्रदर्शन के आधार पर ही नहीं किया गया, बल्कि अमुक खिलाड़ी ने उस खेल विशेष के परिदृश्य को बदलने में क्या भूमिका निभाई या उसने किस तरह से आने वाली पीढ़ियों के लिए मील के पत्थर स्थापित किए, इसे भी ध्यान में रखा गया। इसलिए यह किताब केवल महिला खिलाड़ियों की सफलता की ही बात नहीं करती, बल्कि इससे भी ज़्यादा फ़ोकस इस पर रहा है कि उन्होंने अपने सीमित संसाधनों की सीमा के भीतर रहते हुए कितने प्रयास और किस तरह का संघर्ष किया।

रूपा पब्लिकेशन्स / **शी डेयर्ड : वुमन इन इंडियन स्पोर्ट्स /** अभिषेक दुबे एवं संजीब मुखेरजा / 295 ▪

पुरस्कृत रचनाएं

सौभाग्य का बंधन

सात साल की उम्र में रश्मि के हाथ घरवालों ने पीले कर दिए। उस मासूम उम्र में रश्मि विवाह के मायने नहीं जानती थी, पर आज 20 की उम्र में वह इतना ज़रूर जानती थी कि जिसके साथ उसके जीवन की डोर बांधी गई थी वह अनपढ़ और नशेड़ी लड़का उसके लायक़ क़तई नहीं है।

लड़के वालों ने गौना करने के लिए दबाव डाला तो रश्मि ने साफ़ इंकार कर दिया कि वह इस बाल विवाह को नहीं मानती।

घर की इज़्ज़त से लेकर समाज तक की दुहाई दी गई पर रश्मि पक्के इरादों वाली, पढ़ी-लिखी, नए ज़माने की युवती थी जिसकी आंखों में कुछ बनने के ख़्वाब तैर रहे थे। सारे दबावों को दरकिनार करते हुए रश्मि ने प्रशासनिक सेवा की परीक्षा में टॉप कर दिखाया।

आज जब वह अपने सहकर्मी प्रियांशु के साथ विवाह की पहली वर्षगांठ मना रही थी तो सभी मिलकर एक साथ उसे सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद प्रदान कर रहे थे।

कुछ साल पहले जहां घरवाले और समाज बाल विवाह का बंधन तोड़ देने पर आपत्ति जता रहे थे वे ही आज उसके ऊपर शुभकामनाओं के फूल बरसा रहे थे।

– इंद्रजीत कौशिक, बीकानेर

•••

अनोखी सुहागन

शिवानी करवा चौथ का व्रत रखने की तैयारी कर रही थी। तभी उसकी सास कमला ने उससे कहा- बेटा, तुम्हें करवा चौथ का व्रत नहीं रखना चाहिए।

-क्यों नहीं रखना चाहिए मां? शिवानी ने पूछा।

-क्योंकि तुम विधवा हो..! कमला ने कहा।

-मां, मैं विधवा नहीं हूं। मैं तो करवा चौथ का व्रत रखूंगी। शिवानी ने दृढ़ता से कहा।

-लेकिन बेटा, हमारी बिरादरी और गांव वाले क्या कहेंगे? कमला ने चिंतित स्वर में कहा।

-मां, मैं उनकी चिंता नहीं करती। जब लोग कहते हैं कि देश पर शहीद होने वाला सैनिक अमर हो जाता है, तब क्या मैं सुहागन नहीं हूं? मां! भले ही वे लड़ते हुए सात महीने पहले शहीद हो गए हैं, लेकिन आज भी हमारे और लोगों के दिलों में ज़िंदा हैं, तब क्यों न मैं करवा चौथ का व्रत रखूं?

कमला उसकी बातें सुनकर निरुत्तर हो गई, और फिर उसके सिर पर नम आंखों से हाथ रख, आशीर्वाद देते हुए बोली- सदा सौभाग्यवती भव।

– राम मूरत 'राही', इंदौर

•••

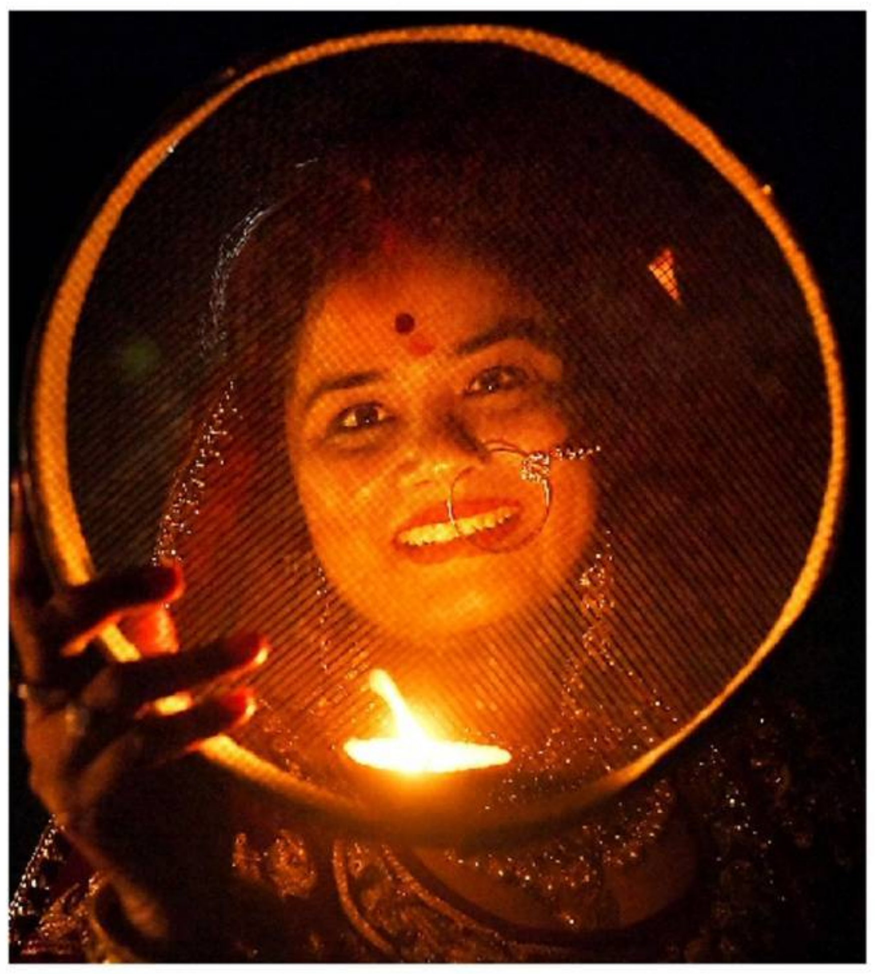

व्रत

शिव, पार्वती, गणेश जी, कार्तिकेय भगवान
हो अखंड सौभाग्य मम, दो अनुपम वरदान

आई कार्तिक मास में, करक चतुर्थी क्षेम
छलनी में रख दीप को, चन्द्र-अर्घ्य सप्रेम

शुभ व्रत करवा चौथ का, है सुहाग प्रतिमान
पति-पत्नी का सौख्य-रथ, रहे सदा गतिमान

पति को लंबी उम्र दो, हे! कृपालु रजनीश
मेरा भी सौभाग्य श्री, फूले फले अधीश

एक चंद्र है व्योम में, एक बसा उर बीच
लसे-हंसे समरूप से, रही मैं प्रेम उलीच

कितना प्यारा लग रहा, चंद्रोदय का दर्श
पूर्ण निर्जला व्रत हुआ, उर में छाया हर्ष

– गौरीशंकर वैश्य विनम्र, लखनऊ

•••

मुक्तक

हो अटल सौभाग्य तेरा, व्रत सफल हो भामिनी।
शुभ्र नव आभा बिखेरे, रूप निर्मल चांदनी।
नेह के दो नयन दीपक, जल रहे हैं प्यार में
सृष्टि का आशीष प्रिय की, तू बने अनुगामिनी।

सज-संवर श्रृंगार करके, रूप को अपने निखारे।
ओट चलनी की लगा वह, चांद को अपलक निहारे।
हास अधरों में मधुरतम, नेह की शुभ वर्तिका से
प्रेयसी प्रिय चन्द्रमा की, आरती हंस कर उतारे।

रूप का श्रृंगार अनुपम, कर रही है प्यार में।
रूप छवि सौन्दर्य मोहक, दे रही उपहार में।
सृष्टि का संकल्प व्रत ले, कर रही शुभ अर्चना
कह रही है प्रिय तुम्हीं हों, बस तुम्हीं संसार में।

– श्याम सुन्दर श्रीवास्तव 'कोमल', लहार

•••

प्रशंसनीय प्रयास

तीन साल

आज करवाचौथ है। आज क़रीब तीन साल बाद मेरे पति घर वापस आने वाले हैं। मैंने इन तीन सालों में उनसे कितनी बार कहा कि आप इस करवाचौथ छुट्टी लेकर घर आ जाइए, लेकिन वो हमेशा कहते थे इस साल नहीं हो पाएगा काम बहुत ज़्यादा है। कभी-कभी मुझे बहुत नाराज़गी होती, फिर याद आता कि वो अपने काम के प्रति बहुत ईमानदार हैं, और उनकी यही विशेषता मुझे बहुत पसंद है। कॉलेज के दिनों में उनके इसी व्यक्तित्व ने मुझे प्रभावित किया और कॉलेज के बाद हमने शादी कर ली।

तीन साल हो गए हैं उनसे दूर रहते। सरकारी नौकरी है इसलिए साल-दर-साल उनका स्थानांतरण एक शहर से दूसरे शहर होता रहता है। आज उनका फोन आया कि वो शाम को यहां पहुंच जाएंगे। मैंने करवाचौथ की तैयारी शुरू कर दी।

शाम के पांच बाजे उनका कॉल आया। मैंने सोचा वो आ गए हैं और मैंने गेट की तरफ़ जाते हुए उनका कॉल उठाया। दूसरी तरफ़ से आवाज़ आई- माफ़ करना गीता, मैं आने ही वाला था लेकिन अस्पताल में एक बहुत ही गंभीर मरीज़ आया है, उसकी हालत नाज़ुक है, मुझे वापस जाना पड़ेगा।

उनकी बातों को सुनकर मैं थोड़े वक़्त तक शांत थी। फिर मुस्कराकर कहा- आपकी यही ईमानदारी मुझे पसंद है, अपना ख़्याल रखिएगा। किसी ने क्या ख़ूब कहा है-

तुम्हारा साथ रहना ज़रूरी नहीं,
तुम जहां रहो ख़ुश रहो ये ज़रूरी है।

– द्रोणा प्रसाद हियाल, कोंडागांव

•••

अपराजिता

इस बार की करवाचौथ अनिता के लिए सबसे ख़ास है, क्योंकि वह सुरेश को नया जीवन दिलवाकर लाई थी।

सुरेश को अप्रैल में कोरोना हुआ था। कोरोना काल में अनिता मानो साक्षात सावित्री बनकर यमराज से लड़ी। अनिता का साथ देने वाला कोई नहीं था। परिवार में ससुर और दो छोटे बच्चे थे। बीमार पति को स्कूटी पर बिठाकर सभी छोटे-बड़े अस्पतालों की ख़ाक छानने के बाद जब कहीं जगह नहीं मिली, तब बड़ी लड़ाई लड़कर सरकारी अस्पताल में एक बेड हासिल करने में सफल हुई। अब समस्या थी ऑक्सीजन की जो वहां थी तो सही, पर सीमित मात्रा में। एक परिचित के माध्यम से जैसे-तैसे ऑक्सीजन का छोटा सिलेंडर मिला। अब तक अनिता को ये पता चल गया था कि लड़ाई लंबी चलने वाली है और इसके लिए उसने मानसिक तौर पर अपने को तैयार कर लिया था।

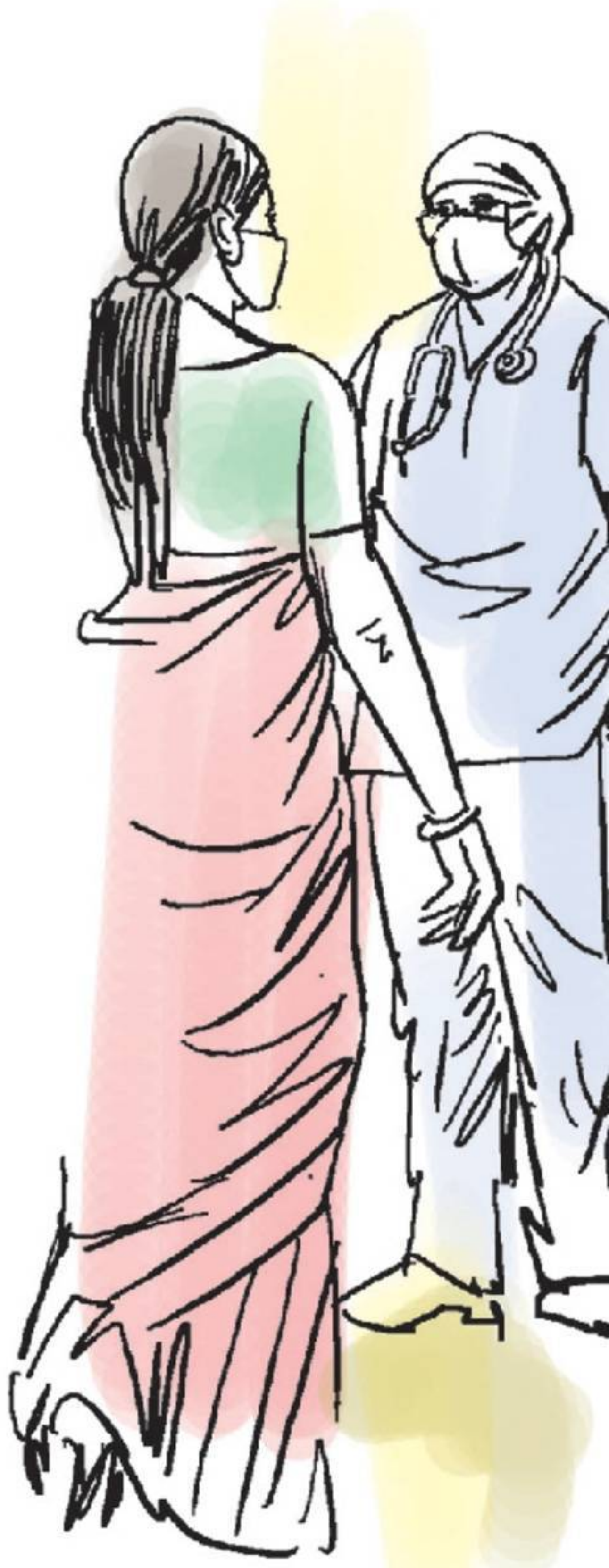

जब डॉक्टर ने डिस्चार्ज-पेपर देने को कहा तो वो डॉक्टरों से झगड़ ली- नहीं, पहले उन्हें ठीक होने दीजिए, बाद में छुट्टी देना। डॉक्टर जैसे-तैसे करके माने। परंतु वे दो राउंड में केवल औपचारिकता पूरी करके चले जाते थे। अब अनिता ने प्राइवेट डॉक्टर से ट्रीटमेंट लिखवाकर चुपचाप सरकारी अस्पताल में इलाज शुरू किया। सुरेश की तबीयत में धीरे-धीरे सुधार होने लगा था। आख़िरकार वो जीतकर ही उन्हें घर लेकर आ गई।

शायद यमराज ने भी उसकी हिम्मत और हौसला देखकर उसे ये आशीर्वाद दे दिया था- सौभाग्यवती भव।

– भावेश कानूनगो, देवास

सौभाग्यवती

आज फिर वह आईने के सामने तैयार हो रही थी। बिल्कुल सोलह श्रृंगार कर, किसी दुल्हन की तरह। इस तरह तैयार होते उसे कई साल बीत गए थे। हर बार करवाचौथ पर वह पूरे नियम के साथ व्रत रखती। आस-पास की औरतें, पीठ पीछे हंसतीं भी। लेकिन वह अपनी उम्मीद की ज्योत बुझने नहीं देती।

ठीक दस साल पहले करवाचौथ से कुछ ही दिन पहले किसी बात से नाराज़ हो प्रदीप घर छोड़कर चले गए थे। काफ़ी समय बीतने के बाद भी जब वे नहीं लौटे, तो लोगों ने उम्मीद छोड़ दी। लेकिन उसे पूरा विश्वास था कि प्रदीप एक दिन ज़रूर लौटेंगे।

इसी विश्वास पर हर साल वह व्रत करती, फिर तस्वीर देख स्वयं ही व्रत तोड़ती। आज भी पूजा के बाद वह अनमने और उदास मन से चांद को देखने के बाद तस्वीर देख व्रत खोलने जा रही थी। तभी सामने किसी की धुंधली परछाईं देख ठिठक गई। उसने आंखें मलते हुए फिर से देखा तो उसे यक़ीन नहीं हुआ। यह तो प्रदीप थे... इतने सालों बाद! चांदनी के उजाले में जब उनका चेहरा साफ़ हुआ तो मन के सारे मैल धुल गए।

उसे लगा मानो स्वयं चतुर्थी के चंद्रमा ने उसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया हो।

– **अलका सोनी,** बर्नपुर

•••

हमजोली

'अब वो उम्र नहीं रही। तुम्हारी सेहत भी तो ठीक नहीं रहती।' रवि ने सुधा को करवा चौथ का व्रत न रखने की सलाह देते हुए कहा। लेकिन सुधा मानने को तैयार न थी। इसलिए रवि ने कहा कि वो भी सुधा के साथ व्रत रखेगा। ये सुनकर सुधा उसे ढलती उम्र और उच्च रक्तचाप की बीमारी का हवाला देकर मना करने लगी, लेकिन रवि की ज़िद थी कि यदि सुधा निर्जला व्रत रखेगी तो वो भी निर्जला व्रत रखेगा। तब सुधा ने कहा- 'अच्छा ठीक है, यदि तुम्हारी मेरे साथ ही व्रत रखने की ज़िद है तो तुम्हें निर्जला व्रत के बजाय ज्यूस इत्यादि पीना होगा।' ये सुनकर रवि ने कहा- 'मेरी शर्त तो अब भी वही है, यदि तुम पियोगी तो मैं भी पियूंगा।'

रवि को अपने साथ करवा चौथ का व्रत और तिस पर ये हठ करते देख सुधा के चेहरे पर मुस्कराहट आ गई। अब दोनों ने करवा चौथ का व्रत निर्जला के बजाय फलों का रस इत्यादि पीकर रखा। आख़िर रवि ने अपने चांद को मना ही लिया था।

– **जया विनय तागड़े,** भोपाल

•••

वरेण्य

भाईसाहब जब बॉर्डर पर होते हैं- पड़ोसन ने सुनीताजी से पूछा- तो आप करवा चौथ क्या मोबाइल से मनाती हो?

मैं तो रोज़ ही करवा चौथ मनाती हूं- फ़ौजी की पत्नी का गौरवशाली जवाब था- ताकि मेरा ही नहीं, देश की करोड़ों सुहागिनों का करवा चौथ सुख-चैन से मने।

– **संतोष सुपेकर,** उज्जैन

सिंदूर

दीपक की रोशनी, मांग में सिंदूर
एक चांद मेरे पास, एक है दूर

सदा सलामती की उनकी दुआ मांगती
सौभाग्यवती रहूं, बस यही चाहती

सुहाग की चुनर ओढ़े देखूं छननी ,
सदा रहे साथ जैसे तुझ संग चांदनी।

-सरिता फाये, रायपुर

•••

अनुपम कृति

सम्पूर्ण श्रृंगारित तन से सजी
अपूर्व पुलकित मन से भरी
यह दमकती छवि तुम्हारी
दाम्पत्य की निर्विघ्नता पाती

इस निश्छल मुस्कान में समाहित
सकल कुटुम्ब की ख़ुशियां सारी
संयम-साधना की पहल तुम्हारी
प्रकृति के भी मन भाती

करवा चौथ के व्रत कठिन
त्याग-समर्पण की महिमा न्यारी
सचमुच अतुलनीय शोभा तुम्हारी
सौभाग्य का आशीष पाती

– **सुधीर कुमार सोमानी,** देवास

•••

गगन-सितारा

मुख चंदा बिंदिया सूरज-सी
लौ दीपक की है झिलमिल-सी

अधरों पर मुस्कान नवेली
अनसुलझी अनबूझ पहेली

कहे मांग लो कोई मन्नत
क़ैद करो छलनी में क़िस्मत

आज उतारो तारे आंगन
खड़े सामने हैं मनभावन

बने साक्षी गगन-सितारा
अमिट रहे सौभाग्य तुम्हारा

– **आशा शर्मा,** बीकानेर

•••

चित्र पहेली 152

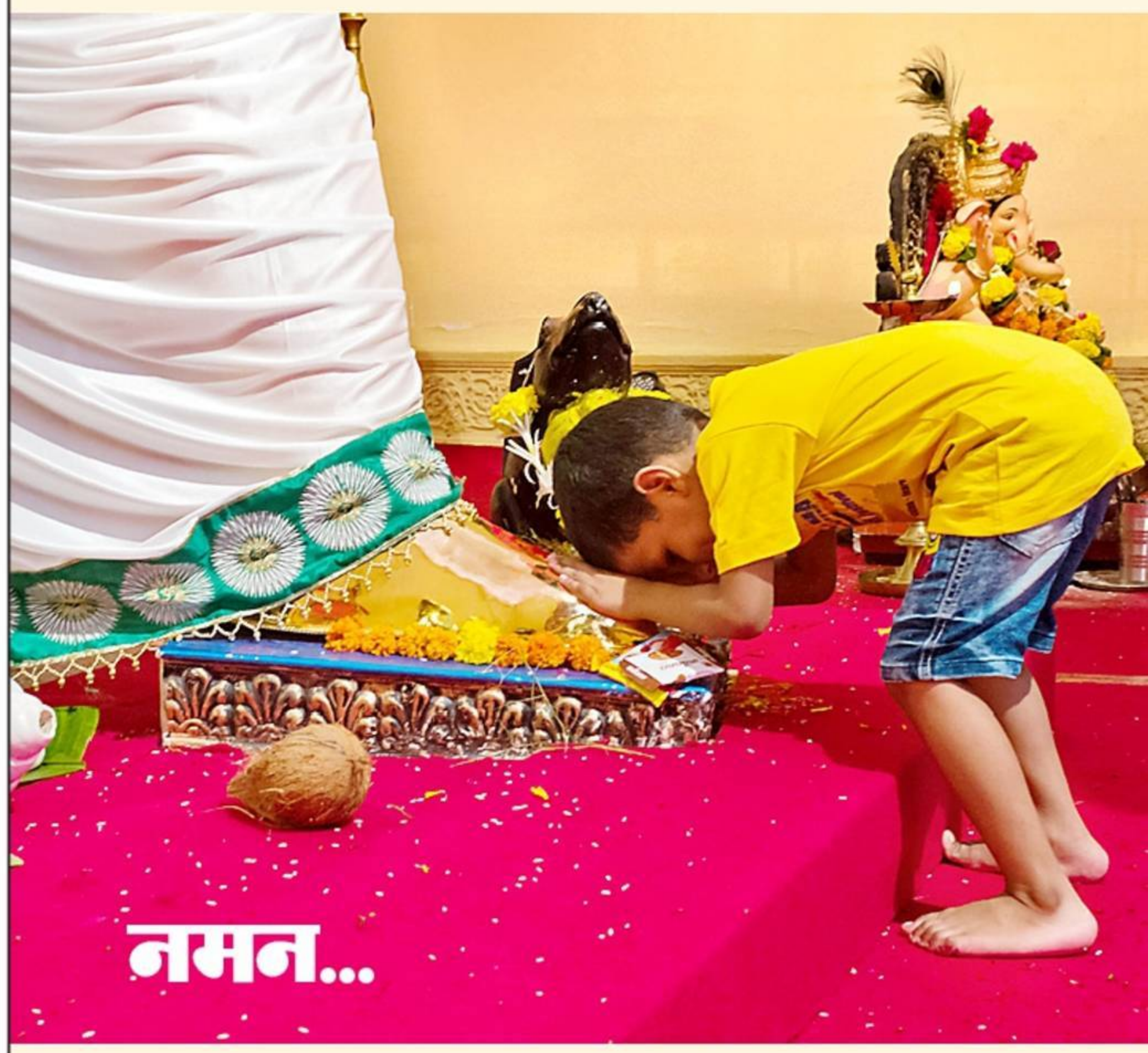

नमन...

इस चित्र पर 50 शब्दों में कुछ लिख भेजें- कविता, कैप्शन या लघुकथा।

सर्वश्रेष्ठ पांच प्रविष्टियों पर **500 रुपए** के पुरस्कार।

– **प्रविष्टि ईमेल ahazindagi@dbcorp.in पर भेजें।** – प्रविष्टि शीर्षक पर आधारित हो, ज़रूरी नहीं, लेकिन चित्र के भाव पर आधारित हो, यह ज़रूरी है। – कृपया एक से अधिक प्रविष्टि न भेजें। – प्रविष्टि भेजने की अंतिम तिथि 25 जुलाई 2021 है।

इनकी भी सहभागिता रही

दिलीप भाटिया, रावतभाटा । **नीरज कुशवाहा,** सांगानेर
सोनल ओमर, सचेंडी । **अशोक वाधवाणी,** कोल्हापुर
डॉ. नवीन दवे मनावत, सांचोर । **अवधेश मंगल,** मुरैना
पी.बी. गरिमा, पूर्णिया । **मनोज सिंह तानाण,** तारानगर
मुकुल वर्मा, जबलपुर । **सूर्यदीप कुशवाहा,** वाराणसी
विजय खत्री, डीसा । **आशीष पाल सिंह,** झालावाड़
गोविंद भारद्वाज, अजमेर । **अलका सोनी,** आसनसोल
जगदीश नारायण शर्मा, पाटन । **संजीवनी बरगल,** इंदौर
शैलेष कुमार शर्मा, जयपुर । **योगिता शर्मा,** जयपुर
निशा गुप्ता, पटना । **अनुराधा शर्मा,** दौसा
वैभव कोठारी, खंडवा । **दीपिका पोद्दार,** इंदौर
सुनीता यादव, नई दिल्ल । **प्रतिमा शिधये,** इंदौर
संजय डागा, हातोद । **बबीता गुप्ता,** बिलासपुर

•••

आपको **पत्रिका कैसी लगी, इस बारे में ज़रूर बताएं। हमारा पता है-**

अहा! ज़िंदगी, दैनिक भास्कर,
द्वारका सदन, 6, प्रेस कॉम्प्लेक्स, एम.पी. नगर,
भोपाल- 11, मध्यप्रदेश
ईमेल: **ahazindagi@dbcorp.in**

प्रसन्नता का चुम्बक

प्रसन्नता सिर्फ़ अच्छी अनुभूति नहीं कराती, बल्कि वह तमाम अच्छी चीज़ों को आपके जीवन में आकर्षित भी करती है।

प्रसन्न होना आसान है और ये किसी भी परिस्थिति में हुआ जा सकता है, बस ज़रूरत है अपनी नज़र बदलने की।

यही बताया है डॉ. स्नेह देसाई ने अपनी पुस्तक 'ऑल इज़ वेल' में।

जब आप ख़ुश होते हैं, तो हर वह चीज़, जो आपको ख़ुश करती है, आपसे चिपक जाती है- चाहे वह कोई सम्बंध हो, पैसा हो, सफलता हो या अच्छा स्वास्थ्य। कैसे? हम सबमें प्राकृतिक चुम्बक है और हम वह करते हैं जो चुम्बक करता है; अर्थात चीज़ों को अपनी ओर खींचते हैं और आकर्षित करते हैं। हमारे विचारों और भावनाओं में चुम्बकीय आवृत्ति होती है और हम अपनी भावनाओं से अपने चारों ओर एक चुम्बकीय क्षेत्र का निर्माण कर लेते हैं। इसे ऑरा/इलेक्ट्रोमैग्नेटिक फ़ील्ड भी कहते हैं। यदि आप प्रसन्न होते हैं तो आप एक सकारात्मक फ्रीक्वेंसी से घिर जाते हैं और हर वह सकारात्मक चीज़ जो आपकी फ्रीक्वेंसी से मेल खाती है आपकी ओर आकर्षित हो जाती है। आप प्रसन्नता महसूस करते हैं, तो आप सकारात्मक चुम्बकीय शक्ति बाहर भेजते हैं और अपने चारों ओर एक सकारात्मक क्षेत्र का निर्माण कर लेते हैं। आप ऐसे लोगों, घटनाओं और परिस्थितियों को आकर्षित करते हैं, जो सकारात्मक फ्रीक्वेंसी में हैं।

पूरा दिन ख़राब क्यों जाता है?

जब आप बुरा महसूस करते हैं तो आप नकारात्मक चुम्बकीय शक्ति बाहर भेजते हैं और अपने चारों ओर नकारात्मक क्षेत्र का निर्माण कर लेते हैं, और ऐसे नाराज़ लोगों व परिस्थितियों को आकर्षित करते हैं, जो आपको और अधिक नाराज़, दुःखी और कुल मिलाकर अत्यधिक नकारात्मक बना देती हैं।

एक सामान्य, वास्तविक जीवन का उदाहरण प्रस्तुत है। क्या आपने कभी अनुभव किया है कि जब आप अपना बिलकुल नया वाहन इस डर के साथ चलाते हैं कि कहीं उसे हानि न पहुंचे, तो हमेशा उसमें कोई निशान/खरोंच लग जाती है? आप कहते हैं, 'अब तक मैं अपनी पुरानी व टूटी-फूटी कार लापरवाही से चलाता था तो उसमें एक खरोंच तक नहीं आई, और आज जब मैं अपनी नई कार चला रहा था, तो पता नहीं कहां से एक वाहन आया और...बूम...! मेरी क़ीमती कार में इतना बड़ा निशान/गड्ढा लग गया। क्यों?' ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि आप कार के नुक़सान की आशंका के बारे में सोचकर डरे हुए एवं चिंतित थे और आपने बिलकुल उसी चीज़ को आकर्षित किया, जो आप सोच रहे थे।

क्या आपने कभी सोचा है कि कैसे सुबह के समय परेशान हो जाने पर आपका पूरा दिन ख़राब हो जाता है? आप ट्रैफ़िक में फंस जाते हैं, देर से दफ़्तर पहुंचते हैं, ज़रूरी फ़ाइल घर पर भूल जाते हैं। दिन भर आपकी मुलाक़ात नाराज़ लोगों से होती है और शाम को घर लौटते समय आपकी कार का टायर पंक्चर हो जाता है। ये सब इसलिए होता है, क्योंकि वे नकारात्मक भावनाएं, जिनसे आपने दिन की शुरुआत की थी- नकारात्मक लोगों, परिस्थितियों और घटनाओं को आकर्षित करती हैं, जो आपके जीवन में और अधिक नकारात्मकता लाती हैं- सूद समेत!

ख़ुशी आकर्षित करने का तरीक़ा

अच्छी ख़बर ये है कि आप सिर्फ़ अपनी भावनाएं और प्रवृत्ति बदलकर अपने जीवन में बदलाव ला सकते हैं। आप केवल अच्छा महसूस करके, वर्तमान में प्रसन्नता महसूस करके अपने जीवन को बदल सकते हैं।

जब आप अपने सोचने का तरीक़ा बदल लेते हैं, तो बदलावों को तुरंत आकर्षित करने लगते हैं, और वह भी हर बार।

अब चलिए, हम अपने आप से यह झूठ न बोलें कि भावनाएं हमारे पास किसी दूसरे ग्रह से आती हैं और हमारा उन पर कोई नियंत्रण नहीं होता। भावनाएं विचारों से उत्पन्न होती हैं। यदि हम उन सभी चीज़ों के बारे में सोचते और बात करते रहेंगे, जो हमारे जीवन में ठीक से काम नहीं कर रही हैं, तो स्वाभाविक है कि हम बहुत अच्छा महसूस नहीं करेंगे।

इसके विपरीत, उस समय बुरा महसूस करना असंभव होगा, जब आप अपने जीवन में हो रही अच्छी बातों के बारे में और अपने जीवन में शामिल लोगों की अच्छी लगने वाली चीज़ों के बारे में बात करेंगे। हममें से कोई भी पूर्णतः दोष-रहित नहीं है; लेकिन होशियार और प्रसन्न लोग अपने जीवन की सब अच्छी चीज़ों पर ध्यान केंद्रित करते हैं और अपनी ओर अधिक ख़ुशी आकर्षित करते हैं।

अपने जीवन के निर्माता हैं हम

याद रखें, हम अपने जीवन का निर्माण अपने विचारों और भावनाओं से करते हैं। अपने कार्य में और अपने आस-पास के लोगों में मौजूद पसंद करने योग्य चीज़ों पर ध्यान केंद्रित करें। हर व्यक्ति में और हर चीज़ में स्वाभाविक रूप से कुछ अच्छी और कुछ बुरी बातें होती हैं। अपने साथी की सकारात्मकता पर ध्यान केंद्रित करें और उस देखभाल, समर्थन और सहायता के लिए आभारी महसूस करें, जो आपको सबसे अधिक आवश्यकता के समय उनसे मिलती है, बजाय उन कुछ अवसरों के लिए उनसे नाराज़ होने के जब वे आपकी आवश्यकताएं पूरी नहीं कर पाएं या उनकी कुछ कमज़ोरियों के लिए उनसे नफ़रत करने के, जो सभी मनुष्यों में होती हैं। हारे हुए लोग हर उस चीज़ के बारे में शिकायत करते हैं, जो उनके जीवन में नहीं है, जब तक कि वे वह सब भी नहीं खो देते जो उनके पास है।

आजकल स्मार्टफ़ोन एक अतिआवश्यक वस्तु बन गया है।

लेकिन...

आप किस तरह से इसका उपयोग करते हैं, वह आपके व्यक्तित्व के बारे में बहुत कुछ बता भी सकता है।

आप मोबाइल किस तरह चलाते हैं?

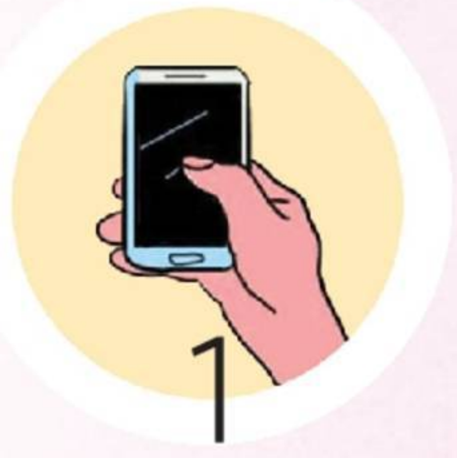

1

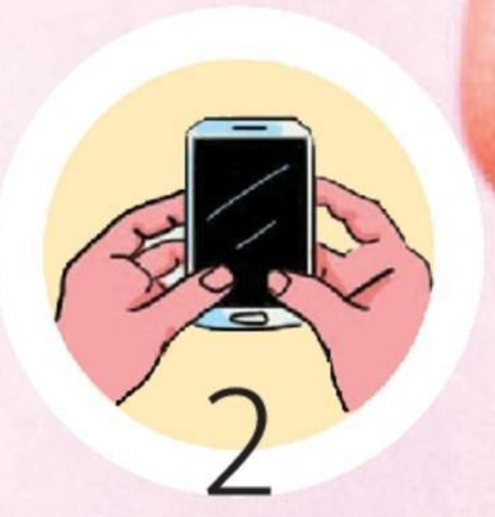

2

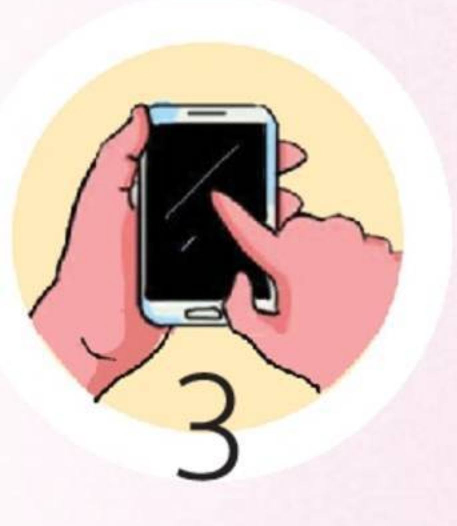

3

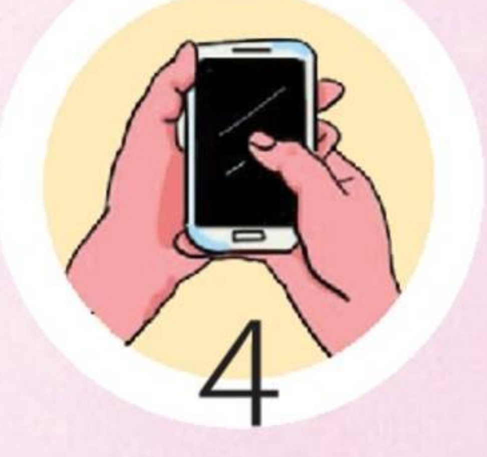

4

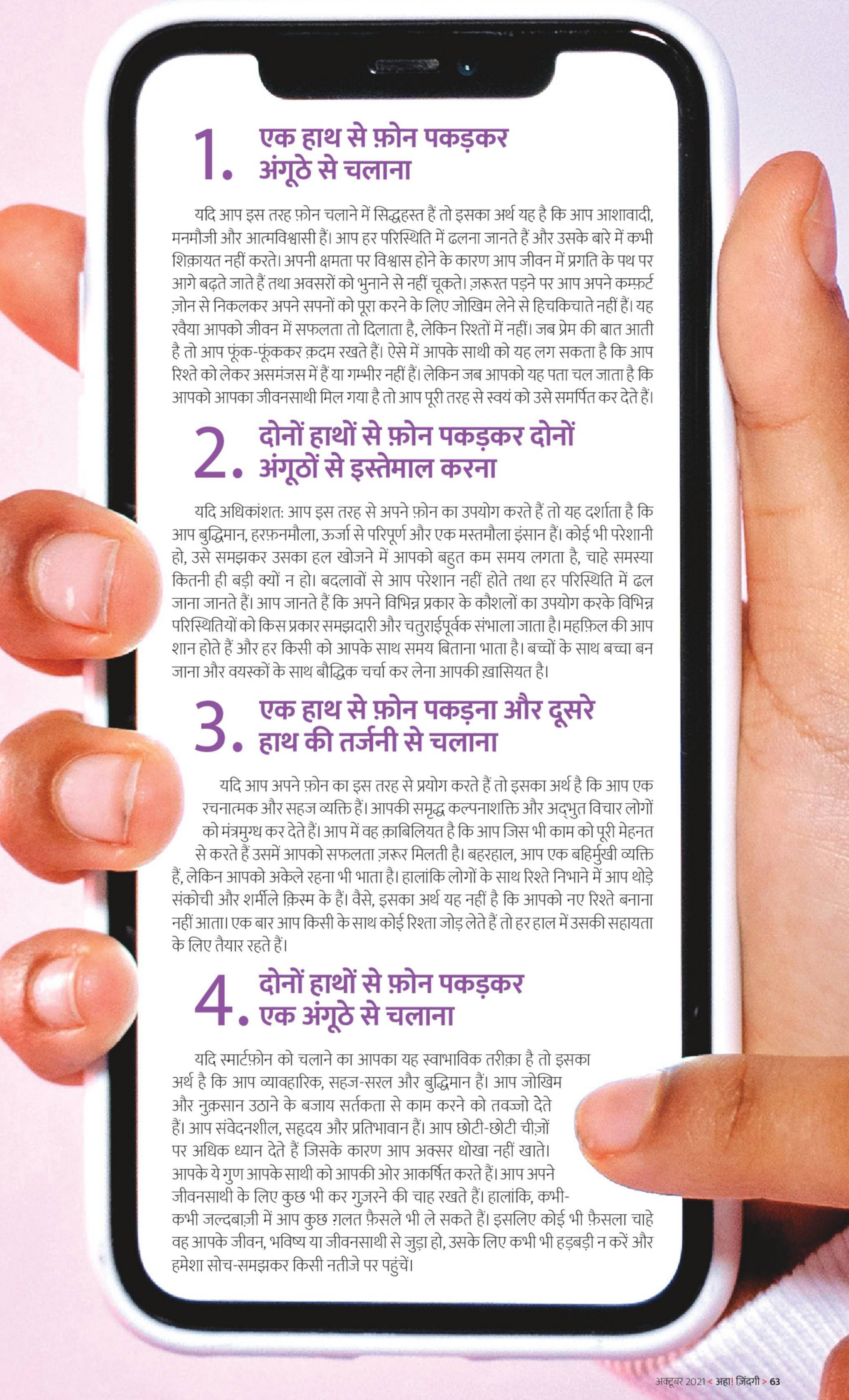

1. एक हाथ से फ़ोन पकड़कर अंगूठे से चलाना

यदि आप इस तरह फ़ोन चलाने में सिद्धहस्त हैं तो इसका अर्थ यह है कि आप आशावादी, मनमौजी और आत्मविश्वासी हैं। आप हर परिस्थिति में ढलना जानते हैं और उसके बारे में कभी शिक़ायत नहीं करते। अपनी क्षमता पर विश्वास होने के कारण आप जीवन में प्रगति के पथ पर आगे बढ़ते जाते हैं तथा अवसरों को भुनाने से नहीं चूकते। ज़रूरत पड़ने पर आप अपने कम्फ़र्ट ज़ोन से निकलकर अपने सपनों को पूरा करने के लिए जोखिम लेने से हिचकिचाते नहीं हैं। यह रवैया आपको जीवन में सफलता तो दिलाता है, लेकिन रिश्तों में नहीं। जब प्रेम की बात आती है तो आप फूंक-फूंककर क़दम रखते हैं। ऐसे में आपके साथी को यह लग सकता है कि आप रिश्ते को लेकर असमंजस में हैं या गम्भीर नहीं हैं। लेकिन जब आपको यह पता चल जाता है कि आपको आपका जीवनसाथी मिल गया है तो आप पूरी तरह से स्वयं को उसे समर्पित कर देते हैं।

2. दोनों हाथों से फ़ोन पकड़कर दोनों अंगूठों से इस्तेमाल करना

यदि अधिकांशतः आप इस तरह से अपने फ़ोन का उपयोग करते हैं तो यह दर्शाता है कि आप बुद्धिमान, हरफ़नमौला, ऊर्जा से परिपूर्ण और एक मस्तमौला इंसान हैं। कोई भी परेशानी हो, उसे समझकर उसका हल खोजने में आपको बहुत कम समय लगता है, चाहे समस्या कितनी ही बड़ी क्यों न हो। बदलावों से आप परेशान नहीं होते तथा हर परिस्थिति में ढल जाना जानते हैं। आप जानते हैं कि अपने विभिन्न प्रकार के कौशलों का उपयोग करके विभिन्न परिस्थितियों को किस प्रकार समझदारी और चतुराईपूर्वक संभाला जाता है। महफ़िल की आप शान होते हैं और हर किसी को आपके साथ समय बिताना भाता है। बच्चों के साथ बच्चा बन जाना और वयस्कों के साथ बौद्धिक चर्चा कर लेना आपकी ख़ासियत है।

3. एक हाथ से फ़ोन पकड़ना और दूसरे हाथ की तर्जनी से चलाना

यदि आप अपने फ़ोन का इस तरह से प्रयोग करते हैं तो इसका अर्थ है कि आप एक रचनात्मक और सहज व्यक्ति हैं। आपकी समृद्ध कल्पनाशक्ति और अद्भुत विचार लोगों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं। आप में वह क़ाबिलियत है कि आप जिस भी काम को पूरी मेहनत से करते हैं उसमें आपको सफलता ज़रूर मिलती है। बहरहाल, आप एक बहिर्मुखी व्यक्ति हैं, लेकिन आपको अकेले रहना भी भाता है। हालांकि लोगों के साथ रिश्ते निभाने में आप थोड़े संकोची और शर्मीले क़िस्म के हैं। वैसे, इसका अर्थ यह नहीं है कि आपको नए रिश्ते बनाना नहीं आता। एक बार आप किसी के साथ कोई रिश्ता जोड़ लेते हैं तो हर हाल में उसकी सहायता के लिए तैयार रहते हैं।

4. दोनों हाथों से फ़ोन पकड़कर एक अंगूठे से चलाना

यदि स्मार्टफ़ोन को चलाने का आपका यह स्वाभाविक तरीक़ा है तो इसका अर्थ है कि आप व्यावहारिक, सहज-सरल और बुद्धिमान हैं। आप जोखिम और नुक़सान उठाने के बजाय सर्तकता से काम करने को तवज्जो देते हैं। आप संवेदनशील, सहृदय और प्रतिभावान हैं। आप छोटी-छोटी चीज़ों पर अधिक ध्यान देते हैं जिसके कारण आप अक्सर धोखा नहीं खाते। आपके ये गुण आपके साथी को आपकी ओर आकर्षित करते हैं। आप अपने जीवनसाथी के लिए कुछ भी कर गुज़रने की चाह रखते हैं। हालांकि, कभी-कभी जल्दबाज़ी में आप कुछ ग़लत फ़ैसले भी ले सकते हैं। इसलिए कोई भी फ़ैसला चाहे वह आपके जीवन, भविष्य या जीवनसाथी से जुड़ा हो, उसके लिए कभी भी हड़बड़ी न करें और हमेशा सोच-समझकर किसी नतीजे पर पहुंचें।

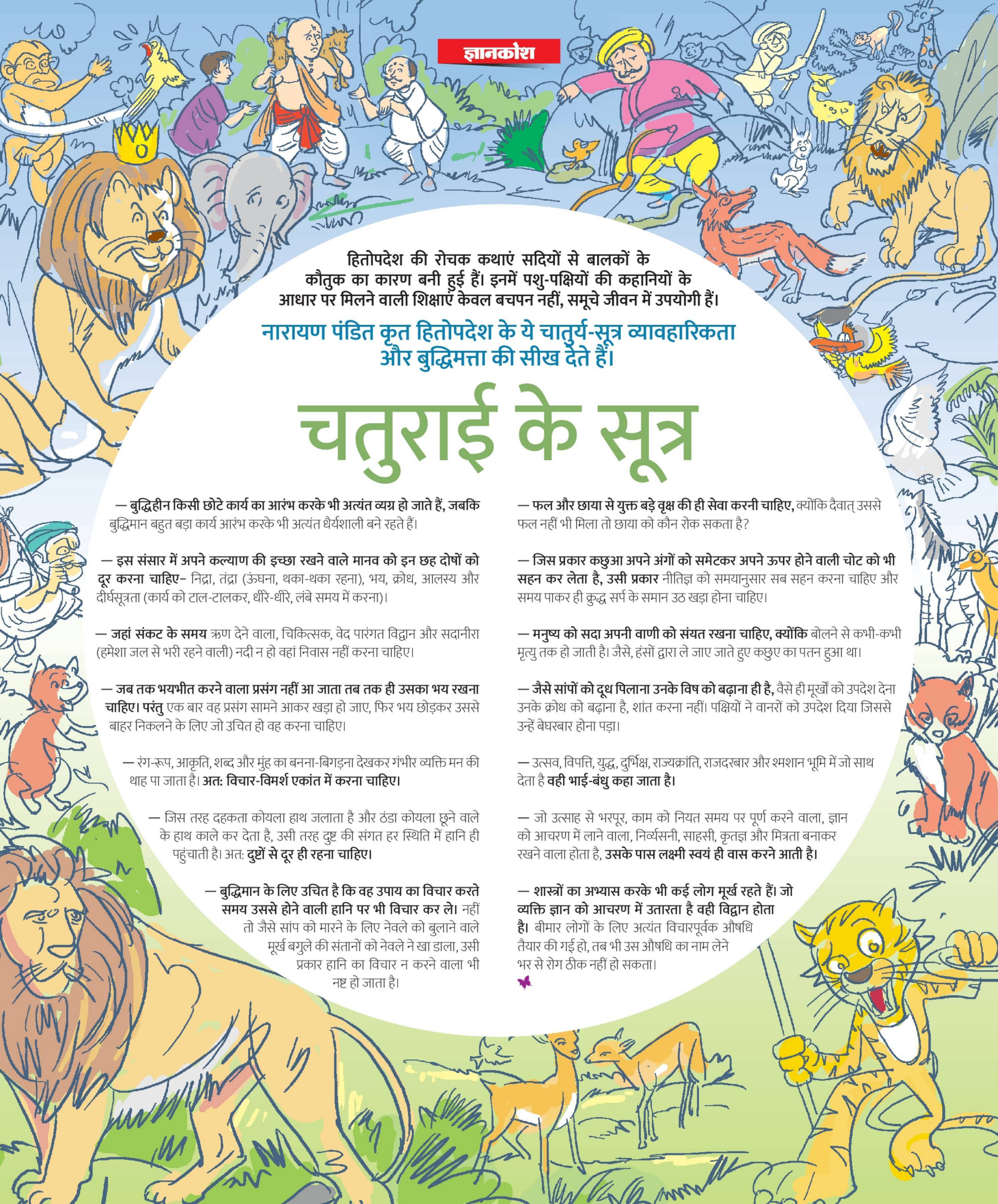

हितोपदेश की रोचक कथाएं सदियों से बालकों के कौतुक का कारण बनी हुई हैं। इनमें पशु-पक्षियों की कहानियों के आधार पर मिलने वाली शिक्षाएं केवल बचपन नहीं, समूचे जीवन में उपयोगी हैं।

नारायण पंडित कृत हितोपदेश के ये चातुर्य-सूत्र व्यावहारिकता और बुद्धिमत्ता की सीख देते हैं।

चतुराई के सूत्र

— **बुद्धिहीन किसी छोटे कार्य का आरंभ करके भी अत्यंत व्यग्र हो जाते हैं, जबकि** बुद्धिमान बहुत बड़ा कार्य आरंभ करके भी अत्यंत धैर्यशाली बने रहते हैं।

— **इस संसार में अपने कल्याण की इच्छा रखने वाले मानव को इन छह दोषों को दूर करना चाहिए–** निद्रा, तंद्रा (ऊंघना, थका-थका रहना), भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता (कार्य को टाल-टालकर, धीरे-धीरे, लंबे समय में करना)।

— **जहां संकट के समय** ऋण देने वाला, चिकित्सक, वेद पारंगत विद्वान और सदानीरा (हमेशा जल से भरी रहने वाली) नदी न हो वहां निवास नहीं करना चाहिए।

— **जब तक भयभीत करने वाला प्रसंग नहीं आ जाता तब तक ही उसका भय रखना चाहिए। परंतु** एक बार वह प्रसंग सामने आकर खड़ा हो जाए, फिर भय छोड़कर उससे बाहर निकलने के लिए जो उचित हो वह करना चाहिए।

— रंग-रूप, आकृति, शब्द और मुंह का बनना-बिगड़ना देखकर गंभीर व्यक्ति मन की थाह पा जाता है। **अतः विचार-विमर्श एकांत में करना चाहिए।**

— जिस तरह दहकता कोयला हाथ जलाता है और ठंडा कोयला छूने वाले के हाथ काले कर देता है, उसी तरह दुष्ट की संगत हर स्थिति में हानि ही पहुंचाती है। अतः **दुष्टों से दूर ही रहना चाहिए।**

— **बुद्धिमान के लिए उचित है कि वह उपाय का विचार करते समय उससे होने वाली हानि पर भी विचार कर ले।** नहीं तो जैसे सांप को मारने के लिए नेवले को बुलाने वाले मूर्ख बगुले की संतानों को नेवले ने खा डाला, उसी प्रकार हानि का विचार न करने वाला भी नष्ट हो जाता है।

— **फल और छाया से युक्त बड़े वृक्ष की ही सेवा करनी चाहिए,** क्योंकि दैवात् उससे फल नहीं भी मिला तो छाया को कौन रोक सकता है?

— **जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को समेटकर अपने ऊपर होने वाली चोट को भी सहन कर लेता है, उसी प्रकार** नीतिज्ञ को समयानुसार सब सहन करना चाहिए और समय पाकर ही क्रुद्ध सर्प के समान उठ खड़ा होना चाहिए।

— **मनुष्य को सदा अपनी वाणी को संयत रखना चाहिए, क्योंकि** बोलने से कभी-कभी मृत्यु तक हो जाती है। जैसे, हंसों द्वारा ले जाए जाते हुए कछुए का पतन हुआ था।

— **जैसे सांपों को दूध पिलाना उनके विष को बढ़ाना ही है,** वैसे ही मूर्खों को उपदेश देना उनके क्रोध को बढ़ाना है, शांत करना नहीं। पक्षियों ने वानरों को उपदेश दिया जिससे उन्हें बेघरबार होना पड़ा।

— उत्सव, विपत्ति, युद्ध, दुर्भिक्ष, राज्यक्रांति, राजदरबार और श्मशान भूमि में जो साथ देता है **वही भाई-बंधु कहा जाता है।**

— जो उत्साह से भरपूर, काम को नियत समय पर पूर्ण करने वाला, ज्ञान को आचरण में लाने वाला, निर्व्यसनी, साहसी, कृतज्ञ और मित्रता बनाकर रखने वाला होता है, **उसके पास लक्ष्मी स्वयं ही वास करने आती है।**

— **शास्त्रों का अभ्यास करके भी कई लोग मूर्ख रहते हैं। जो व्यक्ति ज्ञान को आचरण में उतारता है वही विद्वान होता है।** बीमार लोगों के लिए अत्यंत विचारपूर्वक औषधि तैयार की गई हो, तब भी उस औषधि का नाम लेने भर से रोग ठीक नहीं हो सकता।